चंदन चाँदनी

१

आध घण्टे से ऊपर हो गया था और लड़की अभी भी कोठरी से न निकली थी। रसोई घर में पकवान बनाती लक्ष्मी ने उस व्यस्तता के बीच ही लाड़ से पुकारा—'गिरी! बेटी जल्दी करना।'

हलवे की कढ़ाई में करछुल चलाती माँ के जी में आया कि साथ-साथ यह भी कह दे—'बेटी, इतनी देर करने से कैसे चलेगा? वे आने ही वाले होंगे।' परन्तु, कुछ सोच कर वह चुप रह गई। उनकी बेटी कितनी सीधी और शर्मीली है, इसे वह जानती हैं। उन्नीस वर्ष की उनकी गरिमा अब बी० ए० के प्रथम वर्ष में पढ़ रही है। परन्तु क्या मजाल जो मोहल्ले में कोई यह तो कह जाय कि आज गरिमा दो चोटियाँ करके कालेज गई थी, या काजल बिन्दी लगाकर बाहर निकली थी।

यह ठीक है कि सभी माओं की भांति वह भी अपनी लड़कियों को सदा यही सीख देती रहती हैं कि, 'सीधी-सादी बन कर रहो, आँख में लाज-शरम रक्खो। सयानी हो गई हो, अब मर्दों से बिना ज़रूरत बात मत किया करो। बेटी, स्त्री की जात तो काठ की हाँडी के समान है जो एक बार ही चूल्हे पर चढ़ती है। माँ-बाप की इज्ज़त रखना बेटियों के ही हाथ में होता है। समय का फेर है कि आज बेटियों को

भी बेटों के समान ही पढ़ाना-लिखाना पड़ता है। पर इस कारण माँ-बाप के प्राण तो सदा सूली पर टँगे रहते हैं कि कहीं कोई उनकी बेटी की चरचा न कर बैठे।'

परन्तु इन उपदेशों और सिखावनों से क्या बनता है? लड़कियाँ कुछ न कुछ फ़ैशन तो करती ही हैं। उनकी ही मँझली लड़की प्रतिमा इन सब बातों में बड़ी तेज़ है। अभी कुल दसवीं में आई है। पूरे सोलह की इस फागुन में होगी। परन्तु शहर में आजकल किस रंग की साड़ी का अधिक फ़ैशन है, ब्लाउज़ों की काट कब बन्द गले तक पहुँची और कब छँटते-छँटते उनकी पीठ और बाहें तक नदारद हो गयीं, सलवार आजकल छोटे पाइचों की चलती है या अब फिर से बड़ी मोहरी का फ़ैशन हो गया है, उसे इस सब का पता रहता है। किस सिनेमा की किस फिल्म स्टार ने किस ढंग के झुमके, चूड़ियाँ और नेकलेस पहनी थी तथा वह शहर के किस नक़ली गहनों की दूकान पर मिल सकती है, इन सब की फ़ेहरिस्त उसके नाखूनों पर गिनी रहती है। यद्यपि घर की आर्थिक स्थिति में इतने नये फ़ैशनों और नित्य के रूप प्रसाधनों के ख़रीदने की गुंजाइश नहीं और प्रतिमा वह सब कुछ नहीं ख़रीद पाती; तब भी घर के धुले रिबनों पर कटोरी गरम करके इस्तरी फेर उन्हें चिकना करके वह दो चोटियाँ लटकाती है। माँ की आँख बचा कर माथे पर बिन्दी लगाती है और लिपस्टिक के अभाव में उसी बिन्दी को तनिक और गीली करके होठों पर फेर लेती है। जब से काजल फ़ैशन में शामिल हुआ है, वह उसे लगा कर उसकी कोरें बाहर तक खींच लेती है; जब कि इससे पहले रात को काजल लगाने के लिये माँ की पुकार अनसुनी करके वह आँखें मींच लेती थी।

लेकिन लक्ष्मी की गरिमा सदा से गम्भीर स्वभाव की रही है। उसके मन में चटक-मटक से बाहर निकलने की बात आई या नहीं, यह तो वह और उसका अन्तर्यामी ही जानता था। पर लक्ष्मी को उसे कभी किसी बात के लिये टोकना नहीं पड़ा। यहाँ तक कि अब से चार

वर्ष पहले दसवीं पास करने के बाद जब लक्ष्मी ने कहा, 'क्या होगा आगे पढ़ कर ? कोई तुझसे नौकरी तो करानी नहीं है !' तो निम्न मध्य वर्ग की दबी-ढँकी बालिका की भांति उसने उस आज्ञा को भी चुपचाप शिरोधार्य कर लिया था।

वह तो भाग्य कहिये या समय का फेर कहिये कि पूरे साल भर भी तलवे घिसने पर उसके पिता अमरनाथ को कोई घर ऐसा न मिल सका जहाँ एक ग्रेजुएट लड़के का बाप हज़ार डेढ़ हज़ार की छोटी सी राशि लेकर ही उनकी बेटी को अपने घर की रानी (या दासी !) बनाने को राज़ी हो जाता। अब से बीस पच्चीस वर्ष पहले तक मध्यवर्गीय लड़कों का विवाह उनके माता-पिता बीस-बाइस वर्ष तक कर देना अपना फ़र्ज़ समझते थे। लड़का अभी इण्टर में है या बी० ए० में, इसकी उन्हें ऐसी चिन्ता न होती थी। नौकरी या रोज़गार से लगा है या नहीं यह प्रश्न भी उन्हे या लड़कीवालों को बहुत परेशान न करता था। लड़का हाथ-पाँव का मज़बूत, कद-काठी का अच्छा हो, जुआ, शराब या ऐसी ही कोई बुरी लत न हो और परिवार में चाचा–ताऊ–भाई–भतीजे हों तो इतना काफ़ी समझा जाता था।

लड़की के लिये भी यह आवश्यक न था कि वह नाचने-गाने, सिलाई या चित्रकला में पारंगत हो, अथवा उसने बी० ए० पास किया हो। लड़के के घर की हैसियत के अनुसार दहेज़ वे दे सकते हों तो लड़की मिडिल पास भी चल जाती थ। और सातवीं फ़ेल भी। यूँ गोरी बहू तो सभी चाहते थे। परन्तु काली या साँवली लड़कियों को भी 'कुआँर कोठे' चिनवा कर बन्द करने की आवश्यकता न पड़ती थी।

स्वयं अमरनाथ का विवाह उनके इण्टर पास करते ही हो गया था। यह सत्य है कि थर्ड डिवीज़न में बी० ए० पास करने के बाद भी जब अमरनाथ की नौकरी न लगी थी, तो लक्ष्मी को ससुराल में काफ़ी कष्ट झेलने पड़े थे। सास के ताने, जिठानी की धौंस भी ! घर के काम-काज की भीड़ और एक-एक पैसे की तंगी भी सहनी पड़ी थी। परन्तु

उन दिनो बहू-बेटियों के ख़र्चे भी क्या थे ? घर में सारे दिन काम करतीं और मोटा-महीन जो मिलता खा पहन कर गुज़र कर लेती थीं। और बाहर नातेदारी में वे अपने ब्याह-गौने के घराऊ जोड़े तथा विवाह में चढ़े गहने पहन कर चली जाती थीं। घर में दो-तीन भाई और बाप चाचा कमानेवाले होते थे, तो एक दो बेकार निठल्ले लड़कों के बाल-बच्चे भी पल ही जाते थे।

पर अब जब अमरनाथ गरिमा के लिये विवाह के बाज़ार में लड़का ढूँढने निकले तो उन्होंने देखा कि सब बातें बहुत बदल गई हैं। लड़कों के लिये विवाह केवल वंश बढ़ाने का साधन और रोटी खाने का बढ़िया होटल नहीं रह गया है। आज के लड़के ऐसी सुन्दर, सुघर और शिक्षित पत्नी चाहते हैं जिसे साथ लेकर चलने में उन्हें गर्व अनुभव हो। चार देखनेवाले भी कहे कि हाँ फ़लाँ की पत्नी है। और, इसके लिये जहाँ उन्हें शिक्षित पत्नी चाहिये, वहाँ उस शिक्षिता सुन्दर पुतली को प्रसाधनों से सुसज्जित रखने के साधन भी। इसी से नौकर होने अथवा किसी भी अन्य कार्य या व्यापार द्वारा चार व्यक्तियो के भरण-पोषण की क्षमता न प्राप्त करने तक लड़के विवाह करना ही नहीं चाहते।

अमरनाथ साल भर प्रयत्न करने पर भी एक दामाद न जुटा पाये। पढ़नेवाले लड़के और उनके माता-पिता तो विवाह को उत्सुक ही न थे, और नौकरी से लगे लड़के और उनके माता-पिता विवाह के लिये जो शर्तें रखते थे, उन्हे पूरा करने की सामर्थ्य अमरनाथ में न उस समय थी और न यह आशा थी कि निकट भविष्य में हो सकेगी।

अधिक नगद दहेज़ की बात तो बड़ी भारी समस्या थी ही। विवाह में दिये जानेवाले सामान में भी जहाँ पहले बर्तन, कपड़े, दो-चार गहने और पलंग-बिस्तर तक की सीमा थी, वहाँ अब सोफा सेट, शृङ्गार मेज़, रेडियो, उन पर चढ़ाने-रखनेवाले दामी गद्दियों, कवरों और सिलाई-मशीन तो अनिवार्य ही से थे; साथ में बिजली की इस्तरी और चूल्हा,

बिजली का लैम्प, टी सेट, फूलदान, उगालदान, पानदान इत्यादि देने भी आवश्यक थे।

पहले के दामाद जहाँ एक घड़ी, अँगूठी और अधिक से अधिक साइकिल पाकर खुश हो जाते थे, अब के लड़के मोटर साइकिल से नीचे बात ही नहीं करना चाहते। पेन, घड़ी, अँगूठी इत्यादि तो घाते में थे।

पूरे साल भर अमरनाथ ने घूम-घूम कर अपने जूतों के तल्ले घिसे और तब अन्त में अपने आर्यसमाजी बड़े बाबू की सलाह मान कर उन्होंने गरिमा को फिर से स्थानीय महिला कालेज में भरती कर दिया। बाबू ने उन्हे कहा था—'अमर बाबू, ज़माने का रंग देखो भइया! आजकल टेन्थ पास लड़की को कही वर मिलते हैं? आजकल तो लड़के बी० ए० से कम लड़की से विवाह ही नहीं करना चाहते।'

मजबूरी की माँ का नाम सब्र कहा जाता है। अमरनाथ ने गरिमा को फिर पढ़ने के लिये भेज दिया। अब गरिमा तीसरे वर्ष में थी।

लड़की की आयु का एक-एक दिन बढ़ता था और माँ की आयु का घट रहा था। हाय राम, उन्नीस साल की लड़की कुआँरी बैठी है! इस आयु में तो वह दो बच्चों की माँ बन चुकी थीं; और गरिमा के साथ-साथ अब तो प्रतिमा भी माँ के सिर से ऊँची हो गई थी। इन तीन वर्षों में तन-पेट काटकर और फटा पहनकर लक्ष्मी ने लगभग एक हज़ार और बचा लिया था। जहाँ भी किसी अच्छे लड़के का समाचार पातीं, वह अमरनाथ को वहाँ भेज देती थीं। राम-राम करके अब इतने दिनो बाद उन लोगों का परिश्रम ठिकाने लगा था; अर्थात् गरिमा के लिये एक वर मिल गया था। लड़का एम० ए० था और एक फ़र्म में साढ़े तीन सौ का नौकर भी। उनके घर का अपना मकान भी था।

पहली सन्तान पर प्रायः ही मोह कुछ अधिक होता है। अपनी सामर्थ्य न होते हुए भी बेटी के सुख की कल्पना करके अमरनाथ ने ढाई हज़ार नक़द देने के साथ आजकल के दहेज़ में दी जाने वाली

सभी वस्तुएँ समधी के लिये जुटा देने की हामी भर ली। बस, मोटर-साइकिल के लिये बड़ी विनयपूर्वक हाथ जोड़ दिये थे।

लड़की का फ़ोटो उन्होंने लड़केवालों को दिखा दिया था। साथ ही कह दिया था कि 'मेरी बेटी गुणों की पुतली है, इतनी पढ़ी लिखी होने पर भी घर-गृहस्थी का सब काम जानती है। शील-स्वभाव में देवी के समान है। पर इतना मैं पहले ही बताये देता हूँ कि रंग उसका गोरा नहीं है, गेंहुआँ है।'

विवाह लगभग तय ही हो गया था। बस रस्मी तौर पर आज लड़का और उसकी माँ लड़की देखने आ रहे थे। सारे घर में दौड़-धूप मची थी। अमर बाबू की टाँगें बाज़ार जाते-जाते थक गई थीं। लक्ष्मी आज सबेरे से ही जाने नाश्ते के कितने सामान और पकवान बना चुकी थीं। उनकी एकमात्र बैठक में पड़ोस से मांग कर लाई बड़ी दरी और घर के तख़्त पर गरिमा के हाथ की बनी सारी कढ़ाई-बुनाई करीने से सजा दी गई थी।

गरिमा का स्वर मीठा था। उसे संगीत का शौक़ भी था। अपने भइया दूज और रक्षा बन्धन पर मिले रुपये जोड़-जोड़ कर उसने तानपूरा ख़रीदा था। वह स्थानीय संगीतशाला में तीन रुपये महीने पर संगीत सीखने भी जाती थी। वह तानपूरा भी आज खोल उतार कर बैठक में कोने से टिका दिया गया था।

बराबर वाली पंजाबिन पड़ोसिन अपनी शुभचिन्ता प्रकट करके लक्ष्मी को एक शुभ सलाह भी दे गई थी कि--'भैंण जी! उंज तां त्वाडी कुड़ी गुणा दी गुथली वे। पर ये अज्ज कल दे मुण्डे कुड़ी दे गुण पिच्छे देखने आं, ता शकल पैल्ले। तुसीं कुड़ी नू आखि कि चंगी तरां बन सँवर के बार आवे।'

लक्ष्मी पड़ोसिन का इशारा समझ गईं। वैसे उनकी गरिमा नाक नक्शे की अच्छी है। आँखें बिलकुल आम की फाकें न होने पर भी बड़ी-बड़ी हैं और उनमें सरलता भरी है। नाक भी तोते को लजाने

वाली भले ही न हो, पर अच्छी ख़ासी पतली और ऊँची है। होंठ भी पतले हैं। छरहरी देह की उनकी बेटी वास्तव में सलोनी है।

किन्तु गढ़न चाहे कितनी भी अच्छी हो, रंग में वह उन्नीस ही है। घर-बाहर सभी लक्ष्मी से यही कहते थे कि बस रंग की कसर रह गई। इसके विपरीत उनकी प्रतिमा की जो अभी से कुछ मोटी हो चली है, जिसकी आँखें भी विशेष बड़ी या रसीली नहीं हैं, भौंहें घनी, नाक कुछ फैली और होंठ काफी मोटे हैं—प्रशंसा सभी करते हैं, क्योंकि उसका रंग बहुत ही गोरा है—एकदम आग पर तपाये कुन्दन सा सुनहरा पीला।

पड़ोसिनें कहतीं—'गरिमा की माँ! तुम्हें अपनी प्रीतो के लिये वर ढूँढने में कोई मुश्किल न पड़ेगी, उसे तो लोग हाथोंहाथ ले जायँगे।'

बचपन से लक्ष्मी एक कहावत सुनती आई है, 'लिपी-पुती देहरिया और पहनी ओढ़ी बहुरिया' सभी को मोह लेती है। उन दिनों पहनने ओढ़ने का अर्थ था, गहना-कपड़ा, काजल, बिन्दी, सेंदुर और महावर। पर अब वह परिभाषा क्रीम, पाउडर, रूज़, लिपिस्टिक के रूप में कुछ बदल गई है। अपनी पंजाबिन पड़ोसिन के परामर्श से लक्ष्मी ने भी जीवन में पहली बार बेटी के रूप पर मुलम्मा चढ़ाने के लिये ये सब वस्तुएँ ख़रीदीं। वैसे एक सस्ती क्रीम कभी-कभी उनके घर अवश्य आती थी। किन्तु वह क्रीम भी प्रतिमा के बहुत ज़िद करने पर ही घर में प्रवेश पा सकी थी।

गाड़ी साढ़े तीन बजे आती थी। अमरनाथ अपने मान्य अतिथियों को लेने स्टेशन गये थे। तब इसी निराले समय में मौका देख कर माँ ने बेटी को बुलाया और गत्ते के डिब्बे में बन्द सब चीजें उसे थमा कर कहा था—'बेटी ऐसी सादी धोती पहने बैठक में मत चली जाना। ज़रा ढंग से बाल सँवार कर आना। ले, इसमें सब चीजें हैं।'

गरिमा ने चुपचाप डिब्बा ले लिया और कोठरी में चली गई। बादामी पैकेट में बन्द नीली रेशमी साड़ी के नीचे वैनिशिंग क्रीम,

पाउडर, रूज़ और लिपिस्टिक की नई शीशियाँ देखकर वह आश्चर्य-चकित रह गई। नाइलोन के दो नये नीले रिबन भी थे। उन सब वस्तुओं को पाकर उसके मन में प्रसन्नता की लहर नहीं दौड़ी, उल्टे एक अव्यक्त पीड़ा से मन भर आया। उसे अपनी माँ पर तरस आने लगा। बेचारी अम्मा! जो सदा ही रँगीपुती लड़कियों और बहुओं को फ़ैशन की पुतली कह कर वितृष्णा प्रकट करती थी, आज स्वयं ही उसे यह सब लाकर दे गयी हैं!

गरिमा ने धीरे से सब के ढक्कन खोल डाले। पाउडर में भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी, उसे वह अच्छी भी लगी। परन्तु अनभ्यस्त हाथों से मुँह पर पाउडर पोतकर उसने शीशे में मुँह देखा, तो उसे लगा मानों गुलाबी मैदा बिखर गई हो। बहुत देर तक पफ़ द्वारा उसे समतल करने में लगी रही, फिर भी वह जगह-जगह हल्का, गाढ़ा चमक रहा था। क्या मुसीबत है? उसने उठकर लोटे के पानी में तौलिया भिगोया और मुँह पोंछ लिया। फिर केवल हल्की सी क्रीम मलकर बाल सँवारने लगी। आज तक वह दो चोटियाँ करके पिता के सामने नहीं निकली। क्या कहेंगे वे? फिर भी माँ की आज्ञा तो माननी ही थी। उसने बालों को दो चोटियों में गूँथा और रिबन लगा लिये। काजल भी लगाया और सींक से एक बहुत नन्हीं सी बिन्दी भी लगा ली। शीशे में मुँह देखा, तो उसे प्रतीत हुआ मानों यह मुँह उसका न हो। रूज़ और लिपिस्टिक अनछुए रक्खे थे। उसने उन्हें छोड़ दिया और साड़ी पहिनने लगी, क्योंकि माँ दो बार पुकार चुकी थीं।

'जीजी!' प्रतिमा ने द्वार खोलकर झाँका। कोठरी में फैले सामान को देखते ही उसकी आँखें चमक उठीं।

'हाय, कितनी बढ़िया चीज़ें हैं!' वह लपककर भीतर आई।

गरिमा लाज से गड़ सी गई। क्या सोचेगी प्रतिमा? जीजी बन-सँवर के अपने को पसन्द कराने जा रही हैं? उसने उसकी आँख बचा कर बिन्दी पोंछ डाली और पूछा—'प्रीतो! अम्मा क्या कर रहीं हैं?'

प्रीतो ने मानो प्रश्न सुना ही न था। वह तो उन सब प्रसाधनों की पड़ताल में लग गई थी। 'जीजी! तुमने यह डार्क शेड की लिपिस्टिक क्यों मँगाई? तुम पर तो नेचुरल कलर फिट बैठता? खैर, कोई बात नहीं? वाह जीजी, तुमने पाउडर तो लगाया ही नहीं, फिर रूज़ कैसे लगाओगी? जीजी तुम्हें तो काजल लगाना भी नहीं आता, लाओ मैं लगा दूँ? नहीं तो जीजा कहेंगे मेरी बहू को तो काजल लगाना भी नहीं आता। जीजी! तुमने आई-ब्रो पेन्सिल क्यों न मँगाई? तुम्हारी भवें भी तो गहरी नहीं हैं।' उसकी रेलगाड़ी रुकते न देख गरिमा ने धीरे से डाँटा—'चुप रह न, क्या राम कथा शुरू कर दी? मैं पूछती हूँ अम्मा अकेली ही सब काम कर रही हैं?'

'और नहीं तो क्या मिसरानी लगी हैं जो करेंगी? भई, मैं तो रसोई घर में कपड़े गन्दे करने न जाऊँगी। यह एक ही तो साड़ी है मेरे पास, मैली हो गई तो जीजा के सामने कैसे जाऊँगी? तुम्हारी तो आज चाँदी है जीजी! अम्मा ने कैसी बढ़िया साड़ी मँगा दी? रूज़ भी, लिपिस्टिक भी। हमारे लिये कुछ भी नहीं।' बाहर से ग्यारह वर्षीया छोटी बहन नीलिमा ने पुकारा—'प्रीतो जीजी! अम्मा कह रहीं हैं झटपट आठ बीड़े पान लगा कर वर्क चिपका कर रख दो।' प्रतिमा बड़बड़ाई—'इस चुड़ैल को पान लगाना भी नहीं आता। जो मेरी साड़ी में कत्था लग गया तो?' फिर सतृष्ण नेत्रों से उन प्रसाधनों को निहारती बाहर चली गई।

गरिमा ने साड़ी पहन ली। उसे जाने कैसा-कैसा सा लग रहा था। अपना वर देखने की उत्सुकता उसे न हो ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु अपने को पसन्द कराने के लिये, विशेष रूप से विशेष प्रसाधन करके, गुड़िया की भांति सज बन कर जाना पड़े यह भी उसे अच्छा नहीं लग रहा था। किन्तु माँ ने कहा है, करना तो पड़ेगा ही। उसने फिर से पाउडर लगाया—जैसे-तैसे उसे समतल भी किया। किन्तु रूज़ उठाने का उसका साहस नहीं हुआ। जो कहीं ठीक से न लगा तो

फिर मुँह धोना पड़ेगा। लिपिस्टिक खोली, सोचा इसके लगाने में तो भला कठिनाई क्या पड़ेगी—खाली हल्का-हल्का होंटो पर फेर लेगी। अपने भरसक सावधानी से उसने उसकी बत्ती को होठों पर फेरा। बहुत हल्का लगाया तो भी शीशे में देखने पर लगा मानों सारे मुख पर होंठ ही होंठ हों—जो सुर्ख नीलाहट से उसे मुँह चिढ़ाते से लगे—कोर सीधी करने को हाथ घुमाया तो लिपिस्टिक पान की पीक जैसी लकीर ठोढ़ी तक खींचती हुई फिसल कर नीचे गिर पड़ी। गरिमा खीज उठी। उसने तौलिये से कस कर होंठ पोंछ दिये। नहीं, वह यह सब नहीं करेगी। गरिमा लापरवाही से सभी वस्तुएँ वहीं छोड़ कर आँगन से जीना चढ़ कर ऊपर चली गई। नीचे बैठक में अमरनाथ बाबू पुकार रहे थे—'नीलू! प्रमोद! विष्णु! आओ देखो मौसी जी को प्रणाम करो।' वे समधिन और दामाद को लेकर लौट आये थे। रसोई में लक्ष्मी ने प्रतिमा से कहा—'बेटी, तू नाश्ता सजा मैं धोती बदल लूँ।' फिर भीतर जाकर मैली धब्बों वाली फटी धोती उतार, नई वाइल की धोती पहन वे बैठक में मान्य अतिथियों के स्वागत को चली गयीं।

प्रतिमा का जी कुढ़ गया—'अम्मा को तो मुझसे बैर है। मेरी साड़ी में जब तक हल्दी के धब्बे न लगे भला उन्हे चैन आयेगा? जीजी को तो रानी बना कर कमरे में बैठा दिया। मुझे नौकरानी बना दिया।' उसने जैसे-तैसे ट्रे में मिठाई, नमकीन, पान सब सजाये। फिर आँगन से जाती नीलिमा को पुकार कर बड़ेपन की धौंस जमाते हुए हुक्म चढ़ाया—'यह चाय का पानी चढ़ा है। उबल जाय तो केतली में डाल कर पत्ती छोड़ देना। देख ढंग से बनाना नहीं तो तेरी चुटिया काट लूँगी।' नीलिमा के जी में आया ज़ोर से माँ को पुकार कर बहन की शिकायत करे। परन्तु घर में मेहमान आये हैं। अम्मा कहीं उसी पर न बिगड़ने लगें। मन मार कर वह रसोई में बैठ गई।

प्रतिमा कोठरी में घुसी—वह रूज़ लिपिस्टिक से सजी बहन को देख कर एक दो हँसी की चुटकियाँ लेना चाहती थी। परन्तु गरिमा वहाँ

नहीं थी। प्रसाधन का सब सामान वहीं पड़ा था। वाह बिल्ली के भाग से छींका टूटा! आज प्रतिमा मन भर कर शृङ्गार करेगी। घर में जीजी के ससुराल वाले आये हैं—भला उनके सामने माँ उसे कैसे डाटेगी? उसने द्वार उठगा दिये और फिर अपने मोटे होठों और मोटी नाक को बिलकुल अजंता टाइप फैशन की सुन्दरी के रूप में परिवर्तित करने के लिये जी-जान से जुट पड़ी।

★

सास ने देखा लड़की बहुत ही शरमा रही है। जैसे-तैसे उनके आग्रह पर उसने किसी राग के दो बोल सुना तो दिये थे परन्तु तब से उसकी झुकी पलकें उठने का नाम ही न ले रही थीं।

बहू उन्हें पसन्द ही थी। दान दहेज़ तो पहले ही सब तय हो चुका था। उन्होंने गरिमा के सिर पर हाथ फेर कर उनकी माँ से कहा—'बेटी तो आपकी लाज की गठरी है। बहन जी! क्या पहले से सिखा दिया था कि बोलना मत।'

लक्ष्मी ने मुस्करा कर कहा—'नहीं जी, यह तो स्वभाव से ही ऐसी है, सिखाने से कुछ होता तो मझली को न सिखाती।'

'मझली! वह कहाँ छिपी है बहन जी। शायद शरम के मारे आई ही नहीं।'

लक्ष्मी को भी आश्चर्य हुआ। चंचल प्रतिमा आज कहाँ जा बैठी। 'प्रीतो!' उन्होंने वहीं से पुकारा—'अरी भीतर क्या कर रही है?'

प्रतिमा अब जाकर अपना शृङ्गार समाप्त कर पाई थी। उसने एक बार अपने लाल-लाल रस भरे होठों को गर्व से निहारा—गोरे रंग पर काजल द्वारा फैली बड़ी-बड़ी आँखों को ताका और फिर उजले चाँद से माथे पर बड़ी सी बिन्दी को देखा। उसे अपने पर वैजयन्ती-

माला का भ्रम हुआ। माँ की पुकार पर वह झटपट एक गिलास शर्बत बना उसमें तेज़ गुलाबी रंग घोल कर लिये हुए बैठक में पहुँची।

'नमस्ते जीजा जी!' उसने युवक गिरीश के पास पहुँचकर कहा—'मैं आपकी होने वाली बड़ी साली प्रतिमा हूँ—लीजिये शर्बत पियेंगे?'

गिरीश ने चौंक कर उस गोरी पूनम को देखा, फिर शरबत को। उसमें रंग देखकर उसने भी मुस्करा कर कहा—'आपके यहाँ रंगदार शर्बत मेहमानों को पिलाया जाता है?'

'रंग!' प्रतिमा ने शरारत से कहा—'जीजा जी यह रंग इसमें आपको देख कर आ गया। जीजी के दूल्हा को देख कर बेचारा शर्बत भी शरमा कर गुलाबी हो गया है।'

गिरीश का मन रस से भींग उठा। मन हुआ प्रतिमा की कलाई थाम कर पास बैठा ले। उसने शरबत लेते हुए एक बार उसे फिर ताका। गोरी गोल-मटोल गदबदी, अल्हड़ युवती—होंठ मानों कुंदरू के फल हों। स्याह बालों की दो छल्लेदार लटें उसके सोने के चाँद जैसे माथे पर झूल रही थीं। सस्ते फिसलने वाली रेशम की साड़ी का पल्लू कन्धे से ढलक कर प्रतिमा की एड़ी चूम रहा था। युवक को अपनी ओर ताकते देख प्रतिमा ने चुटकी ली—'जीजा जी, शर्बत पियो न। क्या अभी से ही जीजी की आज्ञा लेकर सब काम करेंगे?'

गरिमा शरमा कर भीतर उठ गई।

लक्ष्मी ने समधिन को दिखाकर कहा—'देखा जी, इस आफत की पुड़िया को? दिन भर ऊधम मचाती रहती है।—काम की न काज की, ढाई सेर नाज की—कहावत किसी ने इसी के लिये बनाई थी।' आधुनिक प्रसाधनों से छुरी पर सान की भांति बेटी के उफनते रूप-यौवन को उन्होंने शंका और गर्व की मिली-जुली दृष्टि से ताका। और कोई समय होता तो वे उसे बहुत डाँटतीं पर आज तो उन्हें इस बात की प्रसन्नता ही थी कि समधिन और दामाद भी देखें कि उनकी यह बेटी

भी कैसी लुभावनी है ! इस घर में नाता करेंगे तो ऐसी सुन्दर साली के जीजा बनेंगे !

समधिन हँसी। गिरीश मुस्कराया। प्रतिमा ने झूठे अभिमान से कहा—'जीजा जी, अम्मा झूठ बोल रही हैं। देखो मैं तो आपके लिये बिना माँगे शरबत बना लाई। क्या मैं काम-काज वाली नहीं दिखती ? और, मौसी जी तुम्हीं सोचो ?' वह समधिन की ओर मुड़ी। 'मुझसे तो ढाई सेर नाज की रोटियाँ भी नहीं पकतीं तो भला ढाई सेर खा कैसे सकती हूँ ?' फिर रूठने की मुद्रा से प्रीतो मुँह फुला कर धम्म से बैठ गई।

कमरे में रूप-रस-गन्ध की त्रिवेणी प्रवाहित हो उठी।

रात आठ बजे तक मेहमानों ने भोजन कर लिया। ग्यारह बजे की गाड़ी से वे वापिस जाने वाले हैं। सब बातें ठीक हो ही रही थीं। परन्तु लक्ष्मी बड़े चक्कर में थी कि समधिन ने शगुन के तौर पर लड़की को कोई गहना नहीं पहनाया, न गोद में ही नारियल इत्यादि रक्खा। माँ बेटे बैठक में बैठे जाने क्या फुसुर-फुसुर बातें कर रहे हैं। कहीं ढाई हज़ार से अधिक की माँग तो नहीं करना चाहते ? उन्होंने मन ही मन तैंतीस करोड़ देवता मना डाले। अन्त में फिर महाबीर स्वामी के चरणों में विनती की—'हे हनुमान ! हे संकटहारी ! मुझ दुखिया पर दया करना ! तुम तो हमारी हालत जानते हो प्रभु ! ढाई हज़ार से ऊपर तो घर में एक कौड़ी भी नहीं। ब्याह के ऊपर के खर्चों के लिये दफ़्तर से डेढ़ हज़ार उधार लेंगे। जो कहीं ये और माँग बैठे तो ! हे बजरंग बली ! चार बरस खोजने पर मन लायक लड़का मिला है—हाथ से न जाने पाये !' हाथ जोड़ शीश नवा कर ज्योंही उन्होंने आँखें खोली तो देखा

अमरनाथ भीतर की कोठरा में खड़े उसे इशारे से बुला रहे थे। लक्ष्मी ने पास जाकर देखा पति के मुख पर अजीब सी गम्भीरता है। 'क्या बात है ?' उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से उन्हें ताका।

'गिरी की माँ !' अमरनाथ ने लड़खड़ाते स्वर में दबे ढँके स्वर में कहा—'तुमने सुना समधिन क्या कह रही हैं ?'

'नहीं तो !' लक्ष्मी का हृदय काँपा—'क्या और कुछ मुँह फाड़ रही हैं ? भला इससे अधिक हम कहाँ से देंगे ?'

'नहीं, यह बात नहीं ! उनका कहना है कि उनके लड़के को बड़ी के बजाय छोटी लड़की पसन्द आई है।'

'प्रतिमा !' लक्ष्मी मानों आकाश से गिरी—'यह कैसे हो सकता है ?'

अमरनाथ ने स्वर और भी धीमा करके कहा—'मैंने उनसे कहा भी कि, देखने में वह भले ही गिरी से ऊँची या मोटी हो, अभी सोलह की भी नहीं है। न गाना जानती है, न और कोई काम। अभी तो वह दसवाँ भी पास नही है। फिर हम बड़ी से पहले छोटी का ब्याह कैसे कर सकते हैं ?'

'हमारी गिरी लाखों में एक है !' लक्ष्मी भन्नाई। अमरनाथ ने उसे रोकते हुए अपना कथन जारी रक्खा—'मैंने उनसे सब कुछ कहा पर वह कह रही हैं कि उन्हें तो बड़ी ही पसन्द है। पर आजकल के लड़के भला माँ-बाप की पसन्द को क्या समझते हैं ? गिरीश कहता है ब्याह तो वह प्रतिमा से ही करेगा। कमाऊ बेटे पर मैं क्या ज़ोर डाल सकती हूँ ? अब आप कहें तो मैं छोटी की गोद भर दूँ अन्यथा जैसी आपकी इच्छा !'

लक्ष्मी अबोली खड़ी रह गई। उसका मन भीतर ही भीतर टूट रहा था। इतना अच्छा कमाऊ लड़का हाथ से जा रहा था। पर वह भला यह कैसे कर सकती है कि बड़ी से पहले छोटी का रिश्ता कर दें ?' यह

उनका और उनकी बेटी का खुला अपमान था। अमरनाथ ने थोड़ी देर में उदास निश्चय से कहा—'तो फिर यही तय रहा। हम अकारण यह अपमान कैसे सह सकते हैं? फिर, बिना बात ही गिरी की कितनी बदनामी हो जायगी? जितने मुँह, उतनी बातें बनेंगी—मैं उनसे मना किये देता हूँ।'

लक्ष्मी ने भी एक उसाँस भर कर कहा—'हमारे भाग्य में न जाने अभी और क्या-क्या देखना बदा है!' अँधेरे में दोनों पति-पत्नी सिर झुकाये समस्या पर विचार कर रहे थे। रहस्यमयी बातें सुनने को दीवारों के भी कान होते हैं। गिरीश की पसन्द में परिवर्तन का समाचार थोड़ी ही देर बाद कोठरी से तैर कर ऊपर वाले कमरे में बैठी गरिमा और प्रतिमा तक जा पहुँचा।

सुन कर गरिमा अवसन्न हो उठी। पर साथ ही पीड़ा और क्रोध की एक तीव्र लहर उसे ऊपर से नीचे तक झकझोर गई। क्षण भर पहले जिस सुन्दर साँवले युवक के चरणों में वह अपने मन के सारे कोमल पुष्पों की अंजलि चढ़ा चुकी थी उसके प्रति, नहीं—मैं झूठ कह रही हूँ—सारे युवक वर्ग के प्रति ही वह घृणा से भर उठी। फिर माँ की चिन्ता और पिता के पिछले चार वर्षों की उद्विग्नता स्मरण कर उसके मन में आया छत से कूदकर अभी प्राण दे दे। उसके ही कारण आज उनको यह सब सुनना पड़ा है। अनेक परस्पर-विरोधी विचारों के एक साथ उठने से विचलित हो वह कमरे से निकल कर छत पर टहलने लगी।

प्रतिमा उस समय बड़े उत्फुल्ल मन से अपनी साड़ी उतार कर तह कर रही थी—'जीजी की सास और जीजा दोनों ही उसे बहुत अच्छे लगे थे। आ हा! जीजा जी कैसे हँसमुख हैं! इस बार गर्मियों की छुट्टी में वह जीजी की ससुराल जायगी, फिर वहाँ खूब घूमेगी। हम सब मिलकर ताश खेलेंगे। जीजा जी को मैं अपनी गुइयाँ बना कर जीजी को हरा दिया करूँगी। जीजा जी कह रहे थे उनके पास कैमरा

है। हम और जीजी वहाँ कोट-पैन्ट पहन कर फोटो खिंचवायेंगे। कितना मज़ा आयेगा! अपने रूप-रंग और मुखर स्वभाव के कारण वह प्रायः शैशव से ही सब की मुँह लगी रही थी। नये मेहमानों ने भी उसकी सराहना की थी—और माँ ने आज इतने बनाव-शृङ्गार पर भी उसकी ताड़ना नहीं की थी। अनूठा किशोरी का हृदय उल्लास से पूर्ण था—वह साड़ी तह करती हुई बीच-बीच में बहन को छेड़ती भी जा रही थी! 'आहा जीजी कैसे मुँह फुला कर बैठी हो! जैसे जीजा इन्हें पसन्द नहीं आये हों—मन में तो सोच रही होगी कि कब ब्याह हो कब ससुराल जाऊँ—अरे रे-रे, मारती क्यों हो? देखो मैं जीजा जी से शिकायत कर दूँगी—गरिमा ने जब 'मर जा चुड़ैल' कहते हुए चरपाई पर लेट कर मुँह फेर लिया तो प्रतिमा हो-हो करके हँसने लगी। नीलिमा के दिये पात्री परिवर्तन के समाचार से उसके हाथ की साड़ी खिसक कर एक दम धरती पर जा गिरी। प्रतिमा के उल्लसित उच्छ्वास पर जैसे पाला पड़ गया। वह हतबुद्धि सी खड़ी रह गई। गरिमा जब बिना उसे देखे या कुछ भी कहे कमरे से बाहर जाकर टहलने लगी तब कहीं प्रतिमा की विचारशक्ति जागी। उसका मन भय और लज्जा से काँप उठा। बहन के बाहर उठते गिरते पाँवों की प्रत्येक चाप मानों हथौड़े की चोट बन कर उसके हृदय पर गिरने लगी। वह वहीं बिछी खाट पर धम्म से बैठ गई। हाय, जीजी अपने मन में मुझे क्या समझ रही होंगी! अवश्य ही वह सोच रही हैं कि मैने जान-बूझ कर उनके सौभाग्य को नष्ट करने के लिये यह सब लाली, पाउडर, बिन्दी लगाये थे। इसी-लिये इठला-इठला कर जीजा और उनकी माँ से बोल रही थी। दौड़-दौड़ कर उनकी खातिर काम कर रही थी? कैसे? कैसे वह जीजी को विश्वास दिलाये कि ऐसी बात उसने स्वप्न में भी नहीं विचारी थी। बनने-सँवरने और अभिनेत्रियों के समान सुन्दरी प्रतीत होने की कामना तो उसके स्वभाव में ही थी। आज समान देखकर उसे लालच आ गया। मेहमानों पर रोब डालने और उनकी प्रिय बनने की इच्छा

से ही वह दौड़-दौड़ कर उनकी खातिर कर रही थी। परन्तु इससे इतना उलट-फेर हो जायेगा, यह तो उसकी कल्पना में भी नहीं आया था। अम्मा क्या सोचती होंगी—बाबू क्या कहेंगे? यही न कि इस डायन ने बहन का विवाह रुकवा दिया। जीजी तो मेरी सूरत भी न देखना चाहेंगी। यह ठीक है कि गरिमा से वह आप ही लड़ती रहती थी—घर में आई प्रत्येक अच्छी वस्तु पर वह अपना अधिकार जताना चाहती थी। माँ के डाँटने पर उत्तर देती थी कि—'क्यों? वह मुझसे बड़ी क्या हुई लाट साहब बन गई! जो चीज़ बनती है पहले उन्हें मिलनी चाहिये। न जाने तुम इन्हें घर से निकालती क्यों नहीं?' घर का भी काम वह रत्ती भर न करती थी! गरिमा की एक बात भी वह उधार न खाती थी, यहाँ तक कि परीक्षा में नम्बर भले ही कट जाय, वह बहन से पढ़ती भी नहीं थी—किन्तु आज उसी बहन के इस दुर्भाग्य का कारण बनकर वह अपने को महान अपराधी समझ रही थी।

धीरे-धीरे चल कर प्रतिमा छत पर आई—तारों के हल्के प्रकाश में देखा बहन मुँडेर पर सिर टिकाये खड़ी है—वह दबे पाँव उस तक गई। खड़ी रही। गरिमा गहन विचारों में डूबी थी। उसने सिर नहीं उठाया। अकस्मात् प्रतिमा ने झुककर बहन के पाँव पकड़ लिये। आई हुई रुलाई को छाती में समेटते हुए उसने कहा—'जीजी, मैंने जान-बूझ कर कुछ नहीं किया!' और अपना माथा बहन के पाँवों पर टेक दिया। गरिमा को जैसे बिजली छू गई। प्रतिमा की यह कातर वाणी उसे नीचे से ऊपर तक हिला गई—उसने वहीं बैठ कर छोटी बहन को बाहों में भर लिया—'पगली!' गरिमा ने उसकी पीठ पर अपने नेत्रों से मोती वारते हुए कहा—'यह तू क्या सोच रही है!'

'तुम बाबू जी से न कह सको तो मै स्वयं ही कहूँगी।' गरिमा ने दृढ़ स्वर में लक्ष्मी से कहा—'आखिर व्याह तो अपने प्रतिमा का भी करना ही था। दो साल आगे या पीछे। इतनी कठिनाई से तो बाबू जी ने यह सम्बन्ध जुटाया। अब आप झूठ-मूठ के मान अभिमान के कारण उसे हाथ से क्यों खोती हैं ?'

लक्ष्मी अवाक खड़ी थीं। बेटी की पुकार पर वह पति को कोठरी में ही छोड़ ऊपर गईं तो गरिमा ने उससे कहा—'आप क्यों नहीं प्रतिमा के लिये सम्बन्ध पक्का कर लेते !'

उन्होंने उसे समझाना चाहा—'गिरी, दुनिया बहुत बुरी है। बड़ी को छोड़ छोटी का ब्याह रचायेंगे तो नाहक दस बातें उठेंगी। वे लोग तो इसी फागुन में शादी भी माँग रहे हैं, भला महीने भर में हमें दूसरा लड़का कहाँ मिल जाता है जो तेरी और उसकी साथ-साथ कर दें। न इतना पैसा ही है !'

'दुनिया का क्या है—उसका अपना मुँह है तो बातें बनायेगी पर झूठ के पुल पर बाज़ार नहीं लगते। जब मेरा कोई दोष नहीं है तो मुझे भय काहे का ! देखती नहीं हो आजकल कमाऊ लड़कों का कितना अकाल पड़ा हुआ है ! जितना भी भार हल्का कर सको वही गनीमत। फिर ठीक तो है अम्मा—गरिमा ने बात को बिलकुल हल्का बना कर कहा—'इस चुड़ैल का मन पढ़ने में भी नहीं लगता। हमेशा ही तो थर्ड आती है। ब्याह करके पीछा छुड़ाओ—जब कामचोर बहू से पाला पड़ेगा तो माँ बेटों को पता लग जायगा। और मै तो सच में ही बी० ए० करने से पहले इस झंझट मे नही फँसना चाहती थी। आपके डर से नहीं कहती थी, नहीं तो मेरा मन विवाह करने को तनिक भी तैयार नहीं। चलो, भगवान तो अर्न्तयामी है—उन्होंने मेरी इच्छा पूरी कर दी !'

लक्ष्मी मूर्ख की भांति बेटी को ताकने लगी—'अम्मा !' गरिमा ने लाड़ से माँ के कन्धे पर हाथ रक्खा—'क्या मैं तुम्हें बुरी लगती हूँ ?'

क्या मै तुम्हारा काम नहीं करती ? आज्ञा नहीं मानती ?'

लक्ष्मी ने धीरे से बेटी का मुँह छू कर कहा—'तू तो मेरी सोना बेटी है। उसका बड़ा भाग्य होगा जो तुझे पायेगा। गिरीश की आँखों पर तो गोरे रंग का परदा पड़ गया है।'

'अम्मा, बाबू जी कहीं जाकर मना न कर दें।' गरिमा ने उसे नीचे ठेला—'जाओ, उनसे मेरा नाम लेकर कह दो–नहीं तो मैं स्वयं जा रही हूँ।'

हर्ष-विषाद से भरी लक्ष्मी नीचे उतरी।

स्टेशन जाने से पाँच मिनट पहले गिरीश की माँ ने प्रतिमा के गले में लाकेट पहना कर गोद में लड्डू नारियल रख दिया।

पन्द्रह दिन बाद ही ब्याह की लग्न भी थी।

२

प्रतिमा का विवाह हो गया। समधी और दामाद दोनो ही प्रसन्न थे। नकद व समान मिला कर उनके घर चार हज़ार पहुँच गया, साथ में इतनी गोरी चिट्टी बहू। अमरनाथ और लक्ष्मी दोनों ही दुखी थे। पाली-पोसी सन्तान को पराये घर भेजने पर सभी माता-पिता शोकग्रस्त होते हैं–पर उनका दुख दुहरा था–अपनी सामर्थ्य से ऊपर का दहेज़ उन्होंने गरिमा के लिये जुटाया था–प्रतिमा के लिये तो वे समझते थे अभी दो तीन साल बाद देखेंगे। फिर उनका विश्वास था उसके विवाह में इतने से कम में ही काम चल जायेगा। अब दिये हुये वचन और कहीं

हुई वस्तुओं से कम करना अपमानजनक था–समधी सोचते क्या प्रतिमा उनकी सौतेली बेटी है !

पास पड़ोस बिरादरी में बड़ी से पहले छोटी के विवाह पर भी बहुत सी रंगीन खबरें उड़ीं। जिनमें कुछ यह है—'उनके बड़े साले ने जिनसे उनका बहुत पुराना बैर चला आ रहा था–समाचार फैलाया कि बड़ी लड़की की पीठ में फुलबहरी (सफेद कोढ़) का दाग है–ससुराल वालों को पता लग गया था। सास ने पीठ खुलवा कर देखी और लड़की से नाता करने से मना कर दिया। भले आदमी थे इससे अमरनाथ के हाथ-पाँव जोड़ने पर छोटी को स्वीकार कर लिया। नहीं तो उनके अफसर लड़के को तो बिजनौर के जज साहब की लड़की मिल रही थी। लक्ष्मी भाई के झूठ पर अत्यन्त मर्माहित हुई। परन्तु उपाय क्या था–गरिमा की पीठ पर एक बार छत पर सुलगती अंगीठी से बड़ा सा कोयला आ पड़ा था। उसी जले के दाग पर इस झूठ का निर्माण हुआ था। पड़ोसी ओवरसियर साहब के साहबज़ादे ने जिन्होंने साल भर पहले गरिमा को एक अत्यन्त प्रेमपूर्ण पत्र लिखा था ! जिसमें उसे न देख पाने पर रातों को नींद व दिन का चैन उड़ जाने की दुहाई भी थी (और गरिमा ने पत्र माँ को दे दिया था जिससे उन्हे अपने पिता द्वारा बड़ी डाँट पड़ी थी) अपने मित्रों में कहा—'यह लौडिया बड़ी हज़रत है। देखने में ही सीधी है, पर इसका कहीं 'लव अफेयर' (प्रेम व्यापार) चल रहा था। लड़के को पता लग गया इसीसे उसने इससे विवाह को साफ मना कर दिया। गरिमा का गेहुँआ रंग तो दूर-दूर तक साँवला कह कर प्रसिद्ध हो ही गया ! अस्तु।

अपवाद उठते हैं और यदि तल में कुछ ठोस पदार्थ न हो तो पानी के झाग की भाति बैठ भी जाते हैं। प्रवादों की आँधी भी कुछ दिनों हल्की पड़ गई। गरिमा भी कुछ दिनों छुई-मुई सी मुरझाई-मुरझाई घर में घुसी रही परन्तु फिर उसने अपने मन को प्रबोध दिया—'क्या

कन्या जीवन की अन्तिम चरम परिणति और सौभाग्य विवाह में ही निहित है ! उसके कालेज की प्रिंसपिल तो चालीस वर्ष की होकर भी कुमारी हैं—क्या मैं ऐसे ही नहीं रह सकती ! परन्तु वह क्रिश्चियन हैं ! फिर बहुत बड़े धनवान की बेटी भी हैं ! बाबू जी से तो यदि मैं यह कह दूँ कि मैं कभी विवाह करूँगी ही नहीं तो अम्मा तो शायद रो-रोकर अन्धी हो जायेंगी। उसने किसी से कहा नहीं—बस अपनी पढ़ाई में मन लगाया। संगीत पर भी अधिक श्रम करने लगी।

प्रतिमा एक महीने बाद ससुराल से लौटी। गहनों और बनारसी साड़ी से सजी बनी प्रतिमा पहले से भी अधिक सुन्दर, गोरी और मक्खन की टिकिया से भी अधिक मुलायम होकर लौटी थी। सारे पड़ोस ने उसके भाग्य को सराहा—उस सराहना में गरिमा के भाग्य पर दया भी सन्निहित थी। लक्ष्मी भी गरिमा को देख दर्द से भर उठती थी। पर उपाय क्या था ! अभी तो साल डेढ़ साल दफ़्तर से लिया ऋण उतरने में प्राण होमने होंगे। एक-एक पैसे की तंगी भुगतनी होगी—हाय राम, तब तक तो गिरी इक्कीस की पूरी होने आ जायगी—वे छटपटा कर रह गईं।

प्रतिमा आठ दिन बाद ही फिर ससुराल चली गई। दामाद के फर्म की ब्रान्च कलकत्ते में खुल जाने से वह बहू को साथ ही ले गया—

...और यथा समय गरिमा ने बी० ए० भी कर लिया। अमरनाथ के अथक परिश्रम पर भी अभी तक कहीं कोई लड़का उन्हें नहीं जुटा। अपनी सेकेण्ड क्लास बी० ए० पास लड़की को वे किसी थर्ड क्लास बी० ए० लड़के को न देना चाहते थे और यदि मजबूरी में चाहने भी लगें तो विवाह में खर्चने को पास में फूटी कौड़ी न थी। नकद देने का तो प्रश्न ही क्या !

अन्त में लड़कों के कालेज में गरिमा एम० ए० में दाखिल हो गई। लक्ष्मी ने इच्छा न होने पर भी स्वीकृति दे दी—कम से कम एक

बहाना तो था कि, 'क्या करें बहिन जी! लड़की मानती ही नहीं। कहती है एम० ए० पास करके ही रहेगी।' बहन जी मुख पर तो यही कहती थीं कि—'हाँ हाँ क्या हरज है। आजकल तो सभी लड़के-लड़कियाँ पढ़ रहे हैं!' पर पीठ पीछे वे ही फ़रमातीं—'लड़की नहीं मानती! अरे ये अमरनाथ बड़े चालाक हैं। लौंडिया सीधी मिल गई है—नौकरी करा के बेटी की कमाई ठाठ से खायेंगे! और लगता था पड़ोसियों की यह भविष्यवाणी भी सत्य होती दिख रही थी। अब एक एम० ए० में पढ़ती लड़की के लिये लड़का भी तो एम० ए०, पी० एच० डी० ही चाहिये—और उतनी ऊँची दर के लड़के को खरीदने के लिये अमरनाथ के पास पैसा न था—अब तो परिवार के छोटे चारों बच्चे भी बड़े हो चले थे—उनकी पढ़ाई का खर्च भी बढ़ रहा था—नीलिमा ही सोलहवें में पड़ गई थी। दिन खिसकते गये महीने भी! तीन वर्ष फुर्र से उड़ गये गरिमा अब एम० ए० भी हो जायगी। उसकी फाइनल की परीक्षा में कुल छः दिन शेष थे। घर के अन्य सब बच्चे भी पढ़ाई में जुटे थे। बस गरिमा ही समय निकाल कर माँ की सहायता करती रहती थी।

लक्ष्मी के प्राण रात-दिन सूखते रहते थे। लो लड़की तो एम० ए० भी हुई जा रही है—अपने छरहरेपन और भोले मुखड़े के कारण चाहे वह बीस से कम ही जँचती थी। पर माँ तो जानती है कि गरिमा तेइसवें में चल रही है। भगवान अब क्या होगा? आज भी उनका हाथ वैसा ही रीता था जैसा प्रतिमा की बिदाई के अन्तिम दिन। तीन वर्षों में प्रतिमा दो बच्चे की माँ बन गई थी—बेटी के घर न आने पर भी बच्चों के जन्म पर उसे कई सौ के कपड़े और मेवा सभी कुछ भेजना पड़ा था—अब पूरे साढ़े तीन वर्ष बाद प्रतिमा तथा दामाद घर आ रहे थे। घर में कितनी ही तंगी थी पर इतने दिनों पर बेटी आ रही है। दामाद भी दस पाँच दिन रहेगा ही। लक्ष्मी ने किसी तरह घर में चीनी, मैदा सभी कुछ जुटाया।

प्रतिमा आई! बिस्तरे, बक्से, करिडयाँ—बच्चा गाड़ी, हिंडोला और

दो बच्चे तथा आसन्न गर्भ के भार व मोटापे से फूली बड़े से शाल में मोटी सी गठरी बनी प्रतिमा जब कमरे में बैठी तो वहाँ तिल रखने को जगह न थी। घर भर में एक हंगामा सा फैल गया। सवा दो वर्ष की बेबी के लिये नानी, मौसी, मामा सभी अपरिचित थे। और वह उन्हें देखकर प्रतिमा की बगल में घुसी जा रही थी। साल भर के मुन्नू के दाँत निकल रहे थे। सफर में वह सो न पाया था और इस समय भूख, थकान और परेशानी से चीख रहा था। गिरीश तो सब को नमस्ते करके बाहर की बैठक में जा बैठा था और लक्ष्मी उन सब के भोजन नाश्ते की चिन्ता मे व्यस्त रसोई में थी। नीलिमा की बोर्ड परीक्षा है। प्रीतो जीजी के बच्चे देखकर उन्हें गोद में खिलाने को उसका मन अवश्य हुआ परन्तु उस रोते मुन्नू को सम्भालना उसे कठिन लगा। उसने आँख बचा कर अपनी पुस्तकें सम्हालीं और पड़ोस मे अपनी सहेली के घर पढ़ने चली गई—उसे मालूम था घर में मेहमान आ जाँय, तो उन्हें नाश्ता पान देते करते ही समय खत्म होता है।

बच्चा चीख रहा था और प्रतिमा खटोले पर आँखें मूँदे गठरी बनी लेटी कह रही थी—'चुप हो जा नहीं अभी दो चांटे जमाऊँगी। खा लिया कम्बख्त ने।' गरिमा ने देखा वह एकदम निढाल हो रही है। गहने कपड़ों से सजी प्रतिमा के पहले से दुगनी मोटी और फैली हुई होने पर भी रंग उसका अपनी केशरी आभा गँवा कर दूधिया सफेदी ले चुका था—लगता था मोयन पड़े मैदे की बड़ी-बड़ी पिण्डियों पर किसी ने हल्दी पोत दी हो। गरिमा ने मचलते बच्चे को गोद में ले, थपकते हुए कहा—'अरी प्रीतो, यह क्या दशा बना डाली अपनी ? क्या एकदम मरने की ठान ली है ?' बहन का इंगित समझ कर भी प्रतिमा ने बात उड़ा दी—'अच्छी भली तो हूँ। तुमसे दुगनी तिगुनी तो मोटी हो रही हूँ। अपने को नहीं देखती ? तीन बरसों में और भी सूख गई हो।'

'मुझे सूखिया हो रहा है या तुझे मुटापे का रोग, यह तो देखने

से ही पता लगता है। मैं कहती हूँ अगर इसी प्रकार प्रगति करती रही तो दर्जन पूरे होने में देर न लगेगी। तू कुछ सावधानी क्यों नहीं करती ?'

रोते बच्चे को उसकी बगल में लिटाते हुए गिरी ने कहा—'इस गरीब के दूध पर तो अभी से डाका पड़ गया !'

'क्या सावधानी बरतूँ ?' प्रतिमा के स्वर में खीज उभरी—'लड़कियों के वश में क्या होता है ?'

'अरे भाई !' गिरी ने मुरब्बी की भांति कहा—'आखिर गिरीश बाबू पढ़े लिखे युवक हैं ! तू बच्ची थी तो वह तो बच्चे नहीं हैं। आज कल तो सैकड़ों साधन हैं विज्ञान और सरकार दोनों ही ?'

'उँह जीजी अब जी मत जलाओ।' प्रतिमा ने अपने दुग्ध विहीन स्तन को बच्चे के मुख में देते हुए बात काटी—यह सब तुम्हारी मेहरबानी है। अपनी मुसीबत मेरे गले डाल कर अब बातें बना रही हो।'

बच्चे ने दूध न निकलने पर अपने नये निकले चारों दाँतों से स्तन में काट लिया। प्रतिमा पीड़ा से होंठ दबा गई। झटके से दूध छुड़ा कर बोली—'जीजी, कण्डी में शीशी रक्खी है ज़रा गरम पानी से धोकर इसका दूध बना दो !' फिर दोनों हाथों से माथा दाब पड़ रही। उसे उबकाई आ रही थी। गिरी ने तरस भरे प्यार से बहन को निहारा, फिर रोते बच्चे को बांये हाथ से थाम कर कण्डी उठाये आँगन में चली गई।

लक्ष्मी ने दूध बनाया। किसी प्रकार अनभ्यस्त हाथों से बच्चे को दूध पिला गिरी उसे कन्धे लगा कर टहलने लगी। बच्चा सो गया तो ऊपर वाले कमरे में जहाँ छोटे तीनों भाई पढ़ रहे थे उसे सुला आई। नीचे आकर देखा प्रतिमा नल के नीचे मुँह लटकाये ओ-ओ कर रही थी। माँ उसकी पीठ सहलाती कह रही थीं—'बस बेटी ज़रा जी संभाल, ले नीबू चाट ले।' निढ़ाल प्रतिमा उठ कर फिर भीतर जा लेटी।

लक्ष्मी ने परेशानी भरी मुद्रा से बड़ी बेटी को देखा, फिर याचना से बोली—'गिरी ! प्रीतो की तबियत तो अच्छी नहीं है। ज़रा मुन्नू को तू ही सम्भालियो। क्या बताऊँ तेरी पढ़ाई के दिन हैं पर और कोई उपाय भी तो नहीं है। यह मरी नीलो कहाँ गई ?'

'आप उसे काम में न फँसायें अम्मा ! उसकी बोर्ड की परीक्षा है, चिन्ता क्यों करती हैं, मैं सब देख लूँगी।' माँ ने कृतज्ञता से भीग फिर कहा—'और बेटी एक बात कहूँ—जमाई के नाश्ते, खाने और आराम का ध्यान भी तुझे ही रखना होगा। प्रतिमा से दौड़ा नहीं जायगा। इतने दिनो पर आया है। यह न समझे कि अपनी बेटी को तो हाथों हाथ उठाया, उसकी परवाह नहीं की।'

गिरी एक क्षण चुप रही फिर 'अच्छा' कह कर प्रतिमा के पास चली गई।

लक्ष्मी जानती है कि गरिमा के मन में आज भी गिरीश के प्रति वही गाँठ है। गौना लेने आया था तब भी वह उसके सामने नहीं आई थी। स्वयं उसके मन मे भी जमाई के निश्छल स्नेह में कहीं खटाई पड़ी है। पर आखिर है तो जमाई ! बेटी का भाग्य उसके साथ बँधा है। वह उनका उद्धारकर्त्ता है। उसकी अवमानना करने से कैसे चलेगा ? तीन वर्षों बाद तो अब जाकर वह प्रीतो का मुख देख पाई है। जो गिरीश अप्रसन्न होकर चला गया तो दोबारा सूरत भी न दिखायेगा। रसोई में तरकारी जलने की गन्ध आई। वह दौड़ती हुई उधर लपकी।

गरिमा थाली लेकर चली गई।

गिरीश उसी ओर एक-टक देखता बैठा रहा। पास ही स्टूल पर चिलमची, साबुन और लोटे में पानी रक्खा था, उसे हाथ धोने की

सुधि ही भूल गई थी। आज उसे ससुराल आये चौथा दिन था। दफ़्तर के काम-काज और अपने नये बढ़ते हुए परिवार की चें-चे, में-में, तथा प्रतिमा की थकावट भरी कराहटों से उसे यहाँ एकदम छुटकारा मिल गया था। यूँ अपने घर पर उसके पास नौकर भी हैं परन्तु पत्नी यदि अस्वस्थ रहे–कभी अपने बढ़े पेट के कारण, कभी अपने गोद के नन्हें छौने के कारण–तथा कभी सिर दर्द व उबकाइयों के कारण पति के साथ घूमने जाने से, उसके साथ चुहलें करने से किनारा करती रहे—उल्टे दफ़्तर से लौटने पर बच्चा उसे थमा देना चाहे तो कुछ दिनों के लिये यह मुक्ति बहुत सुखकर प्रतीत होती है।

गिरीश को प्रतिमा का मोह न हो ऐसी बात नहीं है, परन्तु गुदगुदे गद्दे सी उसकी कोमल फूली देह उसके लिये अब रोमाञ्चकारी नहीं रही है। उसका सुनहरा रंग जो अब भी बहुतों की स्पर्द्धा की वस्तु है अब गिरीश के लिये उतना मोहक नहीं रहा है। उल्टे इन चार दिनों में गरिमा की नाज़ुक पतली मुट्ठी में आ जाने योग्य कमर, उसके स्निग्ध गेहुँये रंग की पतली देह, यष्टि उसे बार बार अपनी ओर आकृष्ट करती थी। विद्या और अध्ययन की गरिमा ने गिरी की चाल में एक अव्यक्त शालीनता उत्पन्न कर दी थी। कालेज में निरन्तर लड़कों के साथ पढ़ने के कारण उसमें जो संयत उन्मुक्तता और बढ़ती आयु की गम्भीरता आ गई थी उसने गिरीश को आश्चर्यचकित कर दिया था। उसे अपने पर आश्चर्य हो रहा था कि उसे उस समय क्या हो गया था! कहाँ एम० ए० में पढ़ती संगीत प्रेमी कोमला तन्वंगी गरिमा, कहाँ मात्र टेन्थ तक पढ़ी ज़रा सी बात पर रूठने और हँसने वाली फूली-फली शृङ्गार की चेरी प्रतिमा"। थाल उठा कर ले जाती गरिमा की कनक (गेहूँ) स्पर्द्धी रंग वाली पतली कोमल कलाई का लचकना उसे घायल सा कर गया। कल्पना के राज्य में उसने मन ही मन उस हथेली को चूम लिया।

'पान लीजिये।' गिरी थाल रख कर पान बना लाई थी। 'अरे आपने अभी हाथ भी नहीं धोये। लाइये मैं धुला देती हूँ।'

गिरीश ने मुस्करा कर 'ओह' कहा और धोने की मुद्रा में हाथ आगे बढ़ा दिये। तौलिये से हाथ पोंछने-पोंछते बोला—'जब इतना कष्ट किया है तो ज़रा पान भी अपने हाथों से खिला दीजिये।'

गिरी को संकोच तो लगा। परन्तु छोटे बहनोई की इतनी सी बात को इन्कार क्या करे? उसने तीन उँगलियों से बीड़ा उसकी ओर बढ़ा दिया। न जाने उसकी असावधानी थी या गिरीश ने जान-बूझ कर ही इस प्रकार पान मुँह में भरा कि उसकी उँगली ज़रा सी दबा ली। गिरी चौंकी ही थी कि गिरीश ने दाँत हटा लिया फिर धीमे से कहा—'क्षमा करना!'

गरिमा 'कोई बात नहीं' कह कर तश्तरी लिये भीतर चली गई। परन्तु उसे अपने बहनोई का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। क्षमा माँगते समय भी गिरीश के नेत्रों में अजब सी शरारत भरी चमक थी। गरिमा पहले ही दिन से यह अनुभव कर रही थी कि गिरीश उसके निकट आना चाहता है। बड़ी साली होने के नाते विनय का आडम्बर करते हुए भी उससे हँसी करने का कोई अवसर छोड़ना नहीं चाहता। जीजा और साली में मज़ाक होता ही है। अपने देश में इसे मान्यता प्राप्त है। गिरीश के प्रति उसके मन में कहीं कुण्ठा न होती तो कदाचित् वह स्वयं भी सरल हास-परिहास का आनन्द लेना चाहती; परन्तु उसके साथ उसके अपने अपमान का एक अन्तर अध्याय जुड़ा हुआ है। उसका अचेतन गिरीश के प्रति कठोर है। वह पूर्ण युवती है। गिरीश जैसे शिक्षित, स्वस्थ, कमाऊ युवक का अपने प्रति झुकाव उसके मन में लज्जा भरे प्रणय की फुहार बरसा सकता था। उसके सोये और दबे स्वप्नों को जगा सकता था—परन्तु यह सब तभी होता जब गिरीश उसकी बहिन का पति न होता! वह यदि उसकी प्रेयसि

होती—और बीच में कुछ दिनों अपनी अवहेलना पाकर भी यदि उसका प्रेमी फिर उसकी ओर उन्मुख होता तो वह इसे अपनी विजय मानती—अपने प्यार और रूप पर उसे गर्व होता ! पर गिरीश उसका प्रेमी नहीं था। गिरी के स्थान पर एक दिन उसने प्रतिमा को पसन्द किया था। वह उसकी बहन का पति था। वह उसकी बड़ी साली थी। आदरास्पद ! तश्तरी रख कर हाथ धोते हुए उसने सोचा—अब से नीलो द्वारा ही वह गिरीश को नाश्ता भिजवायेगी। माँ से कहने की इच्छा भी हुई; किन्तु गरिमा अब इतनी छोटी नहीं है कि किसी बात के सब पहलू न सोच सके। यह ओवरसियर के लड़के वाला मामला नहीं था कि उसका पत्र माँ के हाथ पर रख दिया था ! माँ इसमें क्या करेगी ? जमाई की ओर से उसका मन और भी खट्टा हो जायगा। प्रीतो के दुर्भाग्य को सोच कर वह और भी अधिक दुखी हो जायगी। गरिमा ने एक बार अपने हृदय की पड़ताल भी की—क्या कहीं उसके मन में ही तो चोर नहीं बैठा है ? कहीं बहन के सुख-ऐश्वर्य को देख कर उसके मन के किसी कोने में भी वही सुख पाने की कामना तो नहीं छिपी है ! प्रणय सुख की कामना, किसी को मोहित करके उसकी बाँहों में दुबक जाने की इच्छा, कभी-कभी उसे नहीं होती, ऐसी शपथ वह कैसे ले ? परन्तु उस कामना का काम्य पुरुष गिरीश कभी नहीं हुआ, उसके प्रति उसने कभी स्वप्न में भी नहीं विचारा !

सिनेमा के चित्रों की भाति गिरी के मानस पर अपने तेइस वर्षीय जीवन के सभी आकर्षण घूम गये। वह जब चौदह वर्ष की थी—कोई नौ साल पहले की बात है। उसका अठाइस वर्षीय फुफेरा भाई जो मिलिटरी में था जिसने कभी उसे गोद में खिलाया था—और जो उस समय तक केवल इस कारण अविवाहित था कि उसके पाँच बहनें थीं और उनके ब्याह का इतना ऋण था कि अपना ब्याह करने की नौबत ही न आई थी ! भाई पन्द्रह दिन रहा। सब बच्चों को उसने सिनेमा

दिखाया-घुमाया था और कुलफियाँ और टाफियाँ खिलाई थीं। प्रतिमा और गरिमा के लिये बढ़िया साटन के सलवार के सूट सिलवा दिये थे। जीवन में पहली बार दोनो ने सूट पहना था। दोनों भाई को सूट दिखाने ऊपर पहुँची-प्रतिमा जाने किस काम से नीचे चली गई तो भाई ने गिरी से पूछा--'गिरी मै तुझे अच्छा लगता हूँ?' गिरी ने आनन्द से झूम कर कहा—'अन्नू भाई, आप मुझे इतने अच्छे लगते हैं। इतने अच्छे लगते हैं कि मै बता नहीं सकती!' और अन्नू को न जाने क्या हुआ कि उसने उसे गोद में भरकर, कस कर चूम लिया। चूमता ही गया-गिरी डर गई। मिलिटरी जवान की लाठी सी पुष्ट बाहों में दबी उसके चौड़े चकले सीने से लगी गिरी को एक विचित्र सी अनुभूति हुई! परन्तु साथ ही भय भी लगा--'यह तो पाप है?' अन्नू उसका भाई है? अन्नू भाई, उसने कातर स्वर में कहा—छोड़ दो। अन्नू ने भी अधिक कुछ नहीं किया-उसे गोद में बैठा कर धीरे से कहा—'गिरी, जो तू मेरी बहन न होती तो कितना अच्छा होता!' फिर धीमे से पूछा—'आज की बात किसी से कहेगी तो नहीं?' गिरी ने सिर हिला कर 'न कहने' की हामी भरी-उसने फिर पूछा—'तू मुझसे गुस्सा तो नहीं है? 'न!' गिरी भाग कर नीचे चली गई। वह ऊपर से नीचे तक पसीने से नहा गई थी। आज वह पापी हो गई थी। उसने पाप किया था! वह दिन भर कोठरी से नहीं निकली। दो-तीन दिन बाद फिर अन्नू चला गया। गिरी ने स्वस्ति की साँस ली। परन्तु अन्नू का वह आवेग भय, नरम-गरम और कोमल और कठोर आलिंगन उसे बहुत दिनों तक याद रहा-अन्नू भाई की याद भी काफ़ी दिन आती रही-फिर धीरे-धीरे भूल गई। मन ही मन उसने आगामी कई वर्षों तक भगवान् के सम्मुख अपने उस पाप के लिये क्षमा माँगी। अन्नू भाई के लिये भी माँगी। फिर तो धीरे-धीरे माँ की सीखों और अपनी समझ दोनों से उसे यह पता चलता गया कि लड़की को यदि अच्छी बनना है तो उसे किसी से ऐसा प्रेम नहीं करना होगा जिसमें चूमने

की नौबत आये। संसार के सब पुरुष उसके भाई और पिता के समान हैं—केवल माता-पिता जिससे विवाह कर देंगे वही उसका पति, प्रेमी सर्वस्व होगा। वही उसको चूम सकता है। और गिरी अच्छी लड़की बनना चाहती थी। अपनी ओर से उसने कभी किसी से जान बूझकर वैसा प्रेम नहीं करना चाहा। उसने देखा था ऐसी लड़कियों को कोई अपनी लड़कियों से मिलने देना पसन्द नहीं करता—सारे मोहल्ले व जात-परजात सब में उसकी और उसके वंश की चर्चा होती थी। यही नहीं, उनके मरे पुरखों में भी कब कौन कैसा नालायक था—किसकी बुआ, चाची या मौसी ने भी ऐसा अपराध कर डाला था, इन सबके चरचे भी होते थे। ऐसी लड़कियों के विवाह होने भी कठिन थे। उन्हें कोई उनसे भी बुरा लड़का मिलता था। गिरी की एक सहेली के माता-पिता तो बेचारे मोहल्ला ही नहीं शहर छोड़कर चले गये थे।

गिरी अच्छी लड़की थी। भरसक अच्छी बनने का प्रयत्न करती थी। फिर भी न जाने कैसे इतनी लक्ष्मण रेखाओं को भी लांघ कर उसकी सहेली स्नेह का भाई उसके हृदय के समीपतम आ गया था! वह तब इण्टर में पढ़ती थी। घर में अट्ठारह वर्ष की युवती कन्या को देख-देखकर माँ उसांसें भरती रहती थी। गिरी ठाकुर जी के आगे जहाँ पास होने की प्रार्थना करती वहाँ शीघ्र ही विवाह हो जाने की भी—तब माँ का कष्ट दूर हो जायेगा! वह भी तब शृङ्गार कर सकेगी! किसी के हृदय से लग कर एक बिन्दी की शीशी, हाथ की अँगूठी या अच्छी सी साड़ी लाने को कह सकेगी। उसके पास भी गहनों की निजी सम्पत्ति होगी!

घर में कोई उसे पढ़ाने वाला न था। अमरनाथ दमा के रोगी थे—नौकरी तो किसी तरह चलाते थे, पर और कोई बोलने या पढ़ाने का काम करने से साँस फूलने लगती थी। समय भी न मिलता था। गरिमा स्नेह के घर पढ़ने चली जाती। उसका भाई अमित बी० ए०

में पढ़ता था–उन दोनों की सहायता कर देता। फिर न जाने कैसे गिरी को अमित का मोह बढ़ता गया। उसे देखने, उसके समीप रहने की इच्छा बढ़ती गई! पर वह अच्छी लड़की थी–उसने मुख से कभी कुछ नही कहा, कोई इंगित नही किया! उल्टे जहाँ पहले वह अमित से कभी आँखे मिला कर बात कर लेती थी, समझ मे न आने पर पूछ लेती थी। अब केवल आँखे झुकाये सुनती रहती।........फिर अमित को भी उससे प्यार हो गया!

माँ के लड़का हुआ था और घर का सब भार गिरी पर था–वह आठ दिन से स्नेह के घर न गई थी–स्कूल गई तो स्नेह ने उसे एक कापी देकर कहा––'भइया ने तेरे लिये नोट्स बना दिये हैं। पढ़ लेना! उन्हे तो तेरी इतनी चिन्ता है कि शायद तू फेल हो गई तो उनका संसार उजड़ जायगा।'

गिरी ने कापी ले ली। कापी के बीच में दो पन्ने साथ-साथ जुड़े थे। किनारे पर गोंद था–गीला करके खोला तो उसमे अमित ने लिखा था––'प्रिया! मेरी प्रिया! मेरी स्वप्न वधू! तुम आठ दिन से नहीं दिखाई दी (क्षमा करना मैं अपने होश में नही हूँ कि क्या लिख रहा हूँ!) परन्तु इतना होश है कि तुम्हे नहीं देखूँगा तो पागल हो जाऊँगा–गिरी, मेरी गिरी! तुम 'प्रिया' सम्बोधन से रुष्ट न होना–वह मेरे मन की पुकार है–और मेरा मन कहता है कि तुम भी मुझे प्रेम करती हो–तुम्हारे वे झुके-झुके नेत्र–वह जरा-जरा में संकोच से सिहर उठना–क्या मेरे ही लिये नहीं है? है, अवश्य है। एक बार दर्शन दो न!' पढ़कर गिरी का भी होश खो गया था–लक्ष्मण रेखा आँखों से ओझल हो गई थी। उस दिन वह समय निकाल कर मात्र कापी वापिस करने के लिये स्नेह के घर गई। अमित उसका स्वर सुनते ही बाहर आ गया–'तुम इतने दिन नहीं आयीं?' उसने आवेग से प्रश्न किया फिर सम्हल गया––'क्या फेल होना चाहती हो?' गिरी अबोली रह गई,

स्नेह न होती तो कदाचित दौड़कर अमित के लग जाती। कापी देकर लौटना पड़ा। फिर एक दिन अमित ने अकेला पा उसके दोनों हाथ थाम लिये। थरथरा कर कहा—'गिरी, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। तुम इतनी निष्ठुर हो कि कभी एक शब्द भी प्यार का नहीं कहतीं! गिरी!' गिरी के शिराओं में रक्त के स्थान पर मदिरा दौड़ रही थी—पर न जाने उस समय लक्ष्मण रेखा कैसे उभर आई—चुम्बन से पहले ही गिरी दूर हट गई—'न न' वह फुसफुसाई!

'गिरी, तुम मेरा विश्वास नहीं करती—मैं तुमसे हृदय से प्रेम करता हूँ! मैं तुम्हें अपना बना लूँगा—मैं माता-पिता, जात-पाँत किसी की परवाह नहीं करूँगा—बस दो वर्ष ठहर जाओ!'

गिरी ने नेत्रों द्वारा ही प्रतीक्षा करने की हामी भरी और लौट आई। परन्तु उसका भाग्य कि रात को ही माँ ने बुला कर कहा—'गिरी, यह मैं क्या सुन रही हूँ? क्या हमें बीच मझधार में डुबोना चाहती है? ये अमित ने तेरे नाम चिट्ठी कैसी भेजी थी?' गरिमा के काटो तो रक्त नहीं। माँ कहती गई—'हम तो स्वयं ही दिन रात एक कर रहे हैं। पर तेरी किस्मत ही जाने कहाँ सोई है!'

गिरी की आँखों से गंगा-यमुना बह चली। माँ का मन भी भीग गया। उसकी पीठ पर हाथ फेर कर धीमे से कहा—'लड़का तो बहुत अच्छा है। घर भी अमीर है। पर बेटी वह ब्राह्मण, हम कायस्थ—उसके घर वाले कभी न मानेंगे। और फिर हम ही कहाँ रहेंगे? तू अकेली तो नहीं है। तेरी दो बहनें हैं। क्या उनके गले में फाँसी लगानी न पड़ेगी? उनका ब्याह कैसे होगा?'

गिरी काँप गई। धीमे से उत्तर दिया—'माँ, मैंने कुछ नहीं किया है। मैं अब कभी वहाँ नहीं जाऊँगी।' गिरी ने मन ही मन प्रतिज्ञा किया कि वह बहनों के लिये, माँ के लिये अपने को बलिदान कर देगी। वह अमित से नहीं मिलेगी। पर अब विवाह भी नहीं करेगी।

शायद अमित के घर वालों को भी अपने लड़के के रंग दिख गये थे। बी० ए० में फेल होते ही उसे इलाहाबाद भेज दिया।

सोच कर गरिमा ने एक ठंडी साँस भरी--कितनी बीमार हो गई थी वह तब-पर कुछ भी तो न हुआ। न वह मरी, न उसकी प्रतिज्ञा ही रही। माता-पिता की परेशानी देख वह यह कह ही न सकी कि मैं आजन्म कुवाँरी रहूँगी। उन्होंने विवाह तय कर लिया। गरिमा भाग्य को कोस कर चुप रही—फिर गिरीश ने उसे नापसन्द कर दिया। और आज तो गिरी तेईस वर्ष की एम० ए० तक पढ़ी पूर्ण वयस्क युवती है। इस बीच लड़कों के कालेज में पढ़ते हुए भी उसने अपने को मर्यादा प्रचलित अच्छी लड़की की मर्यादा-से डिगने न दिया था। वह समझ गई थी कि हमारे यहाँ प्रेम और विवाह के बीच में बहुत बड़ी खाई है। यूँ, वह खाई रुपये के बल पर पाटी जा सकती है, पर उसके पिता के पास रुपया नहीं है-होता तो गरिमा का विवाह न हो गया होता ? उसने अपना इतिहास दोहरा डाला, उसमें गिरीश के प्रति प्रेम-भावना का लेश मात्र भी न था। छोटी बहन के पति के नाते सौजन्य भले ही हो, वह अब अपने वश भर गिरीश के सामने न जायगी। उसने निश्चय किया। प्रीतो का लड़का रो रहा था। वह उसका दूध बनाने लगी।

★

गिरीश ने बेचैनी से करवट बदली। आज उसे किसी कल चैन न पड़ता था। इधर तीन दिनों से गरिमा की झलक उसे बस दूर-दूर से ही मिली थी। नीलिमा से कह कर बुलवाया भी तो उसने आकर उत्तर दिया—'कल जीजी का पेपर है। वह पढ़ रही हैं। कहती हैं इस समय क्षमा करें!' प्यासे ओठों तक आया जल का सुन्दर पात्र यदि इस प्रकार दूर खिसक जाय तो तड़प और भी बढ़ जाती है। रात

के कोई बारह बजे थे। दूर निरभ्र आकाश में सप्तमी का अर्ध चन्द्र चमक रहा था–उसकी शीतल सुधा स्नान किरणें खुले जंगले से आकर गिरीश के पलंग की पाटी पर मुग्ध हो सो रही थीं। परन्तु उनका शीतल स्पर्श गिरीश के मन के दाह को बढ़ाता गया, बढ़ाता गया। बैठक में उसके पास तीनों छोटे साले सो रहे थे। छोटे बच्चे दिन भर की खेल-कूद से थके–निश्चित खर्राटे भर रहे थे। गिरीश पलंग से उठ बैठा। आँगन में आ गया। ऊपर के कमरे में लैम्प जल रहा था। उसे मालूम था कि गरिमा और नीलिमा ऊपर के कमरे में ही पढ़ती और सोती हैं। वह दबे पाँव जीना चढ़ गया। कमरे के द्वार केवल उढ़के हुए थे–उसने झाँका–नीलिमा अपनी खाट पर सोई हुई थी। उसकी पुस्तक उसके वक्ष पर औंधी रक्खी थी। चीड़ की टूटी मेज पर रक्खे लैम्प के पास चारपाई खिसकाये गरिमा झुकी हुई अब भी पढ़ रही थी। उसके पतले ओंठ कभी-कभी अनायास ही फड़फड़ा से उठते थे। चिकने ऊंचे माथे पर चिन्ता के कारण रेखाएँ सी खिंच आती थीं। वह ध्यान मग्न थी। गिरीश ने बहुत आहिस्ते से द्वार खोला, पंजों के बल चल कर उसके पीछे पहुँच गया। उसका मन हुआ कि दोनों बाँहों में उसे भींच ले–वह झुका–लैम्प पर छाया पड़ने से गरिमा ने सिर उठाया।

'कौन? आप?' उसके मुख से चीख निकलने को हुई। 'हाँ मैं' गिरीश फुसफुसाया—'गरिमा, मैं तुम्हें पाये बिना नहीं रह सकता!' उसने कन्धे थाम लिये—'मैं वह दुष्यन्त हूँ जो किसी शाप वश उस समय अपनी शकुन्तला को भूल गया था। आज उसे पाने आया हूँ।'

'गिरीश बाबू!' गरिमा झटके से उठी—'आप होश में नहीं हैं। आपको क्या हो गया है–छोड़िये!' उसने उसके बन्धन से मुक्त होने की चेष्टा की।

'बनो मत गरिमा! यह भी न भूलो कि यदि मैंने चाहा होता तो आज तुम मेरी दासी होती—आज मैं स्वयं तुम्हारा दास बनने आया हूँ।' उसने गिरी का मुख अपनी ओर करना चाहा।

'अम्मा!' गरिमा चिल्ला उठी। वहाँ माँ न थी-अभ्यासवश ही गरिमा के मुँह से निकल गया था। नीलिमा ने बहन की चीख पर घबराकर आँखें खोल दीं। गरिमा भी पूरे ज़ोर से धक्का मार कर गिरीश से छिटक गई। हाँफते-हाँफते उसने कहा—'गिरीश बाबू! मेरी बहन का भाग्य फूट गया जो उसे तुम्हारा ऐसा पति मिला। पर अब जो हो गया वह मिटाया नहीं जा सकता। आप फौरन नीचे चले जाँय। अन्यथा मैं बाबू जी को पुकारूँगी।'

गिरीश होंठ चबाने लगा। उसकी तड़प अब विद्वेष में बदल गई थी।

'जाइये!' गरिमा ने पूरे ज़ोर से कहा—'या पुकारूँ? मैं अब इतनी बच्ची नहीं हूँ कि झूठी बदनामी के डर से किसी का अन्याय सह लूँगी!'

गिरीश द्वार के बाहर आ गया। फिर मुड़ कर बोला—'मुझसे सती सावित्री बन रही हो। मैं भी युनिवर्सिटी में पढ़ चुका हूँ। लड़कियों की नस-नस पहचानता हूँ। महेन्द्र तुम्हारा कौन होता है। जिससे घुट-घुट कर बातें होती हैं!'

गरिमा ने भड़ से द्वार बन्द करके कुण्डी चढ़ा ली। नीलिमा भौचक सी कभी बहन को ताकती थी, कभी बन्द दरवाजे को।

गरिमा निढाल होकर चारपाई पर पड़ रही।

३

प्रतिमा दूसरे दिन ही कलकत्ते चली गई। गिरीश किसी तरह भी उसे वहाँ छोड़ने पर राजी नहीं हुआ। यद्यपि आने से पहले पत्र द्वारा

यही तय पाया गया था कि इस बार प्रतिमा वहाँ रह कर ही प्रसव करेगी। लक्ष्मी और अमरनाथ मूक रह गये। कहने को कुछ था ही नहीं। गरिमा ने माँ से कुछ नहीं कहा था—इतनी पढ़ी लिखी बेटी से पूछते अब माँ को भय भी लगता था—नीलिमा ने जितना देखा और बताया उससे ही वे सब कुछ समझ गई थीं। गिरीश ने ससुर से कहा—'आपके घर में लड़कियों को बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त है। समझाने गया था तो उन्होंने मुझी को शिकार बनाना चाहा। मैं अपनी पत्नी यहाँ छोड़ कर उसे बिगाड़ना नहीं चाहता।'

अमरनाथ ने प्रतिवाद नहीं किया। उससे बात बनानी तो थी नहीं। वे बेटी के बाप थे—साँप-छुछूँदर की दशा थी उनकी।

उन्होंने गरिमा के पक्ष में दामाद को कुछ भी न कहा। केवल इतना कह कर चुप हो गये कि—'लड़की तुम्हें दे दी तो उस पर मेरा क्या जोर है? तुम नहीं चाहते तो हम जबरदस्ती थोड़ा ही रोकेंगे।'

प्रतिमा जाते समय बहुत रोई। एकान्त में बहन का हाथ पकड़ कर कहा—'जीजी, मुझसे रुष्ट न होना, मेरा कोई दोष नहीं है!'

गरिमा ने उसे दया की दृष्टि से निहारा—'प्रीत! मैं तेरी जीजी हूँ। फिर दोष तो मेरे अपने भाग्य का है। हाँ, एक बात समझ ले। चाहे जैसे भी बने अपने को सम्भाल। आगे पाँच-सात वर्ष तक माता बनने का नाम मत लेना।'

प्रतिमा मूर्ख की भांति उसे ताकने लगी।

'अरी मैं कहती हूँ जो वे राजी हों तो इस बार ही आपरेशन करा दो। तीन थोड़े नहीं होते—या कोई अन्य उपाय बरत। जो तू ऐसे ही गिरी-पड़ी चिड़चिड़ी सी रहेगी तो सम्भव है तुझे फिर कोई दुख देखना पड़ जाय। ब्याह किया है तो बन्दरिया नाच नाचना ही पड़ेगा।'

बहन की अकुंठित बातें सुन प्रतिमा के मन का दुख मिट सा गया। अर्थ समझ कर उसने बहन के चिकोटी काटी—'जीजी! बिना

ब्याह के ही तुम तो पुरखिन बन गई हो। अपने दूल्हा को तुम मुट्ठी में बन्द करके रक्खोगी।'

'तेरे से तो बड़ी ही हूँ।' गरिमा मुस्कराई—'फिर सायकालोजी में एम० ए० ऐसे ही थोड़ा कर रही हूँ?'

छोटे बच्चों के जाने से दो चार दिन घर बड़ा सूना-सूना सा रहा। प्रतिमा के मन्नू की याद से तो गरिमा कभी छटपटा सी उठती—वह इन सात दिनों में ही उससे बहुत हिल-मिल गया था। शिशु का मोह कितना नैसर्गिक होता है! गरिमा ने अनुभव किया। फिर परीक्षा में खो गई। दामाद के बेटी को लेकर अचानक चले जाने की साधारण घटना भी मोहल्ले में पर-चर्चा की नदी बहा देने को यथेष्ट थी। जो लड़कियाँ फैशन से रहती हैं, जिनके विषय में सभी एक दो रंगीन चुटकुले कहते सुनते रहते हैं, उनकी अपेक्षा अछूती कुमारी की कथा अधिक रस देती है। लक्ष्मी को पड़ोसिनों का समाधान करते-करते नाकों दम आ गया था। कुम्हार के गधे की भाति लक्ष्मी का समस्त निष्फल रोष अन्त में गरिमा पर ही जा पड़ता। चैन से दब-ढॅक कर घर में नहीं रही—पढ़ती गई! अब इस एम० ए० पास ढोल को गले बाँधने वाला कोई पहलवान जुटाना और भी कठिन है। माना, दामाद ही अन्धा हो रहा था, पर जब वह जा ही रहा था तो कम से कम 'नमस्ते' तो कर लेती। बन्दी ऊपर से नीचे ही नहीं उतरी। परन्तु बेटी से वे क्या कहें? कैसे कहें? उनकी व्यथा उन्हें ही खा रही थी। वह बात-बात पर बच्चे पर झुंझलाती। लड़कों को कोसतीं। अमरनाथ सूखते चले जा रहे थे। निर्धन के घर कौस्तुभमणि की भांति वे अपनी बेटी को सौंपने योग्य श्रीकृष्ण को न पाकर हतबुद्धि हो रहे थे।

यथासमय गरिमा को एम० ए० की डिगरी मिल गई। प्रश्न था अब वह क्या करे? उसने माँ के सम्मुख प्रस्ताव रक्खा—'माँ, मैं एल० टी० कर लूँ। बिना एल० टी० किये टीचिंग लाइन में मुश्किल ही रहती है।'

माँ चिढ़ गईं—'तुझे बेटी कुछ दिखाई नहीं पड़ता ? आधी तनख्वाह फीसों में चली जाती है—तेरे बाबू जी को इस नामुराद रोग पर भी न दूध मिलता है न दवाई। तू पढ़ती चली जाती है। हम तेरे लिये तुझसे अधिक पढ़ा ढूँढने के लिये पैसे कहाँ से लायें ? बैठ घर में।'

गरिमा ने चुप रह कर कहा—'तब फिर तुम कहो तो मैं अपनी महिला कालेज वाली प्रिंसिपल से कहूँ, शायद वे कहीं जगह दे दें—इस प्रकार कुछ पैसों की तंगी भी कम होगी और मेरा समय भी बरबाद नहीं होगा।'

'बेटी नौकरी करेगी ?' लक्ष्मी रोने लगी। उन्हें यह कल्पना भी असह्य लगी।

गरिमा से माँ के आँसू नहीं झिलते—वह चुपचाप बाहर आ गई। बाबू जी से बात करूँगी। उसने सोचा—अन्यथा घर में ही बन्द रह कर वह कैसे दिन काटेगी ? न जाने पहले की लड़कियाँ कैसे रह पाती थीं। परन्तु पहले घरों में काम कितना होता था ? गाय-भैंस, गोबर, कण्डे, दही बिलोना, चक्की पीसना, पानी भरना और समय बचने पर व्रत, अनुष्ठानों, मुण्डन-जनेउवों की तैयारी करना तथा एक दूसरे के घर की आलोचना करना—पूजन, कथा, भागवत और मन्दिर भी काफी समय घेर लेते थे—पर अब कलों का पानी है, मशीन का पिसा आटा है। गाय-भैंस पालना हाथी रखने के बराबर महँगा है। महँगाई ने व्रत अनुष्ठानों और विवाहों के भोज-समारोहों को संक्षिप्त कर दिया है और लड़कियाँ पढ़-पढ़ कर संसार के अन्य विषयों में भी रुचि लेने लगी हैं। गरिमा के हाथ से भोजन बनाने में घी, तेल अधिक खर्च हो जाता है। इससे लक्ष्मी उस पर पूरी रसोई का भार भी नहीं छोड़ सकती। बर्तन माँजना उसे अच्छा नहीं लगता। गरिमा ने पिता से बात की—'बाबू जी, जात बिरादरी क्या हमें खाना देने आती है ? आप को कुछ हो गया तो क्या जाति वह हानि पूरी कर देगी ? मुझे नौकरी करने की आज्ञा दीजिये।'

अमरनाथ तर्क का उत्तर नहीं दे पाये। फिर भी सब लोग उँगलियाँ उठायेंगे, इसकी चिन्ता उन्हें भी थी। बोले—'बेटा दो चार महीने और देख ले। शायद कहीं कुछ जुगुत बैठ जाय। कल सीतापुर जा रहा हूँ।'

गरिमा पिता का इंगित समझ उत्तेजित हो उठी—'कोई आवश्यकता नहीं बाबू जी, कहीं जाने की। कितना श्वास बढ़ा हुआ है? ऐसे में सफर करेंगे? फिर मुझसे कोई बात छिपी भी हो—आपके पास कै पैसे हैं? सीतापुर वाले कोरी कुस–कोरी कन्या ग्रहण कर लेने का साहस दिखायेंगे? विवाह के लिये आपको कर्ज कौन देगा? और मिल भी जाय तो आप उतारेंगे कैसे? नहीं, नहीं! पहले मैं साल दो साल कहीं काम कर लूँ तब देखा जायगा—न हो, आप मेरी कमाई अलग रखते जाना।'

अमरनाथ निरुत्तर हो गये। सोचा जहाँ सत्यानाश, वहाँ साढ़े सत्यानाश।

गरिमा कहीं नौकरी पाने के लिये दौड़-धूप करने लगी। उसका विचार था कि उसने अच्छी द्वितीय श्रेणी में एम० ए० किया है, उसकी प्रिंसिपिल उसे सहर्ष स्वीकार कर लेंगी। वह उनसे मिली। परन्तु उनसे मिल कर मानों ऊँट बन कर पहाड़ के तले आ गई। उसकी प्रार्थना सुन प्रिंसिपिल एक करुणापूर्ण हँसी हँसी।

'माई चाइल्ड।' मिस कैथेराइन ने कहा—'टाइम बहुत खराब आ गया है। एक समय था कि बी० ए० पास लड़कियाँ प्रिंसिपिल बन जाती थीं। मै खुद थर्ड क्लास बी० ए० हूँ। एम० ए० तो मैंने बहुत बाद में किया। पर आज हालत यह है—उन्होंने अपनी भारी भरकम मेज की ड्रार खोल कर बहुत से कागज पत्र बाहर निकाले—कालेज में कुल दो स्थान खाली हुए हैं और यह पन्द्रह एप्लीकेशन्स आई पड़ी हैं। इनमें फर्स्ट क्लास फर्स्ट एम० ए० और गोल्ड मेडलिस्ट लड़कियाँ भी हैं। बताओ बोर्ड वाले उनकी जगह तुम्हें क्यों लेंगे?'

गरिमा अब क्या कहे? धीरे से बोली—'दीदी मिस! आप तो यहाँ की प्रिंसिपिल हैं। क्या आपकी सिफारिश पर भी न स्वीकार करेंगे? मेरी एक्नोमिक कण्डीशन (आर्थिक दशा) अच्छी नहीं है। फ़ादर बहुत बीमार हैं।'

'मैं समझती हूँ। वरना तुम्हारी माँ जैसी आरथोडक्स लेडी कभी लड़की को नौकरी की इजाजत न देती। लेकिन मैं मजबूर हूँ। बोर्ड में सभी मेम्बर मेरे विपक्ष में हैं—मैं क्रिश्चियन हूँ न!' और फिर वे मुस्कुराईं—'बूढ़ी भी हो चली हूँ। बूढ़ी आवाज़ में कशिश नहीं होती।' गरिमा उदास हो गई। 'तुम अगर किसी तरह प्रेसीडेण्ट शुक्ला को सिफारिश पहुँचा सको तो शायद काम बन जाय—है कोई ऐसा?' प्रिंसिपल ने पूछा।

'न'!

'तब तो मुश्किल है—बेटी, तुम कस्तूरबा स्कूल में कोशिश करके देखो। जो वहाँ जगह होगी तो मैं भी कुछ कह दूँगी। वहाँ के सेठ मलकानी से कुछ वाकफियत है मेरी। पर यह समझ लो कि जहाँ हमारा डिगरी कालेज १२५ रुपये के दस्तखत लेकर केवल १०० रुपये देता है वहाँ और प्राइवेट कालेज ७५ रुपये या ८० रुपये ही पकड़ायेंगे।'

गरिमा को एक नई बात मालूम हुई। 'अरे'...उसने आश्चर्य से प्रिंसिपल को ताका—'ऐसी बात?'

'सैकड़ों कारण हैं इसके—कभी बजट कम होता है, कभी बेइमानी होती है, कभी कुछ......!'

गरिमा 'नमस्ते' करके चली आई। कस्तूरबा हाई स्कूल में दो स्थान रिक्त थे। उसने प्रार्थना पत्र दे दिया। इण्टरव्यू के लिये बुलाया गया। गई तो देखा दस बारह लड़कियाँ हैं। उनमें उसकी बी० ए० की एक सहेली शान्ता भी थी। बड़ी शौकीन रंगीन और प्रसाधन

सज्जिता। आज भी ऐसी रंगी-चुंगी थी मानों विवाह में सम्मिलित होने आई हो।

'हेलो गरिमा दीदी! वह गरिमा को देख कर हर्ष से चिल्लाई। 'तुम भी पाँचवें सवारों में आ गई! मैं तो समझती थी तुम्हारी शादी हो गई होगी।'

'क्या समुद्र में डूबने?' शान्ता के लिपिस्टिक से रंगे होठों में से श्वेत दूध से दाँत चमके—'अरे मैं इतनी मूर्ख नहीं हूँ कि एक के साथ गरदन फँसा कर जिन्दगी भर रोटियाँ पका-पका कर मरूँ।'

'तेरे पिताजी ने नौकरी की आज्ञा दे दी?'

'वे तो स्वर्ग सिधार गये। मैं तो साल भर से बनिता इण्टर कालेज में थी—वहाँ झगड़ा होने पर छोड़ दिया।'

'क्या एल० टी० कर लिया है?'

'कहाँ जी! ना बाबा, मुझसे उसका श्रमदान नहीं होता। उँह, क्या चिन्ता है—सब चलता है!'

गरिमा को आश्चर्य हुआ। शान्ता कितनी बेफिक्री से बातें कर रही थी। पिता नहीं हैं—माँ और दोनों भाइयों का भार इसी पर है फिर भी।

'तुम तो एम० ए० कर चुकी न!'

'हाँ कर तो चुकी। पर फर्स्ट क्लास नहीं आया।'

'तुम जैसी भक्तिन मीराबाइयाँ कहीं फर्स्ट आ सकती हैं!' शान्ता मुस्कराई—'डीन को तुम जैसी खुरखुरी लड़कियाँ जरा भी पसन्द नहीं। मुझे तो अभी तक मौका नहीं लगा। देख लेना, कभी ज्वाइन किया तो फर्स्ट ही लाऊँगी।'

गरिमा ने मुँह चिढ़ा कर कहा—'लाई! बी० ए० में तो थर्ड आई थी?'

'तुम दीदी कुछ समझती हो नहीं। गोस्वामी जी की चौपाई नहीं पढ़ी—'मोह न नारि, नारि कै रूपा। पन्नगारि यह चरित अनूपा।'

लड़कियों के कालेज में हम जैसियों की पूछ कहाँ ?'

गरिमा इण्टरव्यू के नाम से ही मन में घबरा रही थी। शान्ता पूरे विश्वास से हँस कर बोल रही थी—एक-एक करके सब बुलाई गईं। गरिमा से उन्होंने कहा—'हमें तो हिन्दी व गणित के लिये टीचर चाहिये। साइकालोजी यहाँ है ही नहीं।'

गरिमा ने बताया बी० ए० में उसके पास हिन्दी साहित्य था। उसे पत्र द्वारा उत्तर देने का आश्वासन मिला।

शान्ता लौटी तो खिली पड़ती थी। उसने गरिमा की पीठ पर हाथ मार कर कहा—'दीदी काम फतह ही समझो !'

'कैसे ?'

'बारह आना तो मैंने स्वयं बना लिया। चार आना एक एम० एल० ए० की सिफारिश ने।' पन्द्रह दिनों में ही तुम्हे 'विजया' में चाय पिलाऊँगी।' (विजया नगर का नया खुला शानदार रेस्टूरां था !)

गरिमा चलने लगी तो शान्ता ने मुरब्बी की भाति कहा—'नौकरी करने निकली हो तो यह जोगिया भेस छोड़ो गरिमा दीदी ! बिजली के सौ पावर के बल्ब के सामने तुलसी चौरे पर जलते घृत के दीपक को कोई नहीं देखता। वह ठण्डक भले ही पहुँचाता हो, चकाचौंध नहीं कर सकता।'

गरिमा को शान्ता की बातें अच्छी लगने पर भी भली नहीं लगी—'तू बड़ी मुखरा हो गई है !'

'पेट, दीदी पेट !' अपने ऊँचे ब्लाउज से कसा खुला पेट दिखाकर शान्ता हँसी—'इसने सब सिखा दिया। फिर मेरा अकेली का पेट थोड़ा ही है—तीन और भी हैं। अम्मा और दोनों छोटे भाई।'

शान्ता हँसती हुई चली गई। पन्द्रह दिन बाद गरिमा के पास कालेज से अस्वीकृति का पत्र आ गया। दूसरे दिन शान्ता का लोकल कार्ड मिला—'सन्ध्या को आऊँगी–विजया की चाय पक्की रही।'

★

बड़ी दौड़-धूप के बाद एक प्राइवेट लड़कियों के स्कूल में उसे काम मिला। वह भी शान्ता के प्रयत्नों से। न जाने उसमें क्या मोहनी थी कि वह लोगों से काम करा लेती थी। उसी ने उसे समझाया था—'गरिमा दीदी। रोटी खाओ शक्कर से और दुनिया जीतो मक्कर से। यह मर्द नाम के जानवर बिना हाव-भाव के लासे लगाये फँसते ही नहीं। पर बिना प्राणों पर बने इतना मुँह कभी न लगाओ कि हजम कर जाँय। फिर तो उनके इशारों पर नाचना पड़ जाता है।'

गरिमा आश्चर्य से सुनती रही—'दीदी, वैसे तुम मुझसे दो चार दिन बड़ी ही हो पर मैंने दुनिया देखी है।' न जाने क्यों शान्ता का स्वर भारी हो गया—'मैं भी तुम्हारी ही तरह भोली थी—ठोकरें खा खाकर चतुर बनी हूँ—मुझे तो मेरे मंगेतर ने ही डुबा दिया था।'

गरिमा का औत्सुक्य जागा—'हाँ हाँ, तेरी सगाई तो बी० ए० फ़ाइनल में ही हो गई थी! फिर कैसे गड़बड़ हो गया।'

शान्ता के मुख पर व्यथा की छाया दौड़ गई—'वह कम्बख्त भी यहीं तो पढ़ता था। बस सगाई होते ही उसने मुझे पत्नी बनाने की ठान ली। मैं तो उसे सोलहों आने पति मान बैठी थी—कालेज में जब भी उसकी चिट पहुँचती मैं उसके बताये स्थान पर जा पहुँचती। परिणाम तो जो होता है वही हुआ। उधर उसके बाप को कहीं ऊँचा रिश्ता मिल गया। उन्होंने पिता को कहा कि दहेज की रकम बढ़ायें—पिता इसमें असमर्थ थे। बस सगाई टूट गई। उसने अपने घर में किसी से नहीं बताया। झटपट मौर रक्खा और शादी रचा ली। मारी गई मैं गरीब—ओह!' उसे फुरहरी आई।

'जब पता लगा कि मैं गर्भ से हूँ तो उसने माथा पीट लिया। अपने कस्बे वाले मायके ले जाकर वहाँ की अशिक्षित दाई के द्वारा उस अवांछित गर्भ को समय से पहले ही धरती पर लाकर मिट्टी में मूँद देने के लिये जो जो प्रयत्न मेरी कच्ची देह पर किये गये वह मैं ही जानती हूँ। सप्ताहों तक ईंटों की सिकाई—भयंकर कठोर मालिशें

जिनसे प्राण निकलते-निकलते बच जाते थे। तीखे कड़वे काढ़े--उफः कितनी दुर्गति के बाद वह अभागा इस देह के बाहर आया-सारा रक्त निचोड़ कर। दो महीने बाद माँ मुझे लेकर लौटीं। उधर पिताजी अकस्मात् हृदय की धड़कन बन्द होने से बैठे-बैठे ही समाप्त हो गये, 'शान्ता ने आँखे पोंछ ली।' फिर हमारी क्या दशा हुई होगी, तुम सोच सकती हो। ऐसी कुलटा, कुलक्षणी कन्या लेकर माँ मायके भी कैसे रह सकती थीं--हमारे घर फाके होने लगे। माँ ने कुटाई-पिसाई करनी चाही, पर उससे क्या बनता है? मुझे तो भूखा रहना स्वीकार था पर बेझड़ की सूखी रोटी नहीं खा सकती थी। मोटा-झोटा कपड़ा मेरी देह पर खरोंचे डाल देता था। हार कर नौकरी करने निकली तो नौकरी के बाजार में अजब रंग देखे। बड़े आदमियों की लड़कियों-बहुओं को झटपट जगह मिल जाती थी--मेरे पास सिफारशें नहीं थीं, पर सूरत तो थी ही, बस फिर सब काम चल निकला।'

गरिमा ने ग्लानि से कहा-'तू मेहनत करती है, फिर भी अपने को बेचती है?'

'कोरी मेहनत को कोई पूछता भी है।' शान्ता ने हँसते-हँसते कहा-'अरे दीदी अब मैं चतुर हूँ। ऐसी नहीं बिकती कि दाइयों की शरण जाना पड़े। बस मुस्कराना, शरमाना, चाय पीना-पिलाना तक ही रखती हूँ-तुम भी बस इतना ही करना-अरे ज्यादा बात बढ़ती देखो तो दूसरा फँसाओ कोई कमी थोड़े ही है।'

गरिमा ने उस दिन से शान्ता से मिलना कम कर दिया। पर वह चौथे छठे आ ही जाती थी। जिस दिन गरिमा पहले दिन स्कूल पढ़ाने गई लक्ष्मी ने दिन भर रोटी नहीं खाई। पर कब तक नहीं खाती। फिर जब पहली को उसने यह कह कर सत्तर रुपये माँ के हाथ पर रख दिये कि--१५ रुपये मैंने रख लिये बीच में रिक्शा इत्यादि करनी पड़ती है। तो उन्हें पीड़ा के साथ सन्तोष का भी अनुभव हुआ। इस महीने 'उनके' लिये इन्जेक्शन आ सकेंगे, छोटे लड़के का जिगर बढ़ गया है,

उसके लिये दूध व फलों की व्यवस्था हो सकेगी; और सबसे बड़ी बात यह है कि महीने के अन्त में पड़ोसिनों के आगे रुपये दो रुपये के लिये हाथ न पसारना पड़ेगा।

गरिमा की नौकरी के समाचार पर उसके दूर के नाते के बाबा, ताऊ और दादियों के अनेक नरम-गरम पत्र अमरनाथ को मिले। बाबा ने लिखा था, 'तुमने खानदान की नाक कटवा दी—बेटी की कमाई खाने लगे?' दादी ने लिखवाया था—'मेरी बात गाँठ बाँध लो, किसी दिन मुँह पर ऐसी कालिख पुतेगी कि डूब मरने को पानी न मिलेगा।' ताऊ ने बड़ी शुभचिन्ता से एक सम्बन्ध की फेहरिस्त लिखी थी—'लड़का जमींदार है—अपना फारम चलाता है। घर का अकेला है, सास ननद की कोई झंझट नहीं। लड़की सोने के पलंग पर रहेगी, बस जरा पढ़ा कम है। अमीरों के लड़के को पढ़ने की ज़रूरत भी क्या—लेकिन दुहाजू है। ज्यादा बच्चे नहीं हैं, बस एक लड़का है जो बी० ए० में पढ़ता है। दहेज में नकद एक पैसा भी न देना होगा।' अमरनाथ ने बड़े विनम्र भाषा में उत्तर दिया—'भाई साहब, और तो सब ठीक है लेकिन २२ वर्ष की लड़की को जाते ही बीस वर्ष के लड़के की माँ बनना पड़े इसे उसकी माँ नहीं स्वीकार करतीं।' ताऊ इस पर बड़ा बिगड़े, लिखा—'बेटी की कमाई पर जीने वाले, उसका ब्याह क्यों करना चाहेंगे? बिना दहेज तुम्हें कौन सा पच्चीस वर्ष का राजकुंवर मिला जाता है!' इसके बाद ताऊ जी के पत्र आने बन्द हो गये।

किन्तु मन में चाहे जितनी चिन्ता व ग्लानि हो, वैसे अब परिवार के दिन साधारण सुख सुविधा से बीतने लगे।......

और भी दो वर्ष निकल गये। गरिमा अब पच्चासी रुपये की अध्यापिका थी। उसने एल० टी० भी करना चाहा। परन्तु दिन भर पढ़ाने के बाद वह थक जाती थी। अमरनाथ की लगातार बीमारी के कारण दवा-दूध का व्यय बढ़ा रहता था और गरिमा भी अब अच्छे वस्त्र पहन कर निकलती थी। तड़क-भड़क न करने पर भी अपनी

साथिन अध्यापिकाओं में वह हीन प्रतीत हो यह उसे स्वीकार न था। उसके साथ की अधिकाश लड़कियाँ कुमारी ही थीं, जिन्होंने उसी की भांति विवाह का जोगाड़ न हो पाने के कारण नौकरी कर ली थी, जिससे कम से कम अपने खाने पहिनने का भार तो परिवार पर न रहे! दिन कट रहे थे। बंधे-बंधे, उदास! बस, उस उदासी को भंग करने वाली एक शान्ता ही थी जो प्रायः आती रहती थी।

शान्ता लक्ष्मी को एक आँख न भाती थी। यद्यपि मौसी कह के जब वह चिपट जाती, बच्चों के लिये टाफी लेमन चूस बिना घर में न घुसती तो उन्हें भी उससे मीठा बोलना पड़ता था, चाय पानी से स्वागत करना पड़ता था। पर गरिमा से वह दबे स्वर में कहती ही रहतीं— 'इसकी सब जगह बड़ी बदनामी है—इसे अधिक मुँह मत लगाना— बेटी बद अच्छा बदनाम बुरा होता है।' गरिमा भी उसे समझती है, परन्तु चाह कर भी, उसे बुरा समझ कर भी, उससे घृणा नहीं कर पाती। उल्टे उसे कभी-कभी महसूस होता, लड़की बहादुर है। जितना बन पड़ता है सब की सहायता करने को तैयार रहती है, भाइयों को पढ़ा रही है, खिला-पहना रही है। वह प्रायः ही गरिमा के लिये अपनी पसन्द से अच्छी सैंडिल, ब्लाउज पीस या पाउडर इत्यादि खरीद लाती। गरिमा के मना करने पर कहती–'अच्छा गरिमा दीदी! बिगड़ो मत–तुम पैसे न देना, बस मेरी तरफ से पहन लो। क्यों घुट-घुट कर जवानी बरबाद करती हो? किस अलक्ष्य शिव की प्राप्ति के लिये भभूत रमाये निर्माल्य सजाये हो। पच्चीस वर्ष तो ब्रह्मचर्य साध लिया, अब कम से कम जूता छाता तो धारण करो। मत बनो मेरी जैसी बुरी, लेकिन पहिन-ओढ़ कर तो मन की निकालो, नहीं तो दीदी–वह गाकर कहती—'ये रात बीत जायेगी, जवानी फिर न आयेगी! ये रात .....।' गरिमा को वे वस्तुयें लेनी पड़तीं दाम भी देने पड़ते और पहननी भी पड़ती थी।'

बिना एल० टी० किये ही शान्ता 'कस्तूरबा' में सेकेन्ड मिस्ट्रेस हो

गई थी, तनख्वाह भी उसे डेढ़ सौ से ऊपर मिलने लगी थी।

गरिमा ने उसे एक बार बहुत फटकारा—'तुझे शर्म नहीं आती? अध्यापन का पुनीत कर्त्तव्य करते हुए भी तू ये सब नहीं छोड़ सकती? तुझे तो छूते भी घिन आती है।' शान्ता को गिरी का इतना फटकारना खल गया। बोली—'गरिमा दी! मैं समझती थी कम से कम तुम्हें मुझसे घृणा नहीं है! तुम तो साइकालोजी में एम० ए० हो। इतना नहीं सोचती कि सभी कि भूख एक सी नहीं होती। तुमने जो रस चखा नहीं उसका स्वाद क्या जानों? पर मुझे तो उस शराब की आदत पड़ गई है। मुझ जैसी बुरी लड़की से विवाह भला कौन करेगा? तब मैं क्या करूँ—क्या फाँसी लगा कर मर जाऊँ?'

गरिमा ने तड़ाक से उत्तर दिया—'क्यों वह बंगाली छोकरा उमेश तो कहता था कि मैं विवाह को तैयार हूँ!'

'दीदी की बातें! एक तो उसकी माँ रो-रोकर मर जाती; फिर एक सौ बीस रुपये का क्लर्क—विवाह के बाद भला मेरी कमाई वह मेरे माँ-भाइयों पर क्यों खर्चने देता? और, शायद अपनी गृहस्थी जमा लेने पर मैं स्वयं ही बदल जाती! सोचती कि क्यों दूँ मैं माँ को रुपये? तब बेचारी माँ क्या करती? अभी तो रज्जू-सिद्धू पाँचवीं और सातवीं में ही हैं। नहीं दीदी! मेरी किस्मत में ब्याह है ही नहीं। जब तक सिद्धू कमाने लायक होगा मैं तीस से भी ऊपर पहुँच जाऊँगी!' शान्ता का स्वर भीग उठा—'तुम्हें इतना तरस नहीं आता कि यह अभागी शान्ता कभी भी एक नन्हें मुन्ने को खिला नहीं पायेगी! तुम्हें यह आशा तो है कि तुम भली लड़की हो! शायद कभी भाग्य अनुकूल हो तो तुम्हारा अपना छोटा सा घर होगा और उसमें रिबिन और गुब्बारों से सजा छोटा सा पालना भी!' सूखे मुख से वह उठ कर चलने लगी तो गरिमा का मन जाने कैसा होने लगा—'शानो!' गरिमा ने उसकी साड़ी का छोर थाम लिया—'मुझे क्षमा कर दो। अब कभी कुछ न कहूँगी।' शान्ता के लिये इतना मनावन काफी था, वह पानी भरी आँखों से ही

हँसने लगी। जरा देर बाद ही चिड़िया सी चहकने लगीं—दीदी! 'पर्ल' में बड़ी अच्छी अंग्रेज़ी पिक्चर लगी है—चलोगी देखने! पैसों की चिन्ता न करो। वह मुआ जेम्स किसलिये है? तीनों के टिकट खरीदेगा। उँह, सिर क्या हिला रही हो। तुम्हें कोई खतरा नहीं है। तुम तो उसकी आदरणीय साली हो!' इच्छा होने पर भी गरिमा ने माँ के भय से जाने से इन्कार कर दिया।

अब नीलिमा भी पूरी युवती हो गई थी। घर में एक पैसा भी जमा न था और लक्ष्मी रात दिन रोती रहती थी। अमरनाथ भी बीमार रहते थे। घर की घुटन और उदासी से गरिमा अब प्रायः ही अपनी सखी सहेलियों के घर चली जाती। कभी सिनेमा देख आती। इधर बहुत दिनों से शान्ता नहीं आई थी। एक पत्र द्वारा उसने गरिमा को बताया था कि वह अब थोड़े दिनों बाद हीरोइन बनने जा रही है। 'कमल थियेटर' की हीरोइन! सेठ बनवारी लाल एक कम्पनी खोल रहे हैं। स्कूल बन्द होने में कुल दो दिन रह गये थे। दस दिनों से कापियाँ जाँचने और परीक्षाफल तैयार करने का भूत आज उतर गया था। प्रधानाध्यापिका को सब कुछ सौंप कर गरिमा घर लौटी, तो इच्छा हुई क्यों न शान्ता का हाल चाल देख लिया जाय। उसने रिक्शे वाले को रोक लिया और भीतर हाथ मुँह धो कुछ खाकर तैयार होने चली गई।

"दीदी! दीदी! आँधी पानी सी शान्ता हठात् दौड़ती हुई भीतर घुस आई—मौसी! मैं इतने दिनों नहीं आई तो तुमने कभी पुछवाया भी नहीं कि मर गई कि जीती हूँ—हाँ-हाँ बेटियाँ किसे अच्छी लगती हैं! पर याद रक्खो यह तो रक्तबीज है एक मारोगी तो चार आवेंगी—तभी न एक और आ गई?' लक्ष्मी ने खिसिया कर उसका स्वागत किया। (न जाने सात वर्ष बाद बुढ़ापे में एक लड़की और कहाँ से उनका रक्त सुखाने को उत्पन्न हो गई थी!) शान्ता अब गरिमा से उलझी—'दीदी, मेरा एक काम करना होगा!' वह कभी गरिमा से

कुछ करने को न कहती थी—'यह नई बात क्यों ?'

'बोलो करोगी ? पहले वचन दो ? नहीं वचन दोगी तो नहीं बताऊँगी ।'

गरिमा को वचन देना पड़ा ।

'दीदी ! तुम्हें मेरे थियेटर में काम करना होगा ।'

गरिमा जैसे आकाश से गिरी । उसका चेहरा उदास हो गया ।

'ओ हो, जैसे मैंने तुम्हें नंगे होकर नाचने को कह दिया हो !' शान्ता खिलखिला पड़ी—'डरो मत, सामने नहीं आना होगा । बैक-ग्राउन्ड सिंगिंग (पार्श्व गायन) के लिये कह रही हूँ ।'

'तुझे एक मैं ही मिली हूँ । सोच तो अम्मा क्या कहेंगी ? फिर मुझे गाना छोड़े कितने दिन हो गये !'

'ओ दीदी, हीरे की कीमत जौहरी ही जानता है ! मैं ही तो तुम्हारे गले की मिठास की एक मात्र रसिया हूँ । जरा समाज को भी तो आनन्द दो, फिर फुसफुसाई—वैसे भी मिलेंगे पूरे सौ रुपये !'

गरिमा संकोच में पड़ गई । पर शान्ता ने कभी हिम्मत नहीं हारी । उसने शाम को अमरनाथ से हामी भरवा ही ली । दूसरे दिन संध्या को बेलनगंज में बनी सेठ जी की धर्मशाला में । (जहाँ रिहर्सल थी) गरिमा पहुँची तो देखा—दो तीन कमरों में कितने ही लड़के व दो तीन लड़कियाँ अपना अपना पार्ट घोट रहे हैं । शान्ता एक सुन्दर से युवक से घुल-घुल कर बातें कर रही है, युवक के कपड़े मैले से थे । साधारण पैजामा, कुरता और कुछ पुरानी चप्पलें वह पहने था । रंग तो उसका बहुत गोरा नहीं था, परन्तु नाक-नक्शा सुन्दर था । सिर पर बड़े-बड़े घुंघराले बाल लापरवाही से माथे तक आकर झूल रहे थे । एक दृष्टि में ही गरिमा को उस युवक में आकर्षण प्रतीत हुआ ।

शान्ता गरिमा को देख कर ही उल्लसित होकर बोल उठी—'लीजिये मिस्टर सिंह, हमारी लतामंगेशकर भी आ गई । गरिमा दीदी ! इनसे

मिलो यह हैं हमारे डाइरेक्टर, कम–मेकअप मैन, कम 'ऐक्टर मिस्टर सिंह'।'

गरिमा ने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। युवक ने भी मुस्करा कर अभिवादन किया। शान्ता अब भी कहे जा रही थी—'सिंह साहब, हमारी ये लता दीदी बड़ी अच्छी गायिका हैं। बस जरा मीराबाई टाइप की हैं। दीदी, ऐसे आँखें क्या दिखा रही हो? जो कहना हो मुँह से कहो न। अरे दाई से पेट क्या छिपाना? यह तो हमारे डाइरेक्टर हैं।'

सिंह ने भी हँस कर कहा—'बैठ जाइये, लता जी, आपने मेरी बड़ी भारी मुश्किल हल कर दी। शान्ता जी को तो ईश्वर ने रूप, रंग और अभिनय कला सब कुछ दिया बस, संगीत वाला स्वर न दिया।'

शान्ता बोली—'सब कुछ मुझे ही दे देता तो फिर आप क्या करते? गरिमा दी, यह ही नाटक के हीरो भी हैं, और मै इनकी हीरोइन हूँ। डरो मत दीदी ये जेम्स जैसे नहीं हैं, भले आदमी हैं।'

गरिमा ने अब मौन तोड़ा—'तेरी बकवास कभी बन्द नहीं होगी? अपना पार्ट क्यों नहीं याद करती?'

सिंह ने भी कहा—'हाँ शान्ता जी, अब काम की बातें हों कुल छः दिन तो रह गये हैं।' फिर एक कापी अपनी लम्बी जेब से निकाल कर गरिमा की ओर बढ़ाते हुए बोला—'ये दो गीत आपको गाने होंगे, एक तो दरबारी कान्हड़ा में बँधा है दूसरा फिल्मी ढंग का विरह गीत है। जरा गाकर तो देखो।'

गरिमा ने थोड़ी देर गीत पढ़े। गुनगुनाई–दो पंक्तियाँ खुल कर भी गाया। सिंह की मुद्रा से सन्तोष और तृप्ति झलक रही थी। उसने प्रसन्न भाव से कहा—'वाह, बहुत अच्छे। आपके गाये गीत थियेटर में जान डाल देंगे।' वह स्वयं तबला लाकर ठेका देने लगा।

थियेटर से एक दिन पहले ग्रैन्ड रिहर्सल हुई तो सिंह ने कहा—'गरिमा जी, बात कुछ जमती नहीं—आप पीछे से गाती हैं—स्टेज पर शान्ता जी गीत का अभिनय करती हैं। पर देखने वाले समझ जायेंगे कि मुँह कहीं, और गीत कहीं है।'

'तो ?' गरिमा ने कहा—'शान्ता को गाने को कहिये न ?'

'क्षमा करें, क्या आप स्टेज पर नहीं आ सकतीं ? देखिये विरह गीत तो नायिका चाँदनी रात में गाती है। स्टेज पर रोशनी बहुत हल्की रहती है। फिर, वह काले वस्त्र भी पहने है। क्यों न उस समय शान्ता के स्थान पर आप ही आयें ? कद तो लगभग बराबर ही है। पता नहीं चलेगा ? और, कान्हड़ा तो पूर्व स्मृति के रूप में गाया गया है। नायक सोचता है और प्रश्न उभरते हैं। आधे स्टेज पर हल्की नीली रोशनी में ये पारदर्शी परदे के भीतर से यदि उस समय भी आप ही अभिनय करें तो दृश्य में दोहरे प्राण आ जायेंगे। बस केवल इन्हीं दृश्यों में आप आइये शेष में शान्ता ही रहेगी।' गरिमा सोच में पड़ गई। परन्तु यह ऊहापोह का समय न था। सिंह ने इन छः दिनों मे उसके साथ बहुत मेहनत की थी। वह उसकी बात न टाल सकी। 'जैसा आप कहें। पर मेरा नाम न एनाउन्स कीजियेगा।'

'नहीं, नहीं ! मैं क्या ऐसा मूर्ख हूँ !'

ड्रामा हुआ। तीन दिन खेला गया। टिकट से पैसा भी काफी आया। सब अभिनेताओं की फीस (जो पन्द्रह रुपये से लेकर डेढ़ सौ तक थी) देने पर भी कुछ बच ही गया।

सिंह को आशा थी कि सेठ बैनवारी लाल थियेटर कम्पनी चालू रक्खेंगे। परन्तु सट्टे के व्यापार में रात भर में वारे-न्यारे करने वाले सेठ को एक महीने में सौ रुपयों की कमाई का धन्धा कुछ जँचा नहीं। फिर उनकी धर्मशाला घिरी रहती थी (जिसके कई कमरे उन्होंने स्थाई रूप में किराये पर चढ़ा रक्खे थे)। उन्होंने कम्पनी बन्द कर दी।

सिंह बहुत उदास था। वह फिर बेकार हो गया था।

शान्ता ने प्रस्ताव रक्खा—'हम लोग, अब ईश्वर जाने, कब इस प्रकार एकत्र होंगे? क्यों न इसकी स्मृति स्वरूप मिलकर चाय पी जाय? उसकी जेब गरम थी। डेढ़ सौ रुपये बटुवे में पसीज रहे थे और उसकी नौकरी भी बरकरार थी। गरिमा को भी सिंह अच्छा लगा था। विशेष-कर उसके घुंघराले बाल; बात करने का ढंग भी उसे पसन्द था। प्रश्न था चाय कहाँ पी जाय? गरिमा किसी रेस्ट्रा में शान्ता और एक युवक के साथ बैठना नहीं चाहती थी। जो मोहल्ले में यह बात फैले तो और उँगलियाँ उठेंगीं। वैसे वह अब इस सब की उतनी चिन्ता न करती थी। पर माँ के रोने का भय जो था।'

शान्ता ने कहा—'तुम्हारी तो हर बात में जान निकलती है। चलिये सिंह साहब, हम और आप सही।' सिंह का मुँह लटक गया। शान्ता को मसखरी सूझी, गरिमा के चिकोटी काट कर बोली—'लो, अब न कहना कि मेरी किस्मत सोई हुई है। तेरी किस्मत तो डाइरेक्टर सिंह की सूरत पहन कर आई है। देखो तो कैसे उदास हो गये! दीदी, तुम जरा हिम्मत करो। हम लोग केबिन में परदा खींच कर बैठेंगे।' गरिमा को स्वीकृति देनी पड़ी।

दूसरे दिन कोई सात बजे संध्या को घर से एक सहेली के यहाँ जाने का बहाना करके गरिमा 'विजया' में पहुँची। सिंह वहाँ पहले से टहल रहा था। गरिमा को देख 'नमस्ते' करके बोला—'लीजिये, हीरो-इन तो लापता हो गई!'

'आ जायगी!' गरिमा ने घड़ी देख कर कहा—'अभी तो सवा सात ही बजे हैं।'

सिंह ने एक लिफाफा उसे थमाया—सिद्धू आपके लिये दे गया है। कहता था बहन को बुखार आ गया है। गरिमा ने लिफाफा खोला, लिखा था—'गरिमा दी, क्षमा करना! जेम्स पन्द्रह दिनों बाद लौटा

है—कल फिर चला जायगा। आज की शाम मैं उसके साथ बिताऊँगी। तुम तो जानती हो कि वह मेरी सबसे बड़ी दुर्बलता है। उसे मैंने मन बेचा है, तन तो सिर्फ घाते में देती हूँ।'

तुम्हारी शान्ता

पढ़कर गरिमा का मन अजब सा हो उठा, ईर्ष्या, घृणा, विरक्ति और मोह के मिले जुले भाव एक साथ उसे झकझोरने लगे।

'इस प्रकार यहाँ खड़े रहना अच्छा नहीं लगता।' सिंह ने उसे सावधान किया—'या तो अन्दर चलिये या फिर हम यहीं से विदा लेकर अपने अपने घर जाँय।'

गरिमा ने इस बार सिंह को ताका। वह बड़ा परेशान सा दिखता था। उसके होंठ पपड़ाये हुए थे। तेल विहीन केशों के रूखे छल्ले माथे पर छितरा रहे थे। पैन्ट भी काफी मैली व सुकड़नदार थी। गरिमा ने रेस्तराँ की ओर पग बढ़ाते हुए कहा—'यह मरी शान्ता भी खूब है। दूसरों को बुलाकर लापता हो गई।'

'बुखार कह कर तो नहीं आता।' सिंह ने उत्तर दिया। फिर दोनों एक खाली केबिन में जा बैठे। बेयरा मेज के पास आया! कुछ मँगाना था ही। सिंह ने गरिमा की ओर देखा। गरिमा की इच्छा कुछ भी खाने की नहीं थी। फिर भी कहना पड़ा—'जो आपको पसन्द हो वही मेरे लिये भी मँगा लें।'

'वाह!' सिंह के मुख पर कोमल मुस्कराहट छा गई। 'दो चाय, दो चीप्स, दो आमलेट।' बेयरा चला गया। गरिमा ने मौन तोड़ा—'आप बड़े चिंतित प्रतीत होते हैं! क्या बात है? नौकरी का क्या है फिर मिल जायगी?'

'ओह, नौकरी की चिन्ता नहीं है—कला के क्षेत्र में इन छः वर्षों में अनेक बार नौकरी छूटती और लगती रही है।'

गरिमा को सिंह के विषय में शान्ता ने काफी बता दिया था—जैसे वह असली सिंह नहीं है—तेरी जात का ही है—बस उप जाति का फर्क है। बच्चू को कालेज में ही अभिनय करने की लत लग गई। इसी से दो बार बी० ए० में फेल हुए। फिर पढ़ना ही छोड़ बैठे। अब हजरत बेकार घूमते हैं—तबला-वबला भी अच्छा बजाते हैं। बस यूँ ही ट्यूशन करके और कभी-कभी जब जहाँ मिल जाय नाटक-वाटक में पार्ट करके या स्वयं डाइरेक्ट करके दिन बिता रहे हैं। घर के अच्छे ही हैं—एक भाई किसी इन्शोरेन्स कम्पनी में नौकर है, बाप भी कहीं अच्छे पद पर थे, अब पेन्शन पाते हैं। घर का मकान है राजनगर में। लेकिन परिवार बहुत बड़ा है। कई बहिनें हैं इसी से घर वाले निखट्टू लड़के से नाराज रहते हैं।

गरिमा ने शान्ता की रेलगाड़ी थमते न देख कहा था—'बाबा, सारी अगली पिछली हिस्ट्री कहाँ से निकाल लाई है!'

'तुम सुनो तो!' वह कहती गई थी—'ये महाशय हैं निरे बछिया के ताऊ। साल भर पहले एक बड़े सेठ की लड़की की ट्यूशन मिल गई थी, तबला सिखाने और पढ़ाने की। जनाब उससे इश्क फरमाने लगे। वह भी इश्क मजाजी नहीं इश्क हक़ीक़ी! मजनूँ बन गये। सेठ को पता लगा तो चोरी का इल्ज़ाम लगा कर नौकरों से खूब पिटाई कराई। लौंडिया का दूसरे ही महीने ब्याह कर दिया।' शान्ता कहते-कहते खिल-खिला पड़ी—'घर में नहीं दाने, अम्मा चली भुनाने। गाँठ में कौड़ी नहीं चले थे सेठ की लड़की से इश्क फरमाने—फिर लौंडिया भी कैसी जो ब्याह के बाद एक रात जाने कैसे मौका पाकर इसके घर तक पहुँच गई!'

'लेकर भाग जाता।' गरिमा ने टोका।

'उँह दीदी, तुम भी निहायत वह हो। वह लड़की भागने थोड़े ही गई थी। चोरी-चोरी दर्दे दिल का इलाज करने गई थी—पर ये महाशय

पूरे महाशय हैं। पराई पत्नी का स्पर्श कैसे करते! जब प्रेयसी को ही हाथ लगा कर मैला नहीं किया था--'ही ही ही।' गरिमा ने उसे डाँटा दूसरे का मजाक उड़ाती है। वैसे लड़का बहुत टैलेन्टेड (प्रतिभाशाली) है जो अब भी पढ़ ले तो इसका जीवन बन जाय।'

'ओ हो, ये लड़का है? तुमसे साल छः महीने बड़ा ही होगा, जो तुम्हें पसन्द हो तो डोरे डालो ना। वह नहीं पढ़ा तो तुम तो पढ़ी हो--हाय, हाय, है बड़ा नमकीन--पर जेम्स से अच्छा थोड़े ही है।' गरिमा का थप्पड़ खाकर वह हँसती-हँसती भाग गई थी।

गरिमा ने चीप्स को काट कर मुँह में रखते हुए अपनेपन से पूछा--"यदि गोपनीय न हो तो अपनी चिन्ता मुझे भी बतायें--मैं किस योग्य हूँ? पर कहने सुनने से मन का भार बँट जाता है।'

सिंह को गरिमा शुरू दिन से ही अच्छी लगी थी। उसका रूप, उसकी चितवन जलाती न थी--शान्ता की तरह बिजलियाँ न गिराती थी, उसके स्वर की मिठास पर तो सिंह का मन सौ जान से फिदा था। चाय का घूँट भर कर उसने उत्तर दिया--'क्या बतायें, यह बूढ़े बुजुर्ग भी कभी-कभी बड़े संकट में डाल देते हैं--यहाँ अपनी गुजर लायक कमा नही पाता, वहाँ रोज विवाह के नाते ले लेते हैं?'

'बड़ी अजीब बात है। आजकल तो कोई ऐसा नही करना चाहता। आखिर बहू का भार भी तो उन्हीं पर पड़ जायगा?'

'इसे कौन सोचता है? इसी थियेटर की डाइरेक्टरी हवा बन्दी पर ही कोई आँख का अन्धा अपनी मिडिल पास कन्या मय पाँच हजार नकद के देने को तैयार है, बस लड़की जरा मैंगी है। इसी पाँच हजार से बाबू जी छोटी बहन को पार लगाना चाहते हैं।' मुसीबत मेरी है?

'आप साफ इन्कार कर दें?'

'इन्कार?' सिंह के मुख पर जाने कैसी मजबूरी झलक आयी। फिर वह खुल कर बोला--'यही तो मुश्किल है, इसे मेरी दुर्बलता ही

समझ लो—यूँ अपने मन से चाहे जो करता रहूँ—करता ही हूँ, लेकिन बाबू जी के या अम्मा को उनके मुख पर दो टूक जवाब देना, बस यही नहीं कर सकता। सोच रहा हूँ कहीं गायब हो जाऊँ, साल छः महीने को। लेकिन मेरे बाबा भी हैं—वह मुझे बहुत चाहते हैं। एकदम खाट से लग गये हैं, न जाने कब उनके प्राण निकल जाँय। बाहर चला गया और पीछे से मर-मरा गये तो जीवन भर का कलंक रहेगा—अजब मुश्किल में जान फँसी है।'

गरिमा ने देखा सिंह कुछ खा नहीं रहा था—'साथ-साथ खाते भी जाइये।' उसने उसकी ओर चम्मच से आमलेट काट कर बढ़ाया। सिंह के मुख पर एक मृदु मुस्कान फैल गई—हाथ बढ़ा कर चम्मच ले लिया और कहता गया—'अब तो यह नौकरी भी खत्म है। आप ही बताइये, इस हालत में शादी कैसे कर लूँ? फिर एक अनपढ़ काली भैंगी लड़की से। छब्बीस साल क्या उसी के लिये बैठा रहा हूँ? काले रंग से तो मुझे यूँ भी चिढ़ सी है।'

गरिमा गम्भीर हो आई—उसे सहसा लगा गिरीश और सिंह में कोई अन्तर नहीं है। किसी को काली लड़की नहीं चाहिये—कम से कम पत्नी के रूप में तो नहीं ही चाहिये। सिंह ने इसे लक्ष्य किया। उसने अपनी बात स्पष्ट की—'यूँ तो हम सभी हिन्दोस्तानी काले आदमी हैं। पर जहाँ विशुद्ध सौदे या खरीदारी का प्रश्न हो—किस गुण की आशा पर मैं जीवन भर के लिये एक काली लड़की और उसके काले पीले बच्चों का पेट भरने के लिये लटटू कैसे बन जाऊँ?'

गरिमा ने व्यंग किया—'काली लड़की के साथ चाय पीना भी तो आपको अच्छा नहीं लग रहा होगा?'

सिंह को एक झटका सा लगा। गरिमा का मीठा स्वर, उसकी सहज शालीनता और कमनीय मुखश्री उसको प्रथम दिवस ही सुखद प्रतीत हुई थी। वह पीड़ित स्वर में बोला—'आप बात अपने पर क्यों ले गयीं? आप तो काली नहीं हैं? फिर आप इतनी शिक्षिता हैं।

गुणवती हैं कि कोई भी आपको पाकर धन्य हो जायगा। मैं तो अपनी बात कह रहा हूँ। दया करने के नाते उस लड़की से विवाह कर भी लूँ तो जिसे अपना ही गुजारा चलाना कठिन है वह एक स्थायी मेहमान घर में कैसे ले आये। वैसे हमारी ज्वाइन्ट फैमिली (सम्मिलित परिवार) है। मुझसे बड़े भाई ६ सौ रुपये कमाते हैं और मुझसे छोटा भाई अभी कुछ नहीं करता, लेकिन दोनों की पत्नियाँ समान रूप से ही घर में रहतीं खातीं हैं।' गरिमा ने चाय का अन्तिम घूँट भर कर प्याला रखते हुए आश्चर्य से प्रश्न किया—'आपसे छोटे भाई का विवाह हो गया?'

'वह भी बड़ी दिलचस्प कहानी है। अब से पाँच साल पहले ही मेरा विवाह तय हुआ था—मैं तब घर से भाग गया तो बाबा जी ने अपनी बात रखने को छोटे की सगाई ले ली—अब तो उसके दो बच्चे भी हैं।'

नाश्ता और चाय समाप्त हो गया था, पर बातें अभी अधूरी ही रह गईं थीं! सिंह ने दो आइसक्रीम का आर्डर देकर अपना कथन जारी रक्खा—'फिर गरिमा जी! आदमी का मन ही तो है कभी दुखी होता है कभी सुखी...ब्याह करने को मेरा मन इस समय बिल्कुल ही तैयार नहीं है—क्या करूँ?'

गरिमा को सिंह के सेठ कन्या वाली असफल प्रीति का स्मरण हो आया। उसने तरस की दृष्टि से उसे देख कर सलाह दी—'मेरी मानिये तो किसी प्रकार अपनी ससुराल तक यह समाचार पहुँचा दीजिये कि मैं बेकार हूँ और कुछ आवारा टाइप भी हूँ—बस! कोई माँ बाप जो पाँच हजार नकद दे सकते हों कभी अपनी लड़की को आवारा निखट्टू लड़के से नहीं ब्याहना चाहेंगे।' अन्तिम बात कहते-कहते उसकी हँसी फूट आई। 'बुरा तो नहीं माना आपने?'

सिंह को तो जैसे बीच मंझधार में सहारा मिल गया था। कृतज्ञ स्वर में बोला—'क्या कहती हैं आप! बुरा क्यों मानूँगा आपने सचमुच

एक अच्छी राह सुझा दी। कल ही अपने एक दो मित्रों को इस कार्य पर लगाता हूँ।'

बेयरा आइस क्रीम ले आया। सिंह ने हँस कर प्लेट गरिमा की ओर बढ़ाई—'मुक्ति की राह दिखाने के उपलक्ष्य में सादर भेंट!'

गरिमा भी हँसी। थोड़ी देर पहले की उदासी भरे बादल छँट गये। खाते-खाते बोली—'अब चलूँगी, देर होने पर अम्मा नाराज होंगी। और सिंह साहब बिल मैं अदा करूँगी। यह न्याय पूर्ण भी होगा। आपकी तो नौकरी छूटी है और मुझे सौ रुपये की अतिरिक्त आय हुई है, दोनों में बहुत अन्तर है न?'

'न-न-न! यह कैसे हो सकता है।' सिंह ने दोनों हाथों से मना किया—'गरिमा जी! माना मैं बेकार हूँ परन्तु पुरुष के गर्व को कुल दो रुपये छः आने के लिये यों चूर-चूर न करिये। वैसे तो यह भी सम्भव है कि तीन महीने बाद कभी आपसे भेंट हो तो एक सिगरेट के पैसे ही माँगना पड़ जाय।' गरिमा ने लाचार हो पर्स बन्द कर दी। दोनों का समय सुख से कटा। गरिमा को अनेक दिनों बाद कदाचित् जीवन में प्रथम बार एक युवक का अकेला सान्निध्य प्राप्त हुआ था। पुरुष भी कैसा जिसके सम्मुख वह याचिका नहीं थी! बराबर के दरजे पर सहमित्र थी। और सिंह के मन की पीड़ा, बात कह सुन लेने से, हल्की पड़ गई थी। दोनों का मन हो रहा था कि यह मित्रता आज ही समाप्त न हो जाय। पर कैसे, किस बहाने से गरिमा अब उससे कभी मिल सकेगी। शायद सड़क चलते कभी भेंट हो जाय, बस? दोनों बाहर आ गये। सड़क पर चलने लगे। सिंह ने मौन तोड़ा—'गरिमा जी! आपको किस मुख से धन्यवाद दूँ? आज की संध्या बहुत दिनों याद रहेगी?' 'मुझे भी!' गरिमा ने स्वीकारा।

'क्या फिर कभी भेंट होगी?' सिंह के मुख से निकला। फिर दाँतों से जीभ काट वाक्य पूरा किया—'अन्यथा न समझ लें।' गरिमा को सिंह का नाजुकपन भा गया? 'आप भी अन्यथा न समझें. . . .घर पर बुला

कर तो भेंट नहीं हो सकती। हाँ, शान्ता के यहाँ कभी आइये......
पहले से उसके द्वारा समाचार भिजवा देंगे तो मुझे भी आपसे मिलकर प्रसन्नता होगी।' गरिमा ने रिक्शेवाले को पुकारा। दोनों दो क्षण चुप रहे। रिक्शे पर बैठ गरिमा ने उससे नमस्ते की...सिंह ने भी उत्तर में हाथ जोड़े। दोनों स्नेहयुक्त मन से विदा हुए।

४

तीन महीने और निकल गये। नीलिमा ने भी इण्टर पास कर लिया। अमरनाथ की समझ में नहीं आता था कि अब वह नीलिमा के लिये वर की तलाश करे या गरिमा के लिये। 'गरिमा दो ढाई वर्षों से घर में कमा कर सहायता कर रही थी। प्रथम तो एम० ए० पास पच्चीस छब्बीस वर्ष की पूरी आयु की युवती के लिये अट्ठाइस तीस वर्ष के अच्छे घर के कमाते हुए लड़के का बाजार मूल्य ही कम न था। फिर किसी प्रकार गरिमा का ऋण लेकर विवाह भी हो जाय तो, एक तो घर की स्थायी आमदनी में कमी हो जाती थी, दूसरे ऋण का भार बेतरह लद जाता। नीलिमा के लिये भी ऋण लेना ही पड़ेगा, परन्तु तब न होगा तो गरिमा का आधा वेतन उस हिसाब में दे दिया करेंगे। और बेटी के नौकरी करने से जितनी बदनामी सम्भव थी वह तो उनकी हो ही चुकी थी। कभी-कभी ये विचार अवश्य ही उन्हें विकल कर जाता कि सयानी कुवाँरी लड़की, कहीं कुछ ऊँच-नीच हो जाय तो? पर साधारणतया मनुष्य का मन अपने स्वार्थ में अन्धा हो जाता है। अमरनाथ भी दूसरे ही क्षण इस विचार को यह कह कर झटक देते थे कि मेरी बेटी कितनी विद्वान है। कितनी गम्भीर है। घर वालों पर

प्राण देती है। वह कभी ऐसी कोई बात नहीं करेगी।'

प्रतिमा इस बीच एक बार भी मायके नहीं गई। परन्तु उसके पत्र आते रहते थे। उसने पिछले पत्र में लिखा था—'अम्मा! नीलो को अब अधिक मत पढ़ाओ, नहीं तो फिर लड़का मिलने में और भी मुश्किल होगी। इनका ममेरा भाई यही फर्म में नौकर है। अभी तो दो सौ रुपये लेता है। पर आगे उन्नति की सम्भावना है। बी० ए० पास है। कहो तो बात चलाऊँ। मेरा विचार है दो हज़ार नकद देने पर वे शायद राजी हो जाँय। जो ठीक समझो तो नीलो की एक बढ़िया फोटो खिंचा कर भेज दो।' लक्ष्मी ने पत्र गरिमा के हाथ में रख दिया। गरिमा ने चुपचाप पढ़ लिया। फिर प्रश्न सूचक दृष्टि से माँ को ताका। लक्ष्मी ने धीमे से पूछा—'तेरी क्या राय है?'

'मैं इसमें क्या कहूँ।' जैसे उचित समझें करें। वैसे प्रतिमा ने कुछ गलत तो नहीं लिखा है। घर-वर पसन्द हो तो जिस दिन कहो स्टूडियो ले जाकर एक फोटो खिंचवा लाऊँगी। गरिमा अपने कमरे में चली गई। अभी-अभी स्कूल से लौटी थी—अन्य दिन वह तुरन्त स्कूल के वस्त्र उतार कर दूसरी साधारण धोती बदल लेती—फिर मुँह हाथ धो, गोदवाली बहिन को बाँहों में उठा माँ के पास रसोई में जाकर चाय पीने लगती थी। परन्तु आज उसका जी एकदम सुस्त पड़ गया। प्रतिमा ने कोई बुरी बात न लिखी थी। माँ ने भी कोई गलत बात न कही थी। उससे सलाह ही माँगी थी। परन्तु न जाने क्यों उसे आज माँ की बात छू गई। शायद अम्मा और बाबू जी को अब विश्वास हो गया है कि उसका विवाह अब हो ही नहीं सकता। वे अब नीलो के ब्याह की सोचते हैं? यह बात नहीं कि गरिमा प्रत्येक समय विवाह न होने की चिन्ता करती रहती हो। पढ़ाई, स्कूल, सहेलियाँ और घर के भाई बहनों की देख-रेख में अपने को व्यस्त रख कर—कुछ शिक्षा के बौद्धिक स्तर बढ़ जाने के कारण भी वह विवाह के लिये सोचने का समय ही न पाती थी। किन्तु न जाने क्यों उसे लगा, पैसा बड़ी बुरी वस्तु है। मेरी कमाई

के ही कारण अब माँ को यही भूल गया कि कुआँरी बेटी जितनी बार देहली लाघती है उतनी बार धरती नीचे धँसती है। इधर अनेक दिनों से उसने माँ के मुख से यह उक्ति नहीं सुनी थी। वही माँ जो उसे द्वार पर खड़े देखते ही टोक देती थी। अब देर सबेर स्कूल से लौटने पर केवल इतना कह कर रह जाती—'बेटो इतनी देर लगा दी ? मैं तो चिन्ता से मर गई थी कि न जाने कहाँ गई...या फिर—गिरी अकेली न जइयो, प्रमोद या लल्लू को साथ लेती जा।' कितनी बदल गई माँ। अब भी पड़ोसिनें ताना दे ही देती थीं कि आखिर लौडिया को कब तक बैठाये रक्खोगी, किन्तु चुप होकर भीतर आकर रोने के स्थान पर अब उसकी माँ तेज पड़ कर कहती—'तुम्हें क्यों खटकती है हमारी वेटी नौकरी करती है, कोई ऐब नहीं करती। अब तो सैकड़ों लड़कियाँ दफ्तरों तक मे काम करती हैं। हम कोई निराले हैं ! नहीं करते हम ब्याह—जब उसके लायक घर मिलेगा तो करेंगे, नहीं तो हमारी बेटी भागी नहीं जा रही !' पड़ोसिनों का मुँह स्वयं ही बन्द हो जाता। क्या माँ सचमुच इतनी उदार मस्तिष्क हो गई है ? या गरीबी और इतने छोटे-छोटे बच्चों के पालने की समस्या ने उसे ऐसा बना दिया है ? गरिमा कभी पहली बात पर मन जमाती कभी दूसरी पर......।

'गिरी !' लक्ष्मी ने पुकारा—'उठ तो बेटी देख शान्ता आई है !'

गिरी चौंकी तो, फिर लेटे-लेटे ही उत्तर दिया—'मेरा सिर दुख रहा है, यही भेज दो अम्मा।'

घर के बच्चो को आमों का झोला थमा मौसी से दो चार मिठ-बोलियाँ बना शान्ता गरिमा के पास आई। 'आहा, रानी दीदी, आसन पाटी लेकर पड़ी हैं ! उठो तुम्हें एक खुश खबरी सुनाऊँ।'

गरिमा ने खिसक कर उसके लिये जगह बनाते हुए कहा—'बैठ तो ! मैं लेटे-लेटे ही सुनूँगी, बड़ी थक गई हूँ।' शान्ता बैठ गई, ब्लाउज की चोली से एक टाफी निकाल कर चूसने लगी।

गरिमा ने प्रतीक्षा करके टोका—'सुना न ! चुनकी साधे क्यों बैठी है।'

'नहीं !' उसने टाफी चुभलाते हुए सिर हिलाया—'तुम अपनी थकान मिटाओ ! मेरी खुशखबरी थके लोगों के लिये नहीं है।' गरिमा ने बैठते हुए कहा—'ले बाबा अब सुना।' शान्ता उसके उठते ही स्वयं खाट पर लुढ़क गई। फिर अपनी चतुराई पर ताली बजा कर बोली—'देखा ! इसे कहते हैं ट्रिक। दीदी तुम सदा बुद्धू रहोगी। अच्छा सुनो ! कान में कहूँगी।' फिर कान में मुँह लगाकर फुसफुसाई—'श्री श्री, श्री कुँअर राज नारायण सिंह' की नियुक्ति तुम्हारे स्कूल में लड़कियों के नृत्य व तबला मास्टर के रूप में हो गई है। लाओ मिठाई खिलाओ।'

'सिंह' उसके स्कूल में नौकर हो गया है ? गरिमा के मुख पर ताजगी सी दौड़ गई। परन्तु दूसरे ही क्षण शान्ता को धक्का देकर उसने कहा—'पर चुड़ैल, यही है तेरी बड़ी भारी खुशखबरी ?' 'अच्छा, तो आपको सुन कर जरा भी खुशी नहीं हुई। लाओ मेरी खुशखबरी वापिस कर दो। तुम्हारे ही लिये तो मैंने इतनी दौड़ धूप की ! जगत प्रकाश जी के साथ दो बार चाय पी तब तो काम बना। आजकल किसी के साथ उपकार करने का समय ही नहीं है।'

'वाह यह अच्छी रही, यह उपकार मुझ पर है या सिंह पर—नौकरी उसकी लगी, ऐहसान मेरे ऊपर।'

'अच्छा दीदी बनो मत ! कसम खाकर बताओ, शान्ता ने उसके गले में बाहें डाल दी। सिंह तुम्हें पसन्द नहीं है ? दस पाँच दिन उससे मुलाकात न हो तो तुम्हें बेचैनी नहीं होती ? मुझे बुद्धू मत समझो मैं उड़ती चिड़िया पहचानती हूँ।'

'तू बड़ी दुष्टा है। सब को अपने जैसा समझती है।' 'हाँ हाँ, ज्यादा मस्ती मत छाँटो।' शान्ता ने उसके मुख पर हाथ रख कर कहा—'सच-सच बताओ ! मैं किसी से कहूँगी थोड़े ही। और कहूँ तब भी तुम

जैसी सन्यासिनी के विषय में यह विश्वास किसी को आयेगा ही नहीं कि मीरा, स्थानीय कुमारी गरिमा एम० ए०, एक बी० ए० फेल तबला मास्टर से प्रेम करने लगी है। बस चुपके से सच-सच बता दो।"

गरिमा के पास आज तक की भी कोई ऐसी सखी नहीं है जिससे मन की गोपनीय बातें कहे। यूँ हास्य रोमान्स के जीवन से वह बच कर रही है। फिर भी न तो अब से आठ वर्ष पहले के अमित वाले रस माधुर्य या विरह को ही वह किसी से कह पाई और न इस समय साहस हो रहा था कि शान्ता से कुछ कहे। शान्ता स्वयं कैसी हो उसे आदर्श दीदी मानती है। गरिमा चुप रही।

'नहीं बताओगी ? शान्ता ने कोंचा ! हम तो अपनी बुरी से बुरी बात भी बता देते हैं।'

'क्या बताऊँ ? सिंह भला लड़का है। मुझे भी अच्छा लगता है। सच कहती हूँ मैने कभी कोई वैसी बात उसके लिये नहीं सोची।'

'सोच ही कैसे सकती हो। कौमार्य जो टूट जायगा। तुम तो अपना बूँद-बूँद रस अपने ब्याहता के लिये रखना चाहती हो। चाहे उसके आने तक वह सूख भले ही जाय। किसी को दे नहीं सकतीं। सिंह बेचारा तो तुमसे डरता है। एम० ए० पास लड़की का रोब जो गालिब है। वरना मै जानती हूँ वह मन में तुम्हें पूजता है।'

'धत् !' गरिमा लजा गई—'यह भला कैसे सम्भव है ?' हाँ भाई यह कैसे सम्भव है। एम० ए० पास लड़की बी० ए० फेल लड़के से कैसे प्रेम करे ? तिस पर लड़का बेकार भी हो। पर दीदी ! मैं कहती हूँ—जवानी, शान्ता ने अपना पुराना गीत दोहराया—'जवानी बीत जायेगी यह रात फिर न आयेगी।' मतलब यह कि जब एक सुन्दर सुपुरुष जो तुम्हारे मन को भी भला लगता है, तुम्हारी ओर उन्मुख है तो अवसर मत चूको। माना वह तुम्हें फूलों की सेज पर न सुला सकेगा पर तुम तो स्वयं कमाती हो, फिर तो टूट टाट घर टपकत खटिया टूटि, पिय की बाँह उससिवाँ सुख कै लूटि।' 'मर जा ! जब

तुझे स्वयं इतना पसन्द है तो कर ले न विवाह।' 'मैं ?' राम भजो दीदी–मुझे तो वह काली नागिन समझता है। उसका मन भले ही चार छः बार प्रेम कर चुका हो, पर तन अभी विशुद्ध है। मुझ जैसी को तो वह छाँह भी न छुयेगा।' 'उँह, मुझे नहीं है परवाह मेरा जेम्स सलामत रहे। मुझे तो उस पर तरस ही आता है! कितना कलाप्रिय है। थियेटर में उसके प्राण बसते हैं। कितना बढ़िया डाइरेक्ट करता है ? पर फिर भी बेकार है।'

गरिमा को हँसी सूझी—'बम्बई भेज दे! हीरो बन जायगा।' 'अरे इतना साहसी नहीं है। सिंह मन का दुर्बल है ? वह उन पुरुषों में है जिन्हें माँ की गोद हमेशा चाहिये। नहीं तो जैसे एक बार भाग गया था–वहीं रहता। असल मे उसके स्वभाव में स्त्रीपन अधिक है।' शान्ता ने बड़े मुरब्बीपन से फर्माया।

'तुझे यह सब पता कहाँ से मिल जाता है ?'

'हूँ पता ? अरे ऐसा न होता तो वह सेठानी से डर जाता। उसके घर के नौकरों से मार खा लेता ? और आज तीन चार महीनों से तुझसे मिलता रहता है। कई बार साथ में चाय भी पी है, लेकिन एक बार भी कभी चप्पल से पाँव की कनिया उँगली तक नहीं दबाई। तेरे घर का पता मालूम रहने पर भी कभी यहाँ आने की हिम्मत न दिखाई।'

गरिमा ने अब कुछ कहा नहीं! सिर झुकाकर सोचने लगी। शान्ता ने उसकी ठोड़ी उठाते हुए कहा—'दीदी! मेरी बात हँसी में मत टालो। न नव मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। न मौसी के पास पाँच सात हजार रुपया देने को होगा न तुम्हारे लिये अच्छा वर मिलेगा ? तुम सिंह को गनीमत समझो। भाग्य से वह तुम्हारी जात का भी है, तुम्हे बहुत मोर्चा नहीं लेना पड़ेगा।'

'वह तो श्रीवास्तव हैं ?' गरिमा के मुख से अनायास ही निकल गया। 'अभी तो केवल वास्तव हैं श्री तो यहाँ बैठी है।' कहती हुई

शान्ता उठी—'अब चलूँ दीदी !' सीधी स्कूल से आ रही हूँ। सिंह रास्ते में मिले थे, उन्होंने कहा कि तुम्हें बता दूँ, तो मै इधर चली आई !

'अरे तो क्या बिना चाय पिये जायगी ! चल अम्मा के पास चलें।'

५

थियेटर की नौकरी छूटने के पन्द्रह दिन बाद ही सिंह के विवाह की बातचीत भी समाप्त हो गई। उसके श्वसुर का पत्र आया था कि हमें अपने नगर में ही लड़का मिल गया है। अब कष्ट के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

पत्र पाकर सिंह के पिता को दुख भी हुआ और आश्चर्य भी। और फिर सिंह के दुर्भाग्य से उन्हे न जाने कैसे यह समाचार भी मिल गया कि लड़के ने स्वयं ही किसी प्रकार अपनी नौकरी छूटने की खबर को ससुराल पहुँचाया है। अब सिंह को घर में सबसे ही कठोर बातें सुनने को मिली। माँ, भाभी, पिता, भाई सभी उससे अप्रसन्न थे। यूँ उसकी कला-प्रियता या थियेटर की सनक को कभी किसी ने अच्छा नहीं कहा, परन्तु पहले घर वाले समझते थे कुछ दिनों का नशा है, आप ही छूट जायगा। लड़को के ऐब छुड़ाने वाले अचूक नुस्खे को तो उन्होंने पाँच साल पहले ही मोल लेना चाहा था परन्तु उस समय सिंह का अभिनय नशा पूरे उभार पर था। वह घर से भाग कर बम्बई चला गया था। उस लड़की से, फिर उस समय इण्टर में पढ़ते, उसके छोटे भाई का विवाह हो गया। घर वालों ने समाचार पत्रों में छपवाया—"प्रिय पुत्र राज ! जहाँ भी हो तुरन्त घर लौट आओ, तुम्हारी माता

मृत्यु शैया पर पड़ी तुम्हारा नाम रट रही हैं। तुम आ जाओ तुम्हें तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई कुछ, करने को न कहेगा।' राज भी बम्बई के साल भर के धक्कों में ही पस्त हो चुका था। चुपचाप लौट आया! पिता के कहने से उसने दोबारा बी० ए० करने के लिये कालेज ज्वाइन करने की सोची भी थी, परन्तु उसी समय उसके एक धनी मित्र ने एक थियेटर कम्पनी खोलने में उसकी सहायता चाही। अन्धा क्या मांगे दो आँखें! सिंह उसके साथ हो लिया। दिन रात एक करके परदे तैयार किये, सीन-सिनरियाँ बनाई। लड़के लड़कियाँ जुटायीं। खाना-पीना छोड़, धुआँधार रिहर्सलें की? एक नाटक खेला भी गया। आशा थी कि चार नाटक तैयार हो जाय और उन्हे बारी-बारी से शहरों में घूम-घूम कर खेला जाय तो कम्पनी चल जायगी। पर सिंह का दुर्भाग्य, कि नाटक की हीरोइन से उनके मित्र को प्रेम हो गया। काम में बाधा पड़ने पर सिंह ने मित्र को भी डाँटा। हीरोइन पर भी अंकुश लगाना चाहा। पर मित्र पैसे वाला हो और मालिक बन जाय तो, बात बदल जाती है। तिस पर कोढ़ में खाज की भांति उसमें प्रेम भी घुस बैठा था। मित्र ने सिंह को निकाल दिया। कम्पनी टूट गई और हीरोइन, मित्र की स्थायी मेहमान बन, उनके घर की वंश बेल बढ़ाने लगी।

सिंह का वह वर्ष बरबाद हो गया। अब वह इधर-उधर ट्यूशनें (यदि मिल जाती) तो करता और होली, दीवाली-दशहरे पर कुछ उत्साही युवक युवतियों (जो एक साथ ही होती थीं) का साथ मिलने पर नाटक खेलता, जिसमें दो चार दिन वाह-वाही मिलती। स्थानीय पत्रों में उसका नाम प्रकाशित हो जाता और एक दो नाम मात्र के गोल्डन मेडल या रजत कप भी, पुरस्कार स्वरूप मिल जाते। परिवार के अन्य बच्चे बड़े हो रहे थे, खर्च बढ़ रहे थे और दिनों-दिन सिंह घर में अप्रिय और सम्मानहीन होता जा रहा था। छः सात वर्षों के असफल प्रयत्नों के थपेड़े खा-खाकर वह भी परेशान था। आयु की पुकार से विवाह और प्रेम दोनों के लिये उसके प्राणों में हूक उठती थी? किन्तु कुछ भी हो वह मूर्ख नहीं था। आय का किसी स्थायी

आमदनी बिना वह विवाह न करना चाहता था। और प्रेम का तो पिछले वर्ष ही उसे बड़ा कड़ुआ अनुभव हुआ था। जिस सेठ पुत्री को समीप पाकर भी उसने देव प्रतिमा की भांति दूर-दूर से ही पूजा की थी और जिसने, उसके प्रभाव में प्राण त्याग दिये जाने की कितने वायदे किये थे। वही पिता की एक डाँट पर उसे इतनी मार पिटवाकर चुपचाप ब्याह को तैयार हो गई। यही नहीं विवाह के बाद एक रात चोरी से ब्याज समेत उस मार का बदला अपनी विवाहित देह को उसे सौंप कर उतारने भी पहुँच गई थी। सिंह देवता नहीं था? किन्तु उसे सेठ पुत्री के विश्वासघात ने चोट पहुँचाई थी। तथा अपने संस्कारों से भी बँधा था। पराई विवाहिता को उसने सादर वापिस कर दिया था।

तन की भूख कितनी ही हो परन्तु सत्ताइस वर्ष तक झेल लेने के बाद वह यह नहीं चाहता था कि उसके हिस्से में अशिक्षित या असुन्दर लड़की आये। उसने अपने इधर वाले नवीन विवाह प्रस्ताव को समाप्त करा दिया था। उसकी इस हरकत से पिता और माता दोनों क्षुब्ध थे। उन्हे उसकी बहन का विवाह भी टालना पड़ा था। सिंह अधिकतर घर से बाहर रहता। गई रात घर में घुसता और रसोई में जो बचा कुचा रक्खा होता खाकर सो रहता। ऐसे में गरिमा से कभी-कभी की भेंट, उसकी सहानुभूति और उसकी कला के प्रति उत्साह उसे मरू-भूमि में नखलिस्तान सी प्रतीत होतीं। उसकी इच्छा होती कि प्रति दिन ही गरिमा से भेंट हो।

गरिमा के स्कूल में अपनी नियुक्ति से उसे अत्यन्त हर्ष हुआ। नौकरी लगने की खुशी उतनी न थी। जितनी प्रतिदिन गरिमा को देख पाने और उससे बातें कर पाने की प्रसन्नता। प्राइवेट स्कूल में कुल सत्तर रुपयों पर उसे पन्द्रह लड़कियों को कत्थक नृत्य सिखाने का कार्य करना था। छोटी-छोटी बच्चियाँ जिन्हें एक पाँव भी सीधा रखना न आता था। वह स्वयं भी कत्थक नृत्य का मँजा हुआ विशेषज्ञ न था।

शौकिया तीन वर्ष का सीखा था। उसके, उसी उतने ज्ञान को स्कूल वालों ने सत्तर रुपये में क्रय कर लिया था। स्कूल में नृत्य की कक्षा आवश्यक थी (क्योंकि यह भी अब फैशन में शामिल थी।) और यह सब को विदित था कि सिंह चाहे थोड़ा ही जानता हो ! सिखाने में पूरा श्रम करता है। उसे नौकरी मिल गई।

शान्ता के स्पष्ट संकेतों ने गरिमा के मन के सोये पड़ सोये राग-मय प्रश्नों को जगा दिया था। बी० ए० फेल लड़के का सानिध्य सुखकर प्रतीत होने पर भी उसने यह पहले कभी नहीं सोचा था कि सिंह से मिलने की उसकी इच्छा का वास्तविक रूप यह है। अब तक तो एक प्रतिभाशाली असफल युवक के प्रति सहानुभूति तक ही वह पहुँची थी। अपने मन से साथी बना कर वह अपना वर चुनेगी ऐसी कल्पना भी उसने कभी न की थी, परन्तु उस रात को उसके मन में यह बात देर तक घूमती रही—'क्या सचमुच मुझे सिंह से प्रेम हो चला है ? मन में कहीं से स्वर उठा 'हाँ' झूठ तो नहीं है। अनन्दामय में अमित के प्रति जो वेग अनजाने ही उस पर छा गया था उसका ही बहुत-बहुत परिष्कृत रूप-उसी जैसी चाह सिंह के प्रति भी है। वह चाह कितनी ही सूक्ष्म क्यों न हो। एक बार प्रेम में निराश होकर भी वह चाह मिटी नहीं है। क्या यह पाप है ? उसने स्वयं ही तर्क किया ? यह पाप क्यों है ? अमित से मुझे मोह था। वही मुझे मिल जाता तो उसी से जीवन के सब अभाव भर लेती। वह और घर ही मेरा अपना सब कुछ हो जाता। किन्तु उसके तो आठ वर्षों में दर्शन तो दूर, समाचार तक न मिले। वह मेरी जीवन परिधि से दूर चला गया। उसकी याद भी अब विकल नहीं करती। आज उस स्थान पर सिंह छाया जा रहा है ? यूँ मैं अब बच्ची नहीं हूँ। शपथ खाकर सिंह से मिलना छोड़ दूँ तो कुछ दिनों उसे न देख पाने की पीड़ा भी सह्य हो ही जायगी। किन्तु, इससे मुझे कौन सा पुण्य मिल जायगा ? किस उच्च ध्येय की प्राप्ति हो जायगी ? आज ही मैं किस आध्यत्मिक सुख और ज्ञान की प्राप्ति में लगी हूँ। मेरी सारी शिक्षा मात्र नब्बे रुपये

कमा कर पेट भरने का साधन बनी हुई है। कमाऊ लड़की होने पर भी मेरा कुवाँरापन माँ बाबू जी के लिये लज्जाजनक और भार स्वरूप ही है। आज भी बिना थैली ग्रहण किये कोई सम्पन्न परिवार का उच्च-शिक्षित लाल मुझे अपनी बनाने को तैयार नहीं। तब? तब क्यों मैं अपने मन के इस अनायास प्राप्त सुख को नष्ट कर दूँ? गरिमा को एक कोमल-सुखद फुरहरी आ गई—'कैसे मुग्ध नेत्रों से देखता है उसे सिंह और जब गरिमा की दृष्टि उससे मिल जाती है तो वह कैसे आँखें नीची कर लेता है। मानो चोरी करते पकड़ा गया हो। गरिमा को याद आया घुंघराले बालों वाले मुख के वे परेशान और चिंतित नेत्र कैसी आतुर याचना से उस पर मँडराते हैं। कितनी आकुल प्रतीक्षा से सिंह पूछता है। 'अब कब मिलोगी?' लगता था गरिमा के हृदय के प्रणय रस की कोई लुप्त धारा अकसमात् उद्गम पा जाने से फूट निकली।....उसके मन प्राण भींग उठे और....और उसमें सिंह का चित्र उजला होता गया...होता गया...होता गया।

★

सिंह को स्कूल में सिखाते तीन दिन हो गये थे।

'आज मैं आपको चाय पिलाऊँगी।'

'यह नई बात क्यों? बल्कि आज तो आपकी दोहरी चाय ड्यू हो गई। एक साधारण और एक मेरी नौकरी लगने की।'

'आपसे भला बातों में कौन जीत सकता है।'

'मैं तो एक अनपढ़ छोकरा हूँ। उम्र में भले ही कुछ बड़ा होऊँ, ज्ञान में तो छोटा ही हूँ। अज्ञानी सदा हारता ही है।' सिंह ने मुस्करा कर उत्तर दिया।

'जाइये!' गरिमा खीझ उठी—'आप से पार पाना कठिन है। मतलब यह कि मेरी चाय आप नहीं पियेंगे? मान भरी इस खीझ ने

उसे और भी सलोना बना दिया था। सिंह आज नौकरी पा जाने की प्रसन्नता से भरा था। उसका मन लहरा रहा था।'

'क्यों नहीं पियूँगा...मैं तो पीने को तैयार हूँ पर....!'

'तो चलिये न...इतने नखरे क्यों कर रहे हैं?'

'एक दिन पीकर क्या ईमान खोयें...हमेशा पिलाने का वायदा कीजिये तो कोई बात भी बने।' सिंह की आँखें हँस रही थी; रोम-रोम पुलक रहा था...उसने जाने कैसी दृष्टि से गरिमा को देखा और फिर सिर झुका लिया। गरिमा के देह में बिजली सी दौड़ गई।

'ओह!' वह काँपी फिर सम्हल गई। रुक कर बोली—'एकदम से इतना बड़ा वायदा कैसे कर सकती हूँ। पर आज तो पी ही लीजिये।'

'न! हमें जल्दी थोड़े ही है। सोच कर जवाब देना। आज के लिये तो इतना ही काफी है।'

'सच?' गरिमा निहाल हो गई।

'सच!' सिंह ने पूरे विश्वास से उत्तर दिया।

६

शीरीं के लिये फरहाद ने कोह को काट दिया। सिंह भी गरिमा के लिये फिर से पढ़ने लगा। पढ़ने का व्यसन उसे पहले भी था, परन्तु यह पढ़ना डिगरी लेने के लिये था। किसी ने किसी से खुल कर कुछ नहीं कहा था। समान वय और इच्छाओं के कुछ मूक समझौते और अनुरोध भी होते हैं। जिस दिन से सिंह को यह विश्वास हुआ था कि गरिमा उसे कुछ दूसरी दृष्टि से देखती है उसी दिन से अपनी

एम० ए० पास प्रेयसी के सम्मुख उचित सम्मान से आँखें उठा पाने के लिये वह फिर पढ़ाई में जुट गया। दूसरे मात्र अभिनय और निर्देशन के बल पर उसे कहीं अच्छी नौकरी, जिसमें वह अपने को विवाह करने की परिस्थित में पाये, मिलने की आशा नहीं रही थी। गरिमा अब सन्तुष्ट थी। उसने इतने पर सन्तोष कर लिया था। तीन वर्ष में सिंह एम० ए० कर लेगा तब तक वे इसी प्रकार स्नेही मित्रों की भांति रहेंगे। इस बीच यदि लड़का मिल जाय तो नीलिमा का विवाह कर दे और उसके विवाह का ऋण भी कुछ न कुछ उतार दे। उसका विश्वास था कि जो माँ उसे नौकरी करने दे सकती है! इतने दिन कुमारी रख सकती है वह मात्र उपजाति के अन्तर पर बहुत अधिक अप्रसन्न न होंगी। पिता जी को माँ राजी कर ही लेंगी।

नीलिमा के लिये प्रतिमा का बताया लड़का और उसके परिवार वाले चार हजार नकद से कम पर राजी नहीं हो रहे थे। सब मिला कर विवाह में सात हजार का ऋण हो जाता। अपने दमे से जर्जर बूढ़े कन्धों पर, मात्र लड़की की कमाई के भरोसे, अमरनाथ इतना बड़ा भार लेने को तैयार न थे। बात तय होते-होते टूट गई। नीलिमा घर में बैठ कर कढ़ाई-बुनाई करती और उदास रहती। माँ लम्बी-लम्बी सांसें लेती परन्तु गरिमा न जाने क्यों उत्साह से भरी थी। उसका मन आशा से पूर्ण था। कभी-कभी सिंह को वह घर पर भी बुला लेती। बेटी की यह नई स्वतन्त्रता माँ को भली नहीं लगी। उसने दवे स्वर में प्रतिवाद किया। मरदों से मेल जोल बढ़ाना कुआँरी लड़की को शोभा नहीं देता।

'माँ!' गरिमा ने लाड़ से कहा—'अब कुआँरी तो हूँ ही पर जब नौकरी करती हूँ तो सभी से मिलना पड़ता है। ये हमारे स्कूल के डान्स टीचर हैं। बहुत अच्छा गाते हैं? तबला भी बहुत सुन्दर बजाते हैं। अभी दीवाली पर जो वीर विक्रमादित्य नाटक हुआ था वह इन्हीं ने किया था। यही तो विक्रमादित्य बने थे।'

'कौन जात हैं ?' माँ की व्यवहार बुद्धि जागी—'लड़का तो अच्छा है। बात करता है तो मुँह से फूल झड़ते हैं।'

'हैं तो कायस्थ ही पर श्रीवास्तव हैं।' गरिमा मुस्कराई। माँ का मन थोड़ा हिचका परन्तु समय की चोटों ने उन्हें भी कुछ साहसी बना ही दिया था। धीरे से बोली—'अब तो सभी कायथ-कायथ एक ही समझो, हमीं छोटे लोग इसका ध्यान रखते हैं। बड़े-बड़े तो सब आपस में ब्याह करने लगे हैं। लो राय साहब रामचन्द्र बाबू की लड़की भटनागर में गई है ? और बरेली वाले तेरे फूफा के लड़के ने कुलश्रेष्ठों की लड़की ब्याह ली। बड़ा दहेज मिला डाक्टर की अकेली लड़की है न।'

गरिमा के मन की आशा दूब असमय की इस वर्षा से लहलहा उठी। उसने उसी तान में कहा—'बीच में बीमारी के कारण पढ़ाई छोड़ दी थी। इस साल बी० ए० में बैठ रहे हैं। पर अम्मा ज्ञान और अनुभव बहुत है।'

माँ ने भी बात आगे बढ़ाई—'घर कैसा है ?'

'घर का तो मुझे ठीक नहीं मालूम...पर अपना मकान है बड़े भाई कहीं पर छः सात सौ के नौकर है। माता-पिता, बहनें, भतीजे-भतीजी पूरा परिवार है।'

माँ उस समय चुप हो गई।

अब यदि दस पाँच दिन सिंह न आता तो स्वयं पूछ लेती...तेरे डान्स मास्टर आजकल नहीं आ रहे.. क्या बात है।

गरिमा उस दिन उत्फुल्ल हृदय से सिंह को सुनाती—'तुम तो जादू जानते हो राज !' (इन छः महीनों में वह आप से तुम और मिस्टर सिंह से राज पर उतर आई थी। सिंह भी उसे गोला गिरि कह कर छेड़ लेता था)। 'अम्मा को भी वश में कर लिया...वे आज तुम्हे पूछ रही थीं।'

'गोला गिरी...प्राप्त करने की कुन्जी जो उनके पास है।' सिंह

हँसता—'भगवान से भी अधिक कठिन उसके पुजारियों की प्रसन्नता जीतनी होती है।'

संध्या को वह गरिमा के भाइयों के लिये रबर-पेन्सिलें, टाफियाँ इत्यादि लेकर पहुँच जाता।

एक रात उसके जाने के बाद लक्ष्मी ने कहा—'लड़का तो राज अच्छा है गिरी! कितनी उमर होगी?'

'यही कोई अट्ठाईस साल की!' गरिमा ने जान-बूझ कर एक साल बढ़ा दिया।

'कैसे हैं इसके माँ-बाप जो ऐसे हीरे जैसे बेटे को अब तक कुवाँरा बैठाये हैं?'

'अम्मा, वह विवाह करना ही नहीं चाहते। कहते हैं जब तक खूब रुपये न हों विवाह कैसे कर लें।'

माँ ने आश्चर्य से कहा—'अरे तो दो सौ रुपये कमाता है यही क्या कम है?' (गरिमा ने माँ से सिंह की तनख्वाह इतनी ही बताई थी) गरिमा होठों में मुस्कराई, माँ ने इसे लक्ष्य नहीं किया। स्वर में राजदारी भर कर बोली—'ये आजकल के पढ़े लिखे लड़के तो जात-पाँत का उतना विचार नहीं करते हैं, फिर कायस्थ तो हम भी हैं, तू बात कर देखियो...या तेरी सलाह हो तो मैं पूँछू?'

बिना मांगे यदि मन चाहा वरदान प्राप्त होता हो तो मनुष्य की क्या दशा होती है? गरिमा के हृदय में रक्त बोलने लगा खट-खट-खट! माँ ने और भी फुसफुसा कर कहा—'जो अपनी नीलिमा के लिये राजी हो जाय तो बहुत अच्छा रहेगा। उमर में दस बरस का अन्तर है तो क्या हुआ। जो लड़का अपनी मरजी से ब्याह करेगा तो नकद दहेज की बला नहीं रहेगी।'

गरिमा सन्न रह गई! उसका मुँह सफेद पड़ गया। वह लड़खड़ा गई—'क्या हुआ गिरी?' माँ उसका चेहरा देख कर घबड़ा गई—'कुछ नहीं!' गरिमा ने दीवार थाम ली—'सिर में चक्कर आ गया था?'

मैं कहती हूँ ? माँ व्यस्त हो उठी—'तू क्यों अपने प्राण देने पर तुली है। खुद कमाती है पर पाव भर दूध नहीं पीती ? चल कर लेट, मैं सिर में मलने को रोगन बादाम लाती हूँ।'

गरिमा चुपचाप अपने कमरे में जा लेटी। उसका सिर घूम रहा था।...

७

सिंह के सामने अब सबसे बड़ी समस्या उपस्थित थी। सुशील, शिक्षित गरिमा उसकी निराशा के दिनों में उसके समीप आई थी। उसके प्रति स्नेह और कृतज्ञता धीरे-धीरे आकर्षण में बदल गई। उधर से भी निषेध नहीं आया। एक साथ एक ही स्कूल में काम करने की परिस्थिति ने उसे शीघ्र ही प्रेम का जामा पहना दिया। दोनों को लगा कि एक दूसरे के बिना जीवन व्यर्थ है।

सिंह ने सोचा था कि इस वर्ष बी० ए० कर लूँ, डिग्री हाथ लग जाने पर सम्भव है इससे अच्छी जगह मिल जाय। अगर वह मेहनत करके एम० ए० प्रथम श्रेणी में कर लेगा तो प्रोफेसरी मिल जाने की सम्भावना भी थी। तब इतना कमानेवाला बेटा यदि माता-पिता से अपनी इच्छा की बहू घर लाने को कहेगा तो कदाचित् बहुत हल्ला-गुल्ला न मचेगा। यह ठीक है कि नौकरी करनेवाली लड़की उनके घर की बहू बने इसे बाबा और बाबू जी आसानी से स्वीकार न करेंगे......किन्तु तब वह गरिमा को नौकरी थोड़े ही करने देंगे। वह घर में रहेगी। बस केवल उसके स्वयं के नाटकों में पार्श्व गायन करेगी या यदि वह स्वयं कभी नायक बना तो वह हीरोइन बन जायगी। मन

ही मन अपनी योजना पर वह मुग्ध था। पहले महीने से ही स्कूल की तनख्वाह के पूरे सत्तर रुपये उसने माँ को देने आरम्भ कर दिये। अपने खर्चे के लिये उसने संध्या को एक ट्यूशन पकड़ ली। घर में उसका मान बढ़ चला। किन्तु नौकरी के तीसरे महीने ही माँ ने कहा—'राज अब तो नौकरी भी लग गई, अब तो ब्याह की हामी भर ले। क्या बुढ़ापे में ब्याह करेगा ?'

'नही अम्मा ! बस अब अधिक देर नही है। दो ढाई वर्षों में एम० ए० हो जाऊँ फिर कर लूँगा। देखो अब तो मैं मन लगा कर पढ़ रहा हूँ।'

'अरे तो बहू आकर तेरी एम० ए० की डिग्री छीन थोड़े ही लेगी। उमर बढ़ जाने पर अच्छे नाते नहीं मिलते।'

'तुम इसकी चिन्ता न करो अम्मा ! कायस्थों में लड़कियाँ बेहद इफरात (अधिकता) से हैं। मैं तुम्हारे लिये अच्छी ही बहू लाऊँगा।'

माँ से तो सिंह ने छुटकारा ले लिया पर बाबू जी से मोरचा लेना कठिन था। उन्होंने एक दिन बुला कर कहा—'राजू घर से भागने का इरादा हो तो अभी बता दो वरना अच्छा भला रिश्ता मिल रहा है चुपचाप मन्जूर कर लो। चाहोगे तो लड़की भी दिखा दी जायगी। नकद चार हजार मिल रहा है जो तुम यूँ ही टालते जाओगे तो शीला का ब्याह कैसे होगा ?' शीला राज की बहिन है। और विवाह योग्य।

सिंह ने अटक कर उत्तर दिया—'आप उधार लेकर शीला का विवाह कर दें। धीरे-धीरे दे दिया जायगा।'

'आखिर कुछ मालूम तो हो कि तुम क्यों शादी करना नहीं चाहते। जवान हो, तन्दुरुस्त हो फिर इन्कार का सबब ?'

राज चुप खड़ा रहा।

'तुम्हें कोई बीमारी तो नहीं है ?' पिता ने प्रश्न किया।

यह सिंह का स्पष्ट अपमान था। वह उठ कर चला गया। अपने

पौरुष पर कलंक सहना उसे असह्य लगा। उसने भाभी के द्वारा माँ को कहलाया—'मेरी पसन्द की लड़की से ब्याह करें तो मै अभी तैयार हूँ।'

घर भर में बात फैल गई। राजू ने पहले ही कोई पसन्द कर रक्खी है। अपनी पसन्द! बाबू जी को चिढ़ाने के लिये इतना काफी था। इस मंहगाई के युग में भी उनके परिवार ने अपनी पुरानी चाल-ढाल नहीं छोड़ी थी। आज भी उनके घर की बहुयें साड़ी पर चादर ओढ़ कर बाहर निकलती थीं। घूँघट काढ़ती थीं। लड़कियों को टेन्थ से आगे नहीं पढ़ाया जाता था। और घर के भीतर चाहे कितनी ही दरारें थीं, पर परिवार सम्मिलित था। राज को पत्नी के द्वारा उन्होंने कहलाया—'गैर कौम (जाति) में शादी करना है तो इस घर से निकल जाये! समझ ले उसके लिये सब मर गये।'

सिंह ने माँ से कहा—'लड़की अपनी ही जाति की है। बहुत पढ़ी लिखी और योग्य है। उतना तो मैं भी पढ़ा नहीं हूँ।'

माँ को आश्चर्य हुआ—'कौन है? किसकी लड़की है?'

सिंह ने तब धीरे-धीरे सब बता दिया। फिर कहा—'लड़की तो आपकी देखी हुई है। पिन्टू के मकतब (विद्यारम्भ संस्कार) पर मेरे स्कूल की जो टीचर आयीं थी उनमें जिस लड़की का गाना आप सब को बहुत पसन्द आया था वही मास्टरनी!' माँ की आँखें आश्चर्य से फैल गयीं—'तेरे बाबू जी तो एक से लाख तक राजी न होंगे। फिर कोई लड़की भी हो। ऐसी गोरी भी नहीं है। जब एम० ए० पास है तीन बरस से नौकरी करती है तो उमर भी कम न होगी। उसके बाप की हैसियत ही क्या है। बिजली कम्पनी में क्लर्क हैं। रिश्तेदारों में भी सब ऐसे ही असियारे-घसियारे होंगे। अरे इससे तो जो रामनगर वाली लड़की हमने देखी है लाख दरजे अच्छी है। दसवीं फेल है तो क्या? खूब गाती है। बाप रिटायर ओवरसियर हैं। दस हजार शादी में देने को कहते हैं। उन्हें हमने यह थोड़ा ही बताया है कि तू सत्तर रुपल्ली पाता है। सवा दो सौ बताये हैं।' सिंह ने सिर झुका लिया।

बड़ी बहू ने धीरे से कहा—'हमारे लल्ला को फँसा लेने वाली लड़की मामूली थोड़े ही हो सकती है। उसकी चालाकी तो मैं उसी दिन देख रही थी। घड़ी भर में पिन्टू को ऐसा पटा लिया कि वह मौसी मौसी करके उसके पीछे लग गया था। यह तो अभी बच्चे हैं उसने न जाने इनके जैसे कितनों को मूर्ख बनाया होगा।'

माँ और भाभी दोनों को ही यह भूल गया कि मकतब वाले दिन इसी लड़की की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। 'कि देखो मिजाज नहीं है। भगवान किसी को लड़की दे तो बहुत सा पैसा भी दे।... अब देखो इतनी लायक और पढ़ी लिखी होने पर भी कुआँरी बैठी है।' आज उसमें दोष ही दोष दिखाई दे रहे थे।

किसी बहुत बड़े घर की लड़की ने सिंह को पसन्द किया होता और वह कायस्थ ही होती तो उसके बाबू जी भारी दहेज की आशा में इस बात को कड़ुई दवाई की भांति निगल जाते...पर बिजली कम्पनी के क्लर्क की मास्टरनी बेटी ! जो ससुरे स्वयं लड़की की कमाई खा रहे हैं वह भला क्या देंगे। फिर इतनी पढ़ी लिखी बहू लेकर क्या करना है। ऐसी बहू के आते ही घर बिगड़ जायगा।

उन्होंने सिंह को सुनाकर उसकी माँ को डाँट पिलाई—'क्या शोर मचा रक्खा है। कान खोल कर सुन लो मास्टरनी फास्टरनी को मैं अपनी देहरी भी न लांघने दूँगा।'

सिंह अप्रत्याशित रूप में सारे घर का इतना कड़ा विरोध पा कर स्तब्ध रह गया। वह माता-पिता का बहुत अदब करता था...चुपचाप बाहर चाहे जो कुछ करे उनके सामने विरोध का साहस उसमें नहीं था। किन्तु उसका प्रेम अब इतना बढ़ चुका था कि पीछे लौटना उसे असम्भव लगा। आज लगभग छः महीनों से गरिमा उसके स्वप्नों की रानी बनी हुई थी। उसके दिन उससे मिलने की प्रतीक्षा में संध्या बन जाते थे। और रात उसकी याद में सबेरा। वह उसे अपनी बनाने की शपथ खा चुका था। मन ही मन नहीं; मकतब वाले दिन की साँझ

को अषाढ़ पूर्णिमा के मेघाच्छन्न आकाश के तले अदृश्य चन्द्रमा को साक्षी मान उस धुँधले अँधियारे में एक दूसरे का हाथ थाम आजीवन एक दूसरे के बन कर रहने की प्रतिज्ञा कर चुके थे।

अब वह क्या करे ?

८

बाबू चन्द्रिका प्रसाद शहर के ही एक प्रौढ़ वकील हैं उनकी पत्नी का गत मास स्वर्गवास हो गया था। देखने में हृष्ट पुष्ट हैं ! दो लड़कियाँ हैं जो गरिमा के स्कूल में ही आठवीं और नवीं में पढ़ती हैं। बड़ी लड़की के बीमार होने पर माँ के साथ गरिमा उनके यहाँ गई थी। माँ जाति भाई के यहाँ मातम पुरसी को और गरिमा अपनी कक्षा की सबसे तेज लड़की का स्वास्थ्य समाचार पूछने। स्त्रियों में लड़कियों की एक बुआ घर में थीं। लक्ष्मी उन्हीं के पास बैठी। बुढ़िया या प्रौढ़ायें जब एक स्थान पर बैठें तो उनकी बातों का प्रधान विषय होता है विवाह योग्य लड़के लड़कियों की चर्चा। बुआ ने इतनी बड़ी पढ़ी लिखी लड़की के लिये वर न मिलने पर सहानुभूति प्रकट की और साथ ही अपनी भौजाई की मृत्यु पर चिन्ता। उनके जवान भाई का घर बिगड़ गया था। बारह चौदह वर्ष की सयानी लड़कियों को देखने वाला, इतनी बड़ी गृहस्थी सम्भालने वाला कोई न था। बुढ़िया बुआ जी ने अपनी मोतियाबिन्द से लगभग बन्द आँखों से ही इतनी देर में गरिमा को देख परख लिया था। यूँ मास्टरनी और इतने छोटे घर की लड़की वे अपने कुँआरे भाई के लिये तो कभी स्वीकार न करतीं पर अब बात दूसरी थी। अच्छा बुरा क्या देखना था। चालीस वर्षीय

प्रौढ़ भाई का घर बस जाय। उन्होंने लक्ष्मी को संकेत किया। लड़की के लिये तो उसका दूना वर ही शोभा देता है। इतनी उमर हो जाने पर कुआँरा लड़का भी मिलना कठिन होता है।

लक्ष्मी ने प्रतिवाद किया—'बहन जी, मेरी गरिमा को तो इस कुआर से बाइसवाँ लगा है। यह पढ़ने में तेज थी इसी से जल्दी-जल्दी पढ़ के नौकर हो गई।'

माँ उसकी आयु में पूरे पाँच वर्षों का झूठ बोल रही है। गरिमा के मुख पर हँसी आई ही थी कि वह वकील साहब की लड़कियों को लेकर छत पर चली गई। लड़कियाँ अपनी दीदी को अपनी बनाई पेन्टिंग दिखाना चाहती थीं।

बुआ ने निराशा पा कर कहा—'उमर तो मेरे चन्द्रिका की भी कुछ नहीं अभी तीस बत्तीस का हुआ होगा ! लड़कियाँ तो उसके बहुत जल्दी हो गई थीं। जो तुम्हें पसन्द हो तो कुछ बात चलाऊँ। साल भर तो शायद न करे पर जोर दूँगी तो मान जायगा। उसके तो बहू के शोक में एकदम बाल सफेद हो गये हैं।'

लक्ष्मी को भी बात असंगत न लगी। यूँ वकील साहब को उसने एक नजर देखा था। वे उसे चालीस से कम न लगे थे। उससे ऊपर भले ही हों। दो सयानी लड़कियाँ और एक लड़का भी है पर... उन्होंने सोचा सब बातें एक साथ कहाँ मिलती हैं। गरिमा को बच्चों से प्रेम है। किसी न किसी तरह निभा ही लेगी। सबसे बड़ी बात यह है कि दहेज का एक पैसा न देना होगा। दूसरे विवाह की बारात में वकील साहब बहुत धूमधाम भी न करेंगे। इससे बारात का व्यय भी बहुत थोड़ा पड़ेगा।

अभी स्त्री की वर्षी तक तो रुकेंगे ही। पूरा साल बाकी है जो इस बीच नीलिमा का ब्याह राज से हो जाय तो लगे हाथों दोनों से उद्धार हो जायेंगे। भगवान ने इतने दिनों बाद उनके संकट काटने की कृपा दिखाई थी।

उन्होंने घर आकर अमरनाथ से कहा। अमरनाथ ने क्षण भर सोच कर उत्तर दिया—'वकील साहब पैंतालीस से कम न होंगे। तीन बच्चे भी हैं।'

लक्ष्मी यह सब पहले ही सोच चुकी है। उसे भी अधेड़ पुरुष को लड़की सौंपते सुख नहीं हो रहा था। किन्तु, वह स्त्री है उसके सम्मुख अभी तीन लड़के और दो लड़कियाँ और भी हैं। और सबसे बड़ी बात यह है कि इतनी बड़ी कुमारी कन्या का भार उन्हें क्रमशः असह्य हो उठा है। जात बिरादरी, टोला-पड़ोस में सिर उठाना कठिन है जो यह बात न होती तो उन्हें कमाती हुई लड़की घर में बुरी थोड़े ही लगती है। उसने अपने पति से नाक चढ़ा कर कहा—'गरिमा भी तो सत्ताइसवें में है। इतने दिन से तो दही-दही पुकार रहे हो मिला कोई जो बिना गठरी लिये ब्याह को तैयार हो?'

'लड़की क्या कहेगी? अब वह समझदार है, कमाती है। जो इस सम्बन्ध को पसन्द न करे तो?'

'हाँ क्यों पसन्द करेगी?' जब बाप को पसन्द नहीं तो बेटी को क्यों होगा। मेरी गरिमा लाख पढ़ी लिखी हो इतनी आजाद नहीं है कि मेरी कही बात टाल जाय।'

अमरनाथ भी इसे स्वीकार करते हैं। गरिमा ने उन्हें कभी ऐसी परिस्थिति में नहीं डाला था।

फिर भी उसका मन तो देख लो। उन्होंने उठते हुए कहा। लक्ष्मी ने उत्तर दिया—'तुम निश्चिंत रहो मैं सब देख लूँगी।'

लक्ष्मी को अपनी बात बेटी तक पहुँचाने में कई दिन लग गये। वे देख रही थीं कि इधर गरिमा बड़ी गुम-सुम रहती है। स्कूल से आते ही कमरे में जा लेटती है। खाती पीती भी ढंग से नहीं। हर की फंकी, सोडे की बोतल और अदरक काली-मिर्च की चाय, नीबू का अचार जैसी पाचक वस्तुएँ प्रतिदिन खिलाने पर भी उसकी भूख नहीं

खुलती। वे चाहती थीं कि बेटी जब हल्के मन से हो तो उसे सब समझा कर राजी कर ले।

आज गरिमा स्कूल से लौटी तो कुछ घबराई हुई सी थी। इधर दो चार दिनों से सिंह उसे दिखाई न पड़ा था। क्लास तो उन दोनों की दूर-दूर और पृथक समयों पर लगती ही थी। किन्तु वह प्रायः ही उसे बड़े फाटक के इधर उधर घूमता मिल जाता था। तभी नमस्ते और मुस्कराहटों के आदान प्रदान के बीच ही कब कहाँ मिल बैठ कर दो बातें हो सकेंगी इसका संकेत भी वह दे ही देता था। चार दिन से वह फाटक पर न मिला था। न घर ही आया था। आज इण्टरवेल में घूमती हुई गरिमा से उसने केवल इतना कहा था—'शान्ता के घर पर आना बहुत आवश्यक बात करनी है।' सिंह का चेहरा उतरा हुआ था। गरिमा के कुछ कहने से पहले ही वह अपनी कक्षा में चला गया।

सिंह शान्ता को अच्छी लड़की नहीं समझता था। गरिमा का मिलना भी उसे अधिक पसन्द नहीं। वह स्वयं भी बहुत कम उसके यहाँ जाता है। केवल तभी जब उसके नाटक में हीरोइन या नारी पात्र की कमी हो तब। आज उसके यहाँ मिलने की बात ने गरिमा को चिन्ता और आश्चर्य से भर दिया था। माँ सिंह से नीलिमा का विवाह करना चाहती हैं। यह बात भी अभी तक वह उसे नहीं बता पाई थी। न माँ से यही कहते बनता था कि सिंह को केवल सत्तर रुपये मिलते हैं। स्कूल से आते ही उसने मुँह हाथ धोया और कपड़े बदलने लगी।

'अम्मा! जरा जल्दी चाय बना देतीं। मुझे शान्ता ने बुलाया है।' गरिमा ने पुकारा—जाड़े के दिन हैं। पाँच बजते-बजते साँझ झुक आती है। अँधेरे उजाले लड़की का ऐसे वैसे घर जाना लक्ष्मी को पसन्द नहीं। उन्होंने कहा—'चाय तो तैयार ही है। पर गिरी! शान्ता के यहाँ अधिक न जाया कर। वैसे तो दुनिया उसे चाहे जो कहे हमारे लिये तो अच्छी ही है। फिर भी कुवाँरी लड़की को सब तरफ से बच

कर रहना होता है।'

गरिम माँ के ऐसे उपदेश प्रायः ही चुप होकर सुन लेती है। वह साड़ी का पल्लू ठीक करती रही। माँ कमरे में आ गई। गरिमा के मुख पर आज नित्य का पीलापन नहीं, आशंका की रक्तिमा छाई थी। माँ ने समझा बेटी आज स्वस्थ है। लाड़ से बोली—'जरा अच्छी रंगीन साड़ी पहन ले न! ये क्या सफेद पहन ली है।'

गरिमा ने मुस्करा कर कहा—'कुवाँरी बेटी को रंगीन धोती नहीं पहननी चाहिये।'

भगवान चाहेगा तो तेरी यह मुसीबत भी जल्दी दूर हो जायगी।' माँ ने उपयुक्त अवसर समझ कर कहा—'क्या बतायें इतने पाँव पीटे, देश विदेश की खाक छानी पर मन लायक तेरे जोग वर ही न जुटा। देख तो तेरी फिक्र में बाबू जी की क्या दशा हो गई है। मैं तो कहती हूँ बेटी उनकी दशा पर तरस खाके तू उनकी बात मान ही ले।'

गरिमा समझी नहीं। उसने पिता की बात कब टाली है। प्रश्न सूचक दृष्टि से माँ को ताका। लक्ष्मी बेटी की दृष्टि से जरा झेपी फिर एक साँस में कह गई—'तू तो मेरी सोना बेटी है। तूने तो कभी हमारी बात नीचे नहीं की। अब वह वकील हैं न! वही जिनका बड़ा सा मकान है कमल नगर में। अरे हाँ चन्द्रा के पिता जी। जिनके यहाँ उस दिन गये थे। हार कर तेरे बाबू जी ने उन्हीं को तेरे लिये बात दे दी है।'

गरिमा के सिर में भूकम्प आ गया। बात दे दी है? बिना उसे बताये ही? उसने हाथ से मेज थाम ली। लगभग चीख कर बोली—'मुझसे बिलकुल ही नहीं बताया?' लक्ष्मी डर गई। गरिमा का स्वर बड़ा अस्वाभाविक और फटा-फटा सा था।

'अभी तो केवल उनके यहाँ से सन्देशा आया है। पक्की बात तो तेरी इच्छा जान कर ही देंगे। तीन बच्चों की कह लो वरना और तो

सब ठीक ही है। अच्छा फिर रात को बात करूँगी। तू चाय पी कर जहाँ जा रही थी हो आ। मुनिया को ले जाय तो तैयार कर दूँ?' गरिमा ने रुआंसे स्वर में कहा, कर दो।'

★

शान्ता जान बूझ कर स्वयं नाश्ता बनाने रसोई में चली गई। यूँ दोनों के घर की बातें और अन्य विवाह प्रस्ताव उसी के सामने कहे सुने गये थे। किन्तु परस्पर वे क्या निश्चय करते हैं यह कदाचित् अकेले में ही ठीक रहे। यही विचार कर वह वहाँ से हट गई।

'अब?' सिंह ने चिन्ता से अपने बालों में उँगलियाँ फेरी—'क्या तुम वकील साहब वाले प्रस्ताव को मान लोगी?'

गरिमा ने अपने पपड़ाये होठों पर जीभ फेरी। फिर उसे ताक कर पीड़ित स्वर में बोली—'क्या तुम रामनगर वाली लड़की से विवाह कर लोगे?'

सिंह को न जाने क्यों मजाक सूझा—'भई यदि तुम उस खूसट को पसन्द कर लोगी तो राम नगर वाली तो अम्मा के कल्पनानुसार एक ओवरसियर की गोरी चिट्टी दसवीं फेल कुमारी है। कम से कम बुढ़िया तो नहीं ही है।'

गरिमा ने कठिनाई से आँसू रोके। धीरे से सिर डाल कर कहा—'पुरुष के लिये सब सम्भव है। पर मैं तो नारी हूँ। वैसे दुर्भाग्य या सौभाग्य से तुम मेरे जीवन में न आये होते तो मैं, माँ बाबू जी की चिन्ता दूर करने के लिये ही सही, यह प्रस्ताव मान लेती। पर अब मैं ऐसा नहीं कर सकती। तुम मेरा साथ दो या न दो मैं अन्य कहीं विवाह नहीं करूँगी।'

प्रेयसी का विश्वास भरा स्वर तो मृतक में प्राण भर देता है सिंह तो युवक था। उसने गरिमा का हाथ थाम लिया—'गिरी मैं भी कहीं

नहीं करूँगा। चाहे बाबू जी घर में रक्खें या नहीं। अजब होते हैं यह बुजुंग भी, उनके लिये सभी बातें उनकी इच्छा से ही होनी चाहिये। हानि लाभ बराबर रहे। इधर से चार-पाँच हजार मिले और उधर देकर कन्यादान से मुक्ति ले लें।'

गरिमा ने फीकी मुस्कान से कहा—'एकदम इकट्ठा न मिलने पर भी इतना रुपया मैं धीरे-धीरे नौकरी करके तुम्हारे बाबू जी को दे सकती हूँ।'

'नौकरी?' सिंह हँसा—'स्त्रियों का बाहर निकलना तो वे बिल्कुल ही पसन्द नहीं करते। सबसे बड़ी आपत्ति तो उन्हें इसी मास्टरनी होने की है।'

गरिमा चुप रही। थोड़ी देर बोली—'मेरे बाबू जी इतने कड़े नहीं हैं। उन्हें लज्जा त्याग कर सब समझा दूँगी तो वे मान जायेंगे। मुझे पूरा विश्वास है। उन्हें तो विवाह करना ही है। परन्तु यह तो वे अवश्य चाहेंगे कि तुम्हारे बाबू जी चार-पाँच हजार के लिये मुख न फैलायें। थोड़े से बराती लाकर फेरे डाल लें। जो चूनी भूसी घर में है उससे स्वागत कर देंगे।'

'उहुँक!' सिंह ने सिर हिलाया—'मास्टरनी लड़की को स्वीकार करने के लिये बाबू जी इससे भी बड़ी घूस चाहेंगे। उनका दृष्टिकोण तो यह है कि उनकी लड़की ने मेरा लड़का फँसाया है तो वे हर्जाने में इससे भी अधिक दें। चार हजार उन्हें मिल ही रहा है।'

'तब?' गरिमा ने प्रश्न किया—'जल्दी कुछ तय करो। देखो अंधेरा बढ़ता आ रहा है। अम्मा का भेजा पहरेदार लिवाने आता ही होगा।'

'बाबू से लड़ कर, उन्हें विवाह करने के लिये राजी करना मेरे लिये तो कठिन है।' सिंह ने कहा—'मेरी समझ में तो एक उपाय आता है।' वह क्षण भर रुका फिर उँगलियाँ चटका कर बोला—'हम लोग चुपचाप विवाह कर लें।'

'चुपचाप ?' गरिमा चौंकी।

'और क्या ढोल बजा कर ? हम देहली जाकर सिविल मैरिज कर लें। फिर जो होगा देखा जायगा।'

गरिमा जल्दी में कुछ कह नहीं पाई। वह सोच रही थी कि लड़के लड़की उपयुक्त परिस्थित न होने से कुवांरे बने रहें परन्तु प्रेम विवाह न करे। दान दहेज, घर प्रतिष्ठा, नातेदारी सभी चूल कांटे जब तक बड़ों की इच्छानुसार फिट न हो और वे स्वयं ही उसके बैठाने वाले न हों। कभी भी वे प्रसन्नता से अपनी सम्मति न देंगे।

'क्या राय है ?' सिंह ने फिर कहा—'बाबू जी के सम्मुख मोरचा लेना मेरे वश में नहीं है। विवाह के बाद तो जो होगी देखी जायगी। मेरी किस्मत भी कैसी है। सोचा था—' फिर वाक्य अधूरा छोड़ उसने द्वार की ओर देख बात बदली। 'लीजिये शान्ता जी हो गया फैसला।'

'हो गया ?' शान्ता ने नाश्ते की प्लेटें लेकर घुसते हुए कहा—'क्या बात है ? तय रहा।'

'सिविल मैरिज।' सिंह ने उठते हुए कहा—'अब अपनी सखी की बात तुम जानो। चलूँ कल से ट्यूशन पर नहीं गया हूँ।'

तो चाय नाश्ता कर लें। शान्ता ने जल्दी-जल्दी मेजपोश ठीक किया। गरिमा ने सिर नहीं उठाया। जैसे-तैसे चाय पी और फिर धीमे से बोली—'मैं भी जरा और विचार कर लूँ। तुम भी एक बार घर में चेष्टा कर देखो। जो सीधी तरह बात बन जाय तो क्यों यह बदनामी उठाई जाय।'

'अच्छा। पर मुझे अपने घर से आशा नहीं है।' सिंह ने उत्तर दिया। वह जानता था बाबूजी से अधिक बात बढ़ाव हुआ तो वे अमरनाथ के घर पहुँच कर उनका फजीता करेंगे। उसे पिता से बहुत भय लगता था।

'अगले रविवार को अन्तिम निर्णय हो जाय।' उसने कहा। फिर

दोनों को नमस्ते कर बाहर चला गया। उसका मस्तिष्क भी उलझनों से भरा था।

'तुमने अभी ही निर्णय क्यों न दिया।' शान्ता ने गरिमा को टोका—'तुम्हें तो आदमी पहचानना ही नहीं आता।'

'इसमें आदमी पहचानने की क्या बात है।' गरिमा बोली—'जब मैं इतना साहस रखती हूँ कि बाबूजी को राजी कर लूँ तो उन्हें भी तो अपने घर में चेष्टा करनी चाहिए। अपने लड़कों को खोना तो कोई भी नहीं चाहता।'

'अरे सो ठीक है। पर मैंने तुझे बताया न कि सिंह में इतना साहस नहीं है कि पिता के विरुद्ध भूख हड़ताल कर दे। वह जो कुछ कर सकता है उनकी आँख ओट ही कर सकता है। तू इसे ही गनीमत समझ कि उसने सिविल मैरिज का प्रस्ताव रक्खा। मुझे तो यही भय था कि कहीं बाप की धमकियों और माँ के आँसुओं से डर न जाय।

'वे ऐसे नहीं हैं।' गरिमा ने प्रतिवाद किया।

शान्ता हँस पड़ी।

६

माता पिता को लड़के के चोरी करके जेल चले जाने के समाचार से भी इतनी ग्लानि और पीड़ा नहीं होती जितनी यह जान कर होती है कि उनकी लड़की किसी से प्रेम करने लगी। अमरनाथ और लक्ष्मी भी यह सुन कर आकाश से गिर पड़े। अमरनाथ के मुख से तो बहुत देर

तक शब्द ही न निकले। पर लक्ष्मी ने रो कर, लड़की को कोस कर, अपना आक्रोश निकाला। गरिमा की सम्वाद वाहिका शान्ता ही बनी थी। लक्ष्मी ने क्रोध और क्षोभ से उसे ही ताक कर कहना प्रारम्भ किया—'भगवान सात दुश्मनों को भी लड़के न दे। हाय मेरे अपने पेट की बेटी ने मुझे छल लिया। मेरी आँखों के सामने राज आता जाता था और मुझे पता न चला। तभी जब मैंने नीलू के लिये बात की थी तो उसका मुँह फक हो गया था। इसके भाग्य में ही दुख भोगना लिखा है। नहीं तो कमलानगर जैसे बड़े घर को छोड़ उस अपने से कम पढ़े, नाच गाने के मास्टर से आँखें लगा बैठती?

शान्ता मीठे वचन बोलनेवाली मौसी का इतना धारा प्रवाह भाषण सुन कर आश्चर्य में रह गई। धीरे से उन्हे शान्त करने को बोली—'मौसी जरा ठंढे मन से सोचो यदि नीलू को ब्याह कर राज को दामाद बना सकती थी तो गरिमा के लिये ही कौन बुरा रहेगा। फिर जब उसमें तुम्हारी बेटी की प्रसन्नता भी जुड़ी हो।'

'हाँ हाँ!' लक्ष्मी भभक उठी—'तुम यह न कहोगी तो कौन कहेगा। गरिमा तो मेरी सदा की भोली थी उसके पेट में तो पाप नहीं था। पर जैसी संगत वैसा असर। न ऐसों-वैसों के साथ रहती न यह ढंग सीखती। हम क्या अपनी लड़की का बुरा चाहते हैं। इतना पढ़ा के क्या ऐसे-वैसे को दे दें।'

अमरनाथ ने टोका—'अब चुप भी करो। रोने से मुसीबत टल थोड़े ही जायगी। शान्ता बेटी, तुम, जाओ। हमने सब सुन लिया। गरिमा से कहना हम सब सोच समझ कर उत्तर देंगे।'

शान्ता चली गई। उसके स्कूल को देर हो रही थी।

दिन भर पति पत्नी ने भोजन नहीं किया। परन्तु अमरनाथ काफी समझदार आदमी हैं। सिंह का बी० ए० फेल होना उन्हें अवश्य खटका किन्तु वकील साहब के सफेद बालों वाले सिर की अपेक्षा सिंह के काले घुंघराले केशोंवाला मस्तक उन्हें अधिक सान्तवनाप्रद लगा।

उन्होंने पत्नी को समझाया—'गिरी की माँ, अब समय बदल गया। भगवान को धन्यवाद दो कि लड़का कायस्थ ही है जो कहीं गैर जात होता तो कहीं डूब मरने को जगह न मिलती। ईश्वर का नाम लेकर ब्याह को तैयार हो जाओ।'

लक्ष्मी ने पति के बुढ़ापे पर तरस खाया—'तुम तो सठिया गये हो। राज के माँ बाप से पूछा है ? मैंने सुना है उसका बाप महा कंटक है ? बड़ा मुँह फाड़ता है। तभी तो मै नीलू के लिये चुप लगा गई थी।'

'ऐसी शादियों में दहेज नहीं दिया जाता। अमरनाथ ने विश्वास दिलाया—'हम तो राज से कह देंगे खाली लड़की है। उसे गरज होगी तो आप अपने घरवालों को राजी करेगा।'

यथा समय गरिमा को सब समाचार मिल गये। यद्यपि पिता ने कोई कड़ी बात न कही थी किन्तु माँ उससे बड़ी खिंची-खिंची रहती थीं। स्वयं प्रेम कर लेने वाली लड़की को देख कर ही उनके भवों में बल पड़ जाते थे। वह अब गरिमा से आवश्यक बातों के अतिरिक्त बात न करतीं। अमरनाथ ने बेटी से यह अवश्य बता दिया था कि सिंह के पिता बिना दहेज लिये बारात लाने को सहमत हों तो वे तैयार हैं अन्यथा वे विवाह न करेंगे।'

उधर सिंह ने उसे बताया, उसके पिता बिल्कुल राजी नहीं हैं। असल बात तो यह थी कि सिंह का उनके दोबारा अनुरोध करने का साहस ही न हुआ था। और तब बात घूम फिर कर सिविल मैरिज पर आन टिकी। योजना बनाई गई। देहली में नुमाइशें होती ही रहती हैं। वहाँ बड़ी भारी कृषि प्रदर्शनी लगी थी। स्कूल की कई साथी अध्यापिकाओं ने आकर लक्ष्मी से अनुरोध किया—'हम सब मिल कर सप्ताह भर के लिये देहली जा रही हैं गरिमा को भी जाने दें। रेलवे ने आजकल आधी दर पर वापसी टिकट चलाये हैं। कुल पच्चीस तीस में सब काम बन जायगा।'

लक्ष्मी ने मुँह फुला कर कहा—'उसके बाबू जी से पूछो। मैं कौन होती हूँ भेजने वाली ?'

बेटी के गिरते स्वास्थ्य और सूखते चेहरे को लक्ष्य करके अमरनाथ ने स्वीकृति दे दी।

रविवार को गरिमा लड़कियों के साथ देहली चली गई। आठवें दिन लौटी तो तांगे से उतर कर सीधी माँ के पास पहुँची—शान्ता गरिमा की इच्छा न होने पर भी उसके साथ थी।

रसोई में तरकारी काटती माँ को जब गरिमा ने झुक कर प्रणाम किया तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

'पगली यह क्या करती है ?' कहते हुए उन्होंने उसका माथा ऊँचा किया तो उसका कलेजा धक से हो गया। गरिमा की माँग में सिन्दूर लगा था। माथे पर नन्हीं सी बिन्दी थी और हाथों में नई लाल हरी चूड़ियाँ। पैरों में बिछुवे न होने पर भी उन्हें कँपा देने को इतना काफी था।

'गिरी !' वे चिल्ला पड़ीं—'मुँह झौंसी ये क्या किया ?' शान्ता ने पीछे से कहा—'मौसी गालियाँ पीछे दे लेना पहले उसे अखंड सौभाग्यवती होने का आशीष तो दे दो।'

लक्ष्मी वेग से उठ कर रसोई छोड़ कमरे में भागी—'सुनते हो जी ? अजी ओ ! कहाँ हो। तुम्हारी गुणधरी तो ब्याह कराके आ गई। अब कैसे दुनिया में मुँह दिखाओगे ?'

गरिमा रसोई में सिर झुकाये बैठी थी। शान्ता पास खड़ी और सारा घर उसके चारों ओर जमा था। मानों चिड़िया घर में कोई विचित्र पशु देख रहे हों।

★

सिंह सिर झुकाये खड़ा था। खाट से लगे बाबा उत्तेजना के कारण बात न कर पाकर केवल खांसे जा रहे थे। माँ और भाभी किवाड़ों की

ओट थीं और पिता अनर्गल रूप से चिल्ला रहे थे। 'कमीने, नालायक, निकम्मे! मैं तो जानता था कि तू मेरे खानदान का कलंक पैदा हुआ है। न जाने तू मेरा है भी या नहीं। अरे कमबख्त जब उस रंडी से शादी कर ही ली थी, तो उसे उसके बाप के यहाँ भेज कर खुद यहाँ क्यों चला आया? दोनों वहीं दिल्ली में बस जाते। निकल जा मेरे घर से...मैं समझ लूँगा तू पैदा ही नहीं हुआ था।'

उत्तेजना से उनकी टाँगें काँप रही थीं। आगे के टूटे हुए दाँतों से थूक के छींटे उड़ रहे थे। सिंह थोड़ी देर और सुनता रहा। फिर धीरे से उठ कर भीतर चला।

'कहाँ चले साहबजादे।' पिता चिल्लाये—'कोई जरूरत नहीं मेरे घर में घुसने की। मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहता।' सिंह बोला नहीं। आँसू भरे नेत्रों से अपने कमरे में चला गया। खूँटी पर पड़े अपने पैन्टों, कमीजों को समेट कर वह सूटकेस में भरने लगा।

माँ दौड़ती हुई अन्दर गई—'ये क्या कर रहा है?' रात भर की यात्रा से थके और अपमान से क्लान्त बेटे का सूखा मुख देख उनका हृदय फटा जा रहा था—'चल हाथ मुँह धोकर चाय पी।'

'नहीं!' सिंह ने थूक निगल कर कहा—'मैं जा रहा हूँ।'

'कहाँ?'

'जहाँ सींग समायेगा चला जाऊँगा।' उसने हजामत का बक्स व शीशा कन्घा सूटकेस में ठूँसते हुए उत्तर दिया—'कहीं जगह न मिलेगी तो पेड़ की छाँह तो कहीं नहीं गई।' उसने सूटकेस उठा लिया।

माँ ने लपक कर उसे पकड़ते हुए कहा—'तू कैसा पगला है। कहीं बाप की बातों का बुरा मानते हैं। जाकर पाँव पकड़ ले। एक तो इतना बड़ा काम कर बैठा। खानदान के मुख पर स्याही पोत दी। अब घर छोड़ कर भागा जा रहा है। जाकर कह कि गलती हो गई।'

सिंह ने माँ की उँगलियों से कमीज निकालते हुए कहा—'नहीं

अम्मा। यह गलती तो अब जीवन भर मेरे साथ रहेगी। और बाबू जी उसे इस घर में आने न देंगे। तब पाँव पकड़ने से ही क्या होगा?'

उसने माँ के पाँव छुए और फुरती से पग बढ़ाता आँगन में आ गया। दम भर में घर मे हल्ला सा मच गया। भाभी, भतीजे, भतीजी, बहनें सभी सिंह से चिपट गये।

उसकी माँ दौड़ती हुई बाहर बैठक मे गई। बूढ़े ससुर के अदब से घूँघट खींच आँसू भरे गले से फुसफुसाई।

'अजी! वह घर छोड़ कर जा रहा है। सचमुच जा रहा है? हाय-हाय, उसका मुँह तो देखो जैसे बरसो का रोगी हो। हाय मेरा बच्चा!' वे फफक कर रो पड़ी।

राज के बाबा भी खाट से उठ बैठे। उन्हे फिर खाँसी का दौरा पड़ गया। बूढ़े पिता की पीठ सहलाते हुए राज के पिता गरजे।

'उस नालायक से कह दो। बाहर कदम निकला तो पाँव तोड़ दूँगा! उसे खानदान की नाक की फिक्र नहीं, पर मुझे तो है। उस मास्टरनी के बाप से कहला दो कि कल से लड़की स्कूल मे पढ़ाने नहीं जायगी। और सिविल फिबिल मैरिज का कहीं नाम भी न लें। इसी फागुन में उन्हे शादी कर देनी होगी।'

सिंह ने सूटकेस कमरे में रख दिया और किवाड़े बन्द करके लेट गया।

पिता जी अब भी बरस रहे थे—'हरामजादे! लड़कियों को पढ़ा कर नौकरी कराते हैं। लड़के फँसवाते हैं! जिससे दहेज न देना पड़े। शादी में खर्च न करना पड़े। पर किसी को क्या दोष देना! जब अपना ही पैसा खोटा है। अजी सुनती हो? वह अगर नकद नहीं देंगे, तो मैं भी एक छल्ला नहीं चढ़ाऊँगा।'

१०

गरिमा आज तीसरे पहर ब्याह कर ससुराल आई थी। अर्थात् सिंह के पिता यथावत् बारात ले जाकर, पंडितों के मन्त्रों द्वारा (उस सिविल मैरिज को पक्का करने के लिये) विशुद्ध सनातनी प्रथा के अनुसार भाँवरें डलवा कर उसे लाये थे। रस्में सभी हुईं। अमरनाथ को अपनी इज्जत बचाने के लिये एक हजार नकद भी देना पड़ा। इससे अधिक देने की हैसियत में वे थे भी नहीं। फिर वे ऋण लाद कर अधिक दे भी क्यों? उनकी बदनामी तो जो होनी थी हो ही गई थी। कितनी ही बात छिपाई गई। पर हींग की गन्ध की भांति सारे शहर में यह बात फैल ही गई थी कि लड़की लड़के के साथ देहली भाग गई थी। इसी से झटपट विवाह कर दिया। सिंह के पिता श्री मक्खन लाल जी लग्न में कुल एक हजार देख कर क्षुब्ध हो गये। साथ का सामान भी बिलकुल हल्का था। पर वे भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेले थे। न तो उन्होंने गरिमा के लिये एक भी गहना बनवाया, न बढ़िया साड़ियाँ ही खरीदीं। गहनों के लिये तो उनके यहाँ सीधा बहाना था। हमारे कुल में विवाह पर जेवर चढ़ाने की रीति नहीं है! गौने पर देते हैं। साथ ही शहर की बारात होने के कारण बरातियों के लिये रेल किराया खर्चने की झंझट नहीं थी। इसलिये वे अपने नातेदारों और उनके भी मित्रों को बारात में चलने का निमन्त्रण देना नहीं भूले। यद्यपि अमरनाथ ने किसी के द्वारा कहला दिया था कि पचास साठ से अधिक बारात न लावें। स्वागत में त्रुटि रह जाने पर दोनों ओर की हँसी होती है। परन्तु मक्खन लाल जी इस हँसी से डरने वाले प्राणी नहीं थे। जहाँ इतनी हँसी उड़ी है कि मक्खनलाल बड़े खक्का-शाह बनते थे लड़के ने सब हेकड़ी झाड़ दी? अपनी पसन्द की जगह ही विवाह कराया; वहाँ इतनी और भी सही। वे लगभग सवा दो सौ

आदमी ले गये। बारात के ताँगों, रिक्शों और मँगनी की मोटरों की गिनती देख कर ही अमरनाथ के होश उड़ गये। परन्तु इस समय तो साँप छछून्दर वाली गति थी, चुप रहना पड़ा। जैसे तैसे सब के नाश्ते और खाने का प्रबन्ध भी किया ही।

घरातियों को दावत की रात दो-दो टुकड़े बरफी खाकर ही सन्तोष करना पड़ा। उन्होंने फी बराती एक-एक रुपया और रूमाल देने की सोची थी। परन्तु उनके कहला देने पर भी समधी इतने अधिक आदमी ले आये। इससे चिढ़कर उन्होंने बरातियों के इस सम्मान को गोल ही कर दिया। मक्खन लाल ने समधी के इस नंगेपन पर जनवासे मे बैठ कर बहुत से आशीर्वचन कहे और यथा समय वह बातें अमरनाथ जी तक भी पहुँच गई। विवाह शादियों में ऐसी अनेक बातें और उलाहने बेटीवाले को सहने पड़ते हैं। बेटी का पिता यही सोच कर सब सह लेता है कि लड़की के विवाह में तो कुछ न कुछ सहना पड़ता ही है। लक्ष्मी और अमरनाथ को प्रतिमा के विवाह पर इतना दान दहेज देने पर भी नंगे-भूखे होने की उपाधि मिली थी। परन्तु अब बात दूसरी थी। समधी के इस व्यवहार को उन्होंने यह कह कर ग्रहण किया कि आदमी अपनी ही सन्तान से हारता है। न लड़की को इतना पढ़ाते (जैसे उन्होंने बिना विवशता के प्रसन्नता पूर्वक पढ़ाया हो।) न वह अपने मन की करती। न हमें ऐसे बुरे समधी से वास्ता पड़ता। गरिमा से लक्ष्मी कुछ रुष्ट ही रहीं। अचेतन में कदाचित् यह भावना भी इसका कारण था कि लड़की पराई हो गई और अब पहली तारीख को अस्सी रुपयों की कमी पड़ेगी।

गरिमा की साथी कुमारी अध्यापिकाओं ने उसे अपनी सामर्थ्य से बढ़कर ही उपहार दिये। शान्ता ने तो आधी तनख्वाह खर्च करके मैसूर सिल्क की साड़ी दी। गरिमा दीदी के विवाह का चाव तो था ही। साथ ही वह अब स्कूल की नौकरी छोड़ कर घर की बहू बन गई है। इसकी प्रसन्नता भी थी।

ससुराल मे छोटी ननदों और नन्हें बालकों के अतिरिक्त गरिमा का स्वागत किसी ने उत्साह से नहीं किया।

गृह प्रवेश के पश्चात् देवी इत्यादि की पूजा हुई। घूँघट में लिपटी बहू के हाथ पाँवो को झाँक कर ही सास समझ गई थी कि मायके से भी बहू को गहने नहीं मिले हैं। बस पाँवों में हल्की सी चाँदी की पायलें थीं और उँगली में अँगूठी। सास का अप्रसन्न मन और भी खीज गया। बेटी की सारी कमाई तो माँ-बाप ने रक्खी और उसे नंगी-बूची ही बिदा कर दिया। इस समय उन्हें यह हिसाब बिलकुल याद न था कि उनके घर पति की पेन्शन और बड़े बेटे की तगड़ी कमाई आती है। राज भी सत्तर अस्सी रुपया दे ही रहा है। फिर भी एक शीला के लिये चार पाँच हजार जुटाने कठिन हो रहे हैं। नंगे बाप की बेटी को वे भी कीमती मुँह दिखाई क्यों दे? बड़ी बहू को उन्होंने कानों के चार तोले के झुमके दिये थे। वह नकद पाँच हज़ार लाई थी। छोटी बहू को भी तीन तोले का लाकेट दिया था। वह साढ़े चार हजार लाई थी। एक हजार वाली की मुँह दिखाई भी वे वैसी ही करेंगी। उन्होंने तोले भर की पतली गले की चेन गरिमा के गले में डाल कर रसम पूरी कर दी।

आँगन में बैठे राज को सुनाते हुए उन्होंने कहा—'इतनी जल्दी-जल्दी में कुछ भी तो हो नहीं पाया। क्या करूँ, अब जो चेन अपने गले में है उसी से मुँह देख लिया। फिर बनवा दूँगी।'

गरिमा सिर झुकाये रही। उसने कनखियों से पिन्टू की माँ अर्थात् अपनी जिठानी को ताका। छः महीने पहले पिन्टू के मकतब पर उसने उन्हें देखा था। अब वे इसी बीच में पहले से सवाई हो गयी थीं। उनकी सोने की चूड़ियाँ कलाई में भीतर तक धँसी हुई थीं। पैंतीस छत्तीस वर्ष की उसकी यह मोटी जिठानी अपने पूरे शृङ्गार में थीं। पाँवों में नये-नये तीन बिछुवे, महावर, और नई चाल की पायलों के ऊपर अनोखे, रमझोले, इमरती चाल के लच्छे और छड़े भी एक दूसरे पर लदे हुए

थे। उनकी मोटी गोरी पिंडलियों पर उन सब चाँदी के गहनों की रगड़ से हल्की काली लकीरें पड़ी हुई थीं। नई चाल की बढ़िया बनारसी साड़ी (जिसे हवाई साड़ी कहते हैं और जिसका कपड़ा प्याज के बारीक छिलके सा पारदर्शी होता है) के भीतर से मखमली ब्लाउज के ऊपर पहने हुए गुलूबन्द, लाकेट, रामनामी और उन सब पर अपने नई खरीदारी की चमक से रौब झाड़ता हुआ 'डायमन्ड कट' का नये फैशन का हार चमक रहा था। हाथ भी उसी परिमाण में मेंहदी से पुते और कड़े, कंगन, चूड़ियों और दस्तबन्द से गुंथे पड़े थे। यही नहीं, फैशन रहने पर भी वे दोनों हाथों में कुहनियों के ऊपर जड़ाऊ बाजूबन्द भी पहने थीं। दो बीड़े पान से उनके फूले हुए गाल और भी रसगुल्ले से लग रहे थे। गरिमा को हँसी अपने होठों में ही पीनी पड़ी। जिठानी इतने गोरे रंग पर भी पाउडर और रूज लगाये थीं। यही नहीं पान से लाल होठों पर गहरी लिपिस्टक भी बहार दिखा रही थी। लगता था जैसे भोगती हुई जवानी के जाने से पहले-पहल वे श्रृङ्गार करने के नये पुराने सभी हथियारों से उसे बन्दी बनाने को मुस्तैद हैं। पिन्टू की माँ अपनी हस्तिनी चाल से चल कर नई ब्याहती के समीप आईं नंगी-बूची बहू को तरस और उपेक्षा की मिली जुली दृष्टि से ताका। फिर घूँघट उटाकर अपनी मोटी उँगली से लाल नग की बड़ी सी अँगूठी निकाल गरिमा को पहना दी। अँगूठी ढीली होने से खिसक कर बीच की हड्डी पर आकर रुक गई।

जिठानी ने विनोद में ताना दिया—'बहू रानी! क्या अम्मा गिन कर रोटियाँ खिलाती थीं। कहीं देह पर माँस ही नहीं है।'

गरिमा ने और भी सिर झुका लिया। जी में आया कि उत्तर में कह दे—'जीजी, सब तो आपके हिस्से में आ गया मुझे कहाँ से मिले?'

परन्तु वह तो नई बहू है। उत्तर कैसे दे सकती है? फिर गरिमा मन में चाहे कुछ भी सोच ले, मुख पर किसी को कड़ी बात नहीं कहती।

देवर को लक्ष्य कर प्रौढ़ा भाभी ने रसिकता दिखाई—'लल्ला बाबू!

अब जल्दी-जल्दी हाथ फेर कर बहूरानी को मोटा कर देना, भला।'

फिर उठ कर कर सिंह के पास आ उसे खींच दिया—'हाथ तो फेर चुके होगे।'

अशिक्षिता भाभी के यह फूहड़ विनोद सिंह को अच्छे नहीं लगे। पर वह उनका स्वभाव जानता था इसलिये चुप रहा।

भाभी ने फिर हँसी की—'अरे अब तो ब्याहता हो गई। अब क्या है? भाभियों से भी चोरी रखते हो?'

घर-बाहर की स्त्रियों से भरे आँगन में भाभी की इस छेड़ से उसमें संकोच भर गई वह उठ कर भाग गया। बड़ी बहू खिलखिला कर हँस पड़ीं। शादी, ब्याह, मूँडन, छेदन के उत्सवों में जब वह भीड़ में होती है, तो उनका गर्व प्रसन्नता के रूप मे बिखरता है। आखिर छः सौ रुपये कमाने वाले पति की दुलारी बहू है। इतना गहना कपड़ा है। घर बाहर की स्त्रियों में इतना गहना बहुत कम बहुओं के पास है। घर का ताला-कुन्जी भले ही सास सम्हालती है किन्तु पति की कमाई का एक बड़ा भाग उनके गहनों पर खर्च होता है। उनकी लड़कियाँ-लड़के घर भर में सबसे अच्छा खाते-पहनते हैं। बड़ी बहू देवर से मोरचा जीत, मंगल गानेवाली नायनों के पास जा बैठी।

नाते-रिश्तेवालियों ने भी सास और जिठानी की मुँह दिखाई देख कर दो चार या पाँच रुपयों से ही मुँह देखा। जानेवालियाँ सूरज ढलता देख जल्दी-जल्दी अपने-अपने घरों को चली गयीं। जो रहने वाली थीं वे अपने-अपने लड़के बच्चों के लिये चाय नाश्ते की तलाश में बड़े कमरे में जमा होने लगीं, क्योंकि वहीं पर बड़ी लोहे की अँगीठी पर बड़ी पतीली में चाय का पानी उबल रहा था।

पिन्टू अपनी नई चाची की चादर पकड़े अपने साथी को बता रहा था—'देख बे श्याम ये मेरी चाची हैं। हैं न? पर यह मेरी मौसी भी हैं। मेरे मकतब पर यह मौसी आई थीं। अब चाची बन गयीं।' फिर उसने बड़े गर्व से अपने साथी सप्तवर्षीय श्यामू को देखा। मानो कह

रहा हो—'जाओ बच्चू ! तुम क्या खाकर मेरी बराबरी करोगे। तुम्हारी चाची तो कोरी चाची ही है। वह तुम्हारी मौसी कभी नहीं थी।'

स्त्रियाँ अपने-अपने नाश्ते चाय में जुटी थीं। सास और जिठानी मिठाइयों को दोनों में सजा रही थी। लड़कियाँ और दो एक छोटी बहुयें मिठाई के दोने सब को बाँट रही थीं।

गरिमा एक करवट बैठे-बैठे थक गई थी। अपने पास जमा भीड़ में कुछ कमी देख उसने आसन बदला। तीन घंटों से सिर झुकाये-झुकाये गरदन दुख गई थी। अवसर पाकर घूँघट को तनिक उठा कर सिर भी ऊँचा किया। उसी समय किसी ने आकर उसका घूँघट उठा कर मुँह देखा। यह सिंह के छोटे भाई की बहू ललिता थी। पहले विवाह हो जाने पर भी वह गरिमा की देवरानी थी। आयु में भी दो साल छोटी ही होगी। वह आमंत्रितों के सेवा सत्कार में फिरकी सी घूम रही थी। घर में सबसे छोटी है, इससे सभी को उससे काम कराने का अधिकार प्राप्त है। इस समय किसी प्रकार छुट्टी पाकर वह भी जिठानी को देखने आ पहुँची।

गरिमा ने देखा कि छोटी बहू मामूली छींट की साड़ी पहने थी। जेवर भी वही दो चार हल्के-हल्के ही थे। हाथों में कड़े गले में हल्का सा हार और कानों में झुमकियाँ। मकतब पर भी गरिमा ने इसी बहू को ही घर भर में दौड़-दौड़ कर काम करते देखा था।

'जीजी !' छोटी बहू ने उसके पल्ले में बन्द मुट्ठी से कुछ डालते हुए फुसफुसाया—'छोटी बहन की यह तुच्छ भेंट स्वीकार करो।'

गरिमा ने झुक कर देखा। चाँदी के कुछ रुपये और मैली सी चाँदी की छोटी सी नक्काशीदार डिबिया थी।'

गरिमा ने उसे हाथ पकड़ कर बैठा लिया। बहू दौड़ धूप से थकी हुई थी। बैठ कर लम्बी-लम्बी साँस लेने लगी। गरिमा ने वह डिबिया खोली। उसमें सिन्दूर की पुड़िया और इत्र से भीगी रुई रक्खी थी। सुगन्ध से गरिमा का मन प्रफुल्लित हो उठा। उसने दोनों हाथों से

छोटी बहू को पकड़ लिया।

नई जिठानी के गरम कोमल स्पर्श का अनुभव कर छोटी बहू ने धीरे से कहा—'जीजी! शरम तो बहुत आई। इनसे कहा भी था। पर पैसे न होने से इन्होंने कुछ लाकर ही न दिया, लाचार...।'

गरिमा ने बहू के मुख पर हाथ रख कर कहा—'यह क्या कम है, बहिन? तुमने ही तो इतनी स्त्रियों में सच्चा आशीर्वाद दिया है। पर तुम तो मुझसे छोटी हो। उम्र में भी, पर यह रुपये किस नाते दे रही हो? उसने मुट्ठी में रुपये भर कर लौटाये।'

छोटी बहू ने उसका हाथ रोकते हुए कहा—'कुछ भी हो, आज तो आप नई बहू ही हैं। क्या मैं मुँह दिखाने करने का अधिकार भी नहीं रखती?'

गरिमा मुस्कराई, धीमे से कहा—'मुँह तो तुम मेरा पहले भी देख चुकी थीं।' बहू भी हँसी। गरिमा को लगा इस अनजान से घर में कम से कम एक साथी तो मिला।

दूसरे कमरे से सास की पुकार आई—'अरे छोटी दुलहिन! कहाँ हो? जाने किस कोने में बैठ जाती हो। पान-वान नहीं दोगी?'

छोटी बहू चौंक कर उठने लगी। गरिमा ने उसका हाथ दबा कर धीरे से कहा—'पान लगा कर फिर आना।'

'देखो!' बहू भागती हुई गई।

बड़ी तश्तरी में मिठाई नमकीन खाते हुए बड़ी बहू ने सास से कहा—'अम्मा जी, नई दुलहिन को भी तो नाश्ता करा दो।'

फिर तीनों ननदों से कहा—'ए बीबी रानी, चलो नई भाभी के लिये थाल सजाओ। अम्मा सात सुहागिनों का मुँह जुटवा लेंगी न?'

सास ने धीरे से मुँह बिगाड़ा—'क्या होगा सात सुहागिनें जोड़कर? लड़कियों से कह दे खिला देंगी।'

जेठानी ने ऊपर से पुचारा फेरा—'हाय अम्मा ऐसा न करना।

बहू अपने घर जाकर कहेगी मुझे तो ढंग से खिलाया भी नहीं।' फिर अपनी भारी भरकम कमर पर हाथ रख उठते हुए बोली—'मुझसे तो मरा उठा भी नहीं जाता। जब से ये पिन्टू हुआ है कमर में ऐसी कम-जोरी हो गई है कुछ न पूछो।'

वर को गरीब एक चचिया सास ने सहानुभूति दिखाई—'ऊपर की देह का क्या करे। यह नित्य के जाये भला भीतर कुछ छोड़ते हैं। कमर का क्या दोष...इस पिन्टू पे दो तो तेरे कच्चे जा चुके हैं ! ले तू बैठी रह मैं ही जाकर नाश्ता कराये देती हूँ।' अन्य पाँच छः महि-लाओं को लेकर वे बहू के पास पहुँची। बाकायदा सब ने बहू के मुख में एक एक ग्रास मिठाई दी। फिर गरिमा से कहा—'अब खाओ।'

गरिमा को भूख लगी थी। कल रात फेरों के झंझट में और आज दिन भर बिदाई के तूफान में वह कुछ भी न खा पाई थी। खाया ही न गया था। बेशक विवाह उसकी इच्छा से हो रहा था। परन्तु वे क्षण और होते हैं जब युवक-युवतियाँ परस्पर प्रीति करके एक दूसरे के लिये संसार त्याग देने की शपथ खाते हैं। उन क्षणों में जगत के सारे नाते 'न कुछ' हो जाते हैं। पर अनेक संघर्षों के बीच से गुजर कर विवाह के बाद जब बिदा की बेला आई तो माँ और भाई बहनों को छोड़ने की याद करके दो दिन पहले से ही उसका खाना छूट गया था। छोटी ढाई वर्ष की बहन मुनिया को छोड़ कर आते समय तो उसके प्राण होठों पर आ गये थे। ससुराल के इन तीन-चार घंटों में इतनी रीति-रस्में और जबरदस्त मुँह दिखाई हुई थी कि अपने घर की याद ही न आ पाई थी और अब उसे भूख लग रही थी। परन्तु इतने उत्सुक नेत्रों के सम्मुख कैसे खाये ! नई बहू यदि संकोच छोड़ कर खाने लगे तो सब चर्चा करेंगे। गरिमा ने एक बरफी उठा कर शेष कुछ न खाने के लिये सिर हिला दिया। बड़ी बहू ने हँस कर चुटकी ली—'खा लो बहू रानी ! भूखी रही तो लल्ला बाबू से हार जाओगी।' उपस्थित महिलाओं में भुक्तभोगी बड़ी बहू के विनोद पर हँस पड़ीं। बालक और अनूढा किशो-रियाँ मुँह ताकने लगीं। गरिमा ने गरदन झुका ली। दूर से चाय की

प्याली उठाये छोटी बहू ने आकर कहा—'भाभी जी, आप तो केवल हँसी करती हैं। खिलाती तो है नहीं, लाइये मैं खिलाऊँ! आज पहले-पहल दिन वे अपने आप कैसे खायेंगी।' उसने एक इमरती तोड़ कर घूँघट में हाथ डाल गरिमा के मुँह में ठूँस दी।

बड़ी को दूसरों की विशेष कर छोटी बहू की वाचालता तनिक भी नहीं भायी वे वहाँ से उठती हुई बोली—'खिलाती रहो बहूरानी। मुझे तो अभी सारा काम देखना है।' फिर स्वर नीचा करके बुदबुदाईं—"ये झूठ के चोंचले हमें नहीं आते हैं।'

रात के ग्यारह बज रहे थे। खाना पीना समाप्त हो गया था। पुरुष बाहर के कमरे मे फर्श पर बिस्तर-रजाइये डाल कर लुढ़क गये थे। स्त्रियाँ व बच्चे छोटी बहू के कमरे व दालान में अड्डा जमाये थे। बड़ी बहू अपने कमरे में पलंग पर लेटी छोटी लड़की को दूध पिला रही थी। साथ ही साथ कराहती भी जाती थी। बहुत बचने पर भी विवाह के घर में दौड़ धूप तो करनी ही पड़ी। सास शृङ्गार मेज के पास वाली चौकी पर बैठी थी और छोटी बहू दो दिन से जागरण वाले अपने नेत्रों को ठण्डे पानी के छींटों से चैतन्य करके किवाड़ों के पीछे छिपी खड़ी थी। सास कह रही थी—'दूध भात की रस्म भी जब आज हो ही गई तो सुहागरात भी आज ही कर दो और क्या। झंझट मिटे। वैसे तो क्या रक्खा है इन बातों में!'

बड़ी बहू ने नहले पर दहला लगाया—'अरे अम्मा, तुम्हारे आसरे क्या वे लोग बैठे हैं। अपनी सहेलियों के साथ दिल्ली गईं। वहीं अदालत में ब्याह हुआ तो क्या उसी दिन गाड़ी पर चढ़ कर थोड़े ही चले आये होंगे। क्या बाकी रहता है?' सास ने पान की पीक निगल कर उत्तर दिया—'वह तो है ही। पर जहाँ सारी रस्में करीं। इसे भी क्यों छोड़ें। छोटी दुलहिन! ओ छोटी दुलहिन?' उनका ख्याल था कि छोटी बहू गरिमा के पास है।

'जी अम्मा जी?' बहू ने किवाड़ से झाँका।

'तू यहाँ छिपी खड़ी थी।' सास का स्वर कड़ा हुआ।

'जी मै तो अभी आई हूँ।' बहू ने झूठ बोला।

संदेह की दृष्टि से ताक कर सास ने कहा—'ऊपर पलंग तो बिछा ही होगा। उस पर नई चादर वादर डाल दो। एक मेज पर थोड़ी सी मिठाई, दो गिलास दूध और पान के चार बीड़े रख दे।

बहू ने सिर हिला कर कहा—'वह तो मैंने पहले ही रख दिया है। पानी वानी सब रख आई हूँ।'

बड़ी बहू को छोटी के यह ढंग अच्छे नहीं लगे। सास को सुना कर कहा—'अम्मा तुम्हें चिन्ता करने की क्या जरूरत! ये पुरखिन आप ही सब कुछ कर देगी।'

सास थकी थी। आराम करना चाहती थी। बात समाप्त करने को कहा—'अच्छा तो है तुम देवरानी जिठानी मिल कर सब कर लो।' फिर कुछ याद करके पूछा—'फूल-हार तो मँगाये न होंगे। अब इतनी रात को कहाँ मिलेंगे।' उन्हें अपनी बहू के सुख का ध्यान न था। उनका राज गुलाब के फूलों पर प्राण देता है। कुछ भी हो आज उसकी इस घर में सुख सौभाग्य की पहली रात थी।

बड़ी बहू उपेक्षा से हँसी—'अम्मा हमें याद तो थी पर मैंने सोचा फूल-हार तो लल्ला ने दिल्ली में ही पहना दिये होंगे।'

ब्याह से पहले ही कुलच्छनी बहू ने उनके बेटे का मन मोह लिया इसे याद करके सास का मन भी कड़वा हो गया। चौकी से उठती हुई बोली—'न जाने काहे पर रीझ गया। छोटी दुलहिन फूल हार तो मिलने से रहे। वैसे तो यह बड़े असगुन की बात है। पर अब जो है उसी से काम चलाओ। भण्डार में मेवे के हार बने पड़े हैं उन्हीं में से एक बहू के गले में डाल कर ऊपर पहुँचा दे। मैं किसी बहाने से राज को भेज दूँगी।'

सास के साथ बाहर आने पर जिठानी के कमरे की दूरी अन्दाज

कर छोटी ने धीरे से कहा—'अम्मा फूल तो मैंने संध्या को ही मँगा लिये थे। मालिन से कह दिया था। सवा दो रुपयों में वह डलिया भर फूलों के गहने बना लाई।'

'सच!' सास के सिर से असगुन का बोझ उतर गया।

★

कहते हैं जवानी गधे पर भी आती है ब्याह की हल्दी चढ़ने से काली से काली लड़की पर भी रूप आ जाता है। सत्ताइस वर्ष तक शृङ्गार रहित रहती आई गरिमा भी आज सिर से पाँव तक फूलो के गहनों से लदी गमक रही थी, महक रही थी। छोटी बहू ने अपने सिर की कसम देकर उसे यह सब पहनाया था। गले में बाहें डाल कर समझाया था—'पहन लो जीजी! यह दिन फिर लौटकर नहीं आयेगा। जीवन भर तो इस घर में पिसना ही पड़ेगा। ये दो चार दिन तो मौज उड़ा लो। जेठ जी विचारे को कितनी तपस्या के बाद तो मिली हो। मैं तो कब से यह आस लगाये थी कि मेरी जीजी आवेगी, मैं उन्हे सजाऊँगी।' गरिमा को सब पहिनना पड़ा। उसे छोटी बहू घर में सब से भोली और निरीह प्रतीत हुई थी। बेचारी! छोटी-छोटी ननदें तक उस पर हुक्म चलाती थीं। इतनी बड़ी गृहस्थी मानों उसी के दुर्बल कन्धों पर भार दिये खड़ी थी।

छोटी बहू ने उसे गहने पहना कर बचे हुए फूल पलंग पर तकिये के पास रख दिये। फिर अपने सोये हुए शिशु को (जो पलंग पर सो रहा था) उठा कन्धे लगा कर बोली—'अब प्रतीक्षा करो। मैं तो चली।' गरिमा ने छोटी की साड़ी का छोर कस कर थाम लिया और कहा—'अब कैसे जाओगी?' 'जाने दो जीजी! देखो बारह बजने वाले हैं। मेरा तो थकान के मारे बुरा हाल है। जाकर लेटूँ, सबेरे मुँह अंधेरे ही तो उठना होगा और फिर छोटे जेठ जी मन में मुझे कोस रहे

होगे।' द्वार पर खटका सा हुआ। छोटी ने झटका देकर पल्ला छुड़ा लिया और बिना किसी ओर देखे एक साँस दौड़ती छत से भागती जीना उतर गई। द्वार पर राज खड़ा था। आज वह प्रेम विजयी सम्राट था बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि विवाह विजयी वीर था। आज समाज ने उसे उसकी गरिमा सौंप दी थी। भीतर आकर वह पलंग के पास खड़ा हो गया। गरिमा घूँघट नहीं किये थी। पहले अनेक बार सिंह के नेत्रों से नेत्र मिलाकर...हाथों में हाथ देकर बातें कर चुकी थी...किन्तु इस समय अलक्षित पीड़ा ने लाज से उसका सिर झुका दिया था।

सिंह ने धीरे-धीरे उसकी ठोढ़ी उठाई—'गिरी!' गिरी ने लाज से आँखे मूँद ली। व्यर्थ के इतने अधिक संघर्षों और आडम्बरों की सारी थकान मानों इसी समय उस पर उतर आई थी। सिंह को लगा गरिमा उससे अप्रसन्न है। वह इसी घर का लड़का है। गरिमा के स्वागत सत्कार में माँ, भाभी, भैया और बाबू जी ने जो रूखापन दिखाया था वह जब उसे ही खटक रहा था तो...उसने कोमलता से उसकी पीठ पर हाथ रक्खा—'गिरी रानी! हमसे नाराज हो क्या?' गरिमा ने पलकें उघार कर उसे ताका। उस चितवन में अजस्र प्रेम की त्रिवेणी लहरा रही थी—'राज! प्रियतम।' गिरी ने उसके वक्ष में मुख छिपा लिया। राज फूलों की महक से भर उठा।

११

चार महीने बीते। गरिमा नई बहू से मंझली दुलहिन बन गई। उसे देख कर यह कहना कठिन था कि यही लड़की है जिसके विवाह को कुल चार महीने बीते हैं। सास ने छोटी बहू से लेकर गृहस्थी का आधा भार उस पर डाल दिया था। सत्रह छोटे बड़े व्यक्तियों के बड़े

परिवार का एक समय का भोजन बनाना, नाश्ता तैयार करना तथा कपड़े सीना उसके जिम्मे लगा। गरिमा किसी धनी परिवार से नहीं आई थी। अपने घर भी यह सब काम करती थी। परन्तु माँ के घर पहले तो वह अपनी निरंतर पढ़ाई के कारण समय का अधिकांश भाग स्कूल कालेज में बिताती रही। और बाद में नौकरी कर लेने के कारण गृह कार्यों में वह माँ की सहायक के रूप में ही थी। यूँ तीज-त्योहार बीमारी आरामी में भले ही दो चार दस दिन सारा काम करती हो।

रसोई छुआने की रस्म सास ने गौने के तीसरे ही दिन पूरी कर दी थी। उस दिन गरिमा ने अपनी पाक कुशलता दिखाने के लिये बढ़िया खीर बनाया। खूब मोयन डाल कर खस्ता की कचौड़ियाँ बनाईं और भी कई बढ़िया पकवान बनाये। सब ने खाया। बड़ी ने आशीर्वाद स्वरूप कुछ रुपये भी दिये। सास ने खाते हुए कहा—'बहू रानी ! खाना तो अच्छा बनाती हो। बस, जरा गोश्त ठीक नहीं बना। कायस्थ की बिटिया होकर तुमने गोश्त बनाना नहीं सीखा ? कोफ़्ते तो बिलकुल ईंट हो गये हैं।'

बैसाख की गरमी में सबेरे से दोपहर बारह बजे तक अकेली रसोई घर में अनगिनती चीजें बनाने से थकी और चूल्हे की गर्मी से परेशान गरिमा का मन हो रहा था कि किसी प्रकार भोजन प्रकरण समाप्त हो तो वह गुसलखाने में जाकर नल के नीचे बैठ जाय। जिठानी ने रसोई घर में आ कर घी के बरतनों और चीनी मेवा इत्यादि का निरीक्षण किया। फिर सास को सुनाते हुए छोटी देवरानी से कहा—'छोटी तूने वह कहावत नहीं सुनी। 'साग संवारे घी तो नाम बहू का होय' पूरा डेढ़ सेर घी फुंक गया आज की रसोई में। राज लल्ला की सारी कमाई तो घी मेवा खरीदने में ही निकल जाया करेगी।' छोटी की मजाल नहीं है कि बड़ी जिठानी की बात का नकारात्मक उत्तर दे। उसने घूँघट के बीच से ही हुँकारी में सिर हिला दिया। गरिमा की पसीना से भरी

देह ऊपर से नीचे तक सिहर उठी। जी में आया कि जिठानी से पूछे—'पकवान घी में नहीं तो क्या पानी में बनते हैं?'

परन्तु जिठानी का रौब तो सास तक मानती हैं। तो गरिमा क्या उनके आगे बोल सकती है? वह सिर नीचा किये उठ कर ऊपर चली गई।

कुछ ही दिनों में गरिमा के सामने इस ऊपर से सम्मिलित परिवार की भीतरी पृथकतायें स्पष्ट हो गईं। ससुर की थोड़ी सी पेन्शन आती है। क्योंकि उन्होंने आधी पेन्शन पेशगी लेकर तथा दोनो पहली बहुओं के दहेज के रुपयों को मिला कर घर का मकान बनवा लिया था। छोटे देवर देव एल० एल० बी० में दूसरी बार फेल हुए हैं। एक आध ट्यूशन करके वे अपने सिगरेट पान का खर्च भर निकाल लेते हैं। राज घर में सत्तर रुपये दे देते हैं। घर की सबसे बड़ी कमाई के साधन उसके जेठ हैं जिन्हे छः सौ रुपये मिलते हैं। यूँ सब की कमाई सास के हाथ में ही आती है किन्तु घर में कमानेवाले की आय के हिसाब से ही उसके निजी परिवार के रहन-सहन का स्तर कायम है। बूढ़े दादा जो निरंतर खाट पर पड़े खाँसते हैं? उनको प्रायः आध पाव दूध भी मुश्किल से मिलता है। उनके बिछौने की दरी और चादर इतनी मैली रहती है मानो भड़भूँजे के घर के बिस्तर हों। वे रात को थोड़ी अफीम खाते हैं और प्रत्येक आठवें दसवें जब अफीम खतम हो जाती है तो उन्हें बारी-बारी से अपने बेटे और पोतों से कहना पड़ता है।

वैसे दादा जी का अदब सब करते हैं। कोई लड़का उनके सामने सिगरेट नहीं पीता। यह बात अलग है कि लड़के उनकी बाहर की कुठरिया में प्रायः तब ही पाँव रखते हैं जब वे अपने खटोले से आधे उठ कर उन्हें आते जाते देख पुकार उठते हैं। और तब प्रत्येक लड़का एक से दूसरे पर दोषारोपण करते हुए उन्हे सफाई दे देता है। 'मैंने समझा देव ले आया होगा?' या 'राज तो आपका सबसे दुलारा है

उससे एक रुपये की अफीम नहीं लाई जाती !' अथवा जेठ जी कभी बड़े मुरव्वी ढंग से कहते—'बाबाजी, आप नाहक अफीम खा-खाकर खून सुखाते हैं। इससे तो अच्छा है कि काडलिवर आयल पिया करें। वह फेफड़ों के लिये मुफीद है। मै कल दो बोतलें ले आऊँगा।' किन्तु रात में जिठानी न जाने क्या मंत्र फूँकती थी कि वे काडलिवर आयल की जगह आस्टर मिल्क और ग्लूकोज के डिब्बे खरीद लाते। काडलिवर आयल कल पर टल जाता। सास जी ससुर जी के बुढ़ापे का ध्यान स्वयं रखती थीं उनके लिये जाड़ों में गोंद पंजीरी बन कर अलग रखी रहती थी और गरमियों में बादाम। फिर यदि वे स्वयं कुछ खोयेंगी नहीं तो पति की सेवा कैसे करेंगी। इसमे पंजीरी और बादाम में उनका भी हिस्सा रहता था। रसोई सब की साथ बनती थी किन्तु तरकारियों और दाल में जितना घी जेठ-जिठानी और पिन्टू की कटोरियों में पड़ता उससे आधे में ही देव और राज तथा सास-ससुर को निबटाना पड़ता था। जेठ की तीनों लड़कियों और छोटी तीनों ननदों को भी घी की चमची मिल ही जाती थी। परन्तु सब के भोजन खाते निबटते बाद में कभी भी कटोरी में ऐसी दो बूँदे न बचती जो छोटी बहू और गरिमा की दाल में पड़ सकें। प्रायः बढ़ियावाली तरकारी भी नहीं बचती थी। दूध तो ननदों और सास को भी नहीं मिल पाता था। बल्कि छोटी के चार व दो वर्षीय पुत्रों को पाव भर दूध में भी जिठानी मौका पाकर पानी मिला देती थी। वस्त्रों के विषय में भी यही सब नियम लागू थे। हाँ घर के काम में थोड़ी विभिन्नता थी। लड़कों से घर में इतना भी काम न लिया जाता था कि पानी का गिलास भी स्वयं भर कर पी लें। सास अभी स्वस्थ थीं परन्तु बहुओं के आने के बाद सासों के घर का काम करने की परम्परा मध्य व निम्न मध्य वर्ग में कम से कम उत्तर प्रदेश बिहार, बंगाल में तो नहीं ही है। उनका काम मात्र पोते-पोतियों को गोद में उठा कर पड़ोस के घरों में पंचायत लगाना है। अथवा मन्दिर जाना, कीर्तन कथाओं में भाग लेना या बिरादरी की ब्याह शादी, मूँड़न छेदन के बुलावों का भुगतान करना होता है। जो अधिक धार्मिक वृत्ति

की होती है वे घर के ठाकुर देवता और व्रत पूजनों में समय बिताती हैं। गरिमा की सास ने भी बड़ी बहू के आने के बाद से ही रसोई घर से छुट्टी ले ली थी। कमाऊ बेटे की बहू होने के नाते शुरू से ही बड़ी बहू का सम्मान अधिक था इसी से उसके साथ काम करने के लिये ब्याह के पहले साल मिसरानी महरी दोनों लगाई गई थी। फिर बड़ी बहू के सौभाग्य से एक चचिया सास विधवा होकर इस घर की आश्रिता बन गई थी जो लगभग छः सात वर्षों तक मात्र वर्ष में दो धोती और दो बेला रूखी सूखी रोटियों पर उनके घर की मिसरानी बनी रहीं। वे मरी तो उनके बाद ही देव का विवाह हो गया। देव की बहू के माता पिता नहीं है। मामा ने विवाह तो एक बार अच्छा दहेज देकर कर दिया परन्तु बाद में बुलाने अथवा तीज, त्योहारों पर वस्त्र मिठाई इत्यादि देने से हाथ खींच लिया। मात्र ससुराल के आश्रित रहने वाली छोटी बहू शीघ्र ही घर भर की सेविका बन गई थी। तब गरिमा तो इस घर में बिलकुल ही अनिच्छित और अनाधिकार रूप से सात फेरों के बाद ही घुस आई थी।

मक्खन लाल व उनकी श्रीमती को यह पूरा निश्चय था कि स्कूल में पढ़ने वाली लड़की अवश्य ही बिगड़ी हुई होती है। भला इतना पढ़ने के बाद भी कोई लड़की गृहस्थी चलाने योग्य रहती है? परन्तु साथ ही दोनो को अपनी बुद्धि और शासन व्यवस्था पर भी विश्वास है कि ऐसी-ऐसी तीन सौ साठ छोकरियों को सुधार देना उनके बायें हाथ का खेल है। गरिमा पर उन्होने पहले दिन से ही दृष्टि प्रखर रक्खी। स्वयं मुख से न कहकर भी उन्होंने उसे इस बात का आभास करा दिया कि अपने घर तुम चाहे कैसे भी रहीं पर यहाँ पर हमारी इच्छानुसार दब-ढंक कर रहना होगा। तुम्हारा स्थान रात में पति की कोठरी और दिन में रसोई घर होगा। महीने भर में ही गरिमा को स्पष्ट पता लग गया कि राज के लिये उसे अपना परिवार नौकरी और सखी सहेलियाँ ही नहीं छोड़नी पड़ीं—यह तो प्रायः प्रत्येक भारतीय कुमारी छोड़ती

ही है। उसे अपना पढ़ना लिखना गाना और राज के साथ-साथ कला के क्षेत्र में कुछ कर डालने की इच्छा भी छोड़नी पड़ेगी। अब से आठ नौ वर्ष पहले उसका विवाह हो गया होता तो सम्भव था वह ससुराल की प्रत्येक रीति रस्म व आज्ञा सिर झुका कर मान लेती। पति और उसके माता पिता जिधर चलने को कहते चलती। जहाँ उठाते बैठाते वहीं उठती बैठती। परन्तु अब उसे प्रतीत हुआ कि इस जीवन को बिताना मृत्यु की भाँती ही कष्टप्रद है। जाति-बिरादरी, पास-पड़ोस और समाज के अंकुश पहले भी थे। पहले भी माँ सदा दब ढँक कर चलने को कहती थी। सीधी राह चल कर ही उसने इतना पढ़ा लिखा था। पढ़ाया भी था और यथासाध्य संगीत की साधना भी की थी। ससुराल आ कर तो उसके यह छोटे मोटे अधिकार भी छिन गये। यं नया विवाह है नया प्यार है। अभी इस प्यार में इतना बल है कि गरिमा राज के समीप रह पाने के लिये ही घूँघट काढ़ कर सोलह व्यक्तियों की रसोई भी बना सकती है। सास के साथ कीर्तन की श्यामधुन में जा सकती है। और फटा पुराना पहन कर रूखा सूखा खा सकती है। किन्तु, क्या इस प्यार का वेग और आसक्ति सदा इतनी ही तीव्र रहेगी कि इसके लिये जीवन की और सब इच्छा आकांक्षाओं की बलि दी जा सकेगी? गरिमा ने इसे बहुत बार सोचा। अंत में वह इसी परिणाम पर पहुँची कि पुरानी मृतक लोकाचार की लाश कन्धों पर अनिच्छा पूर्वक ढोते रहने से तो कुछ ही दिनों में वह इतनी निष्प्रभ और म्रियमाण हो जायगी कि राज का प्यार भी उसे जीवन प्रदान न कर सकेगा। फिर छोटी बहू तो बेचारी विवश है। वह घर के आश्रय में रह कर मात्र रोटी बनाने और बरतन माँजने की कला ही सीख पाई है। देवर कमाते नहीं है। बहू को अपने व अपने बच्चों के रोटी कपड़े व आश्रय का मूल्य सबकी सेवा करके पूरा करना पड़ता है। रात दिन काम करने पर भी उसे न ढंग से कपड़ा मिलता है न सम्मान। परन्तु मैं तो कमा सकती हूँ। तब क्यों दिनरात इसी चूल्हे चक्की में फँसी रहूँ? रात दिन काम करके भी रद्दी भोजन करूँ? फटा

पुराना पहनूँ और सास जिठानी के व्यंग सुनूँ ? राज भी तो कुल सत्तर रूपये ही घर में देते हैं। इसी कारण तो इतनी शीघ्र उसे भी गृहस्थी की चक्की मे लगा दिया गया है। माना सास ससुर के राज में उसे निश्चिंत होकर आश्रय व रोटी मिलेगी। परन्तु मात्र रोटी के लिये उसे केवल रसोईदारिन बन कर रह जाना होगा। पति-पुत्र के लिये बनाना खिलाना, गृहस्थी का प्रत्येक काम करना नारी का परम सौभाग्य है, इसे गरिमा अपने सच्चे मन से स्वीकारना चाहती है। फिर भी उसकी शिक्षा, उसका सारा जीवन ही उसकी दादी और माँ की भांति रसोई घर की सीमा में ही समाप्त हो जाय वह यह नहीं सह सकती। उसे लगा— 'उसने थोड़ी भूल की।' जहाँ इतनी बदनामी उठाई थी यदि वह विवाह के दिन ही यहाँ आकर घूँघट उतार देती तो चाहे कितना ही शोर मचता उसे कम से कम सास ससुर से अपनी बात कहने का अधिकार तो मिलता। इस प्रकार इस सामन्तवादी परम्परा के परिवार में वह घुट कर मर जायगी। और वही नहीं यह परिवार भी तो धीरे-धीरे दम तोड़ रहा है। जेठ जी अपने बच्चों के भविष्य के लिये रुपया जमा करना चाहते हैं। जिठानी पति की कमाई अपने ही पर व्यय करना चाहती हैं। सास बेटों की कमाई जोड़ कर लड़कियों का विवाह करना चाहती है। देवर इस चिन्ता में हैं कि कहीं नौकरी मिल जाय तो अलग जा रहें। पिता के भय से मुख से कोई कुछ नहीं कहता। परन्तु ससुर जी न रहें तो तीन दिन में परिवार छिन्न-भिन्न हो जायगा। परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं कि आज एक दो पुरुष कमा कर पन्द्रह प्राणियों का पेट नहीं पाल सकते। नगर के जीवन में साधारण रोटी और मोटे-झोटे कपड़े के अतिरिक्त अन्य भी अनेक आकर्षण और मनोरंजन के साधन हैं। वहाँ का प्रत्येक निवासी विज्ञान के वे सुख भोगना चाहता है, तब ? जिठानी के बालकों की भांति ही छोटी बहू के बच्चे भी दिन रात टाफियाँ चूमना, गुब्बारे खरीदना और बच्चा गाड़ी में चढ़ना चाहते हैं। उनकी लड़कियाँ जैसी ही फ्रांकें दोनों छोटी ननदें भी पहनना चाहती हैं। जिठानी जैसे वस्त्राभूषण पहने प्रति दिन सेकन्ड शो में पति के

साथ सिनेमा जाने की इच्छा क्या छोटी बहू की नहीं है? परन्तु एक व्यक्ति की कमाई में इतने प्राणियों को सब सुविधायें कैसे मिले? इसी से थोड़े जल में पड़ी बहुत सी मछलियों की भाति जो विवश हैं वे छट-पटा कर रह जाते हैं। जिठानी परदा करके भी स्वतन्त्रता के अधिकाश सुख भोग लेती हैं। प्रति दिन मन्दिर जाने के बहाने ही अपनी लड़-कियों को लेकर बाजार की सैर कर आती हैं। अपने बच्चों के मूँडन, छेदन, पास होने, बीमारी से चंगा होने इत्यादि के सभी छोटे बड़े संस्कारों को धूमधाम से मनाती हैं। बाजा बजा कर टोले पड़ोस को प्रसाद बाँट कर अपने हौसले पूरे कर लेती हैं। इससे अधिक की चेतना उनमें नहीं है। थियेटर वे देख सकती हैं परन्तु उसमें पार्ट करने वाली के घर जाने में उन्हें अपना अपमान प्रतीत होता है। जलसे जलूस और लेक्चर भी मात्र मनोरंजन या कुतूहलता के लिये सास जिठानी देखने चली जायेंगी, किन्तु जाति-पांति तोड़ दो! परदा हटा कर स्वस्थ रूप में जीवन बिताओ, खद्दर पहनो, जैसे भाषण देने वाली के पास वे अपनी लड़कियों को फटकने भी नहीं देंगी। आराम करना, पाँव पर पाँव रख कर दिन भर पान चबाना उन्हें स्वयं चाहे जितना पसन्द हो पर मोहल्ले टोले की कौन सी बहू बेटी काम न करके दिन भर पुस्तकें पढ़ती है। कौन सी लड़की की माँ बेचारी काम करती है और बेटी स्कूल दफतर में नौकरी करती है। इसकी चर्चा भी वे ही दिन भर करती रहती हैं।

ससुर उनसे भी चार पग आगे हैं। इस गरमी में जहाँ वे स्वयं दिन रात अपनी पीठ पर छोटे लड़के बच्चों को पुकार-पुकार कर पंखा झलवाते हैं। घाम से फूली देह पर नीचे केवल धोती और ऊपर जनेऊ का परिधान रखते हैं। बहुओं के घूँघट हटाने को भी नहीं सहना चाहते। परन्तु, बैसाख की इस गरमी में रात दिन हाथी की सूँड़ के बराबर घूँघट लटकाना गरिमा को बहुत कठिन लगा। फिर घर के छोटे से बड़े तक सब उसे 'मकतब' में मुँह उघाई देख चुके

थे। उसके स्वर के मधुर आलाप का आनन्द उठा चुके थे। उनके सम्मुख अब हर दम घूँघट करना ?

उसने रात को राज से कहा—'मैं अब घूँघट नहीं करूँगी ?'

राज पर आजकल दूसरी तृप्ति का नशा सवार है। आजकल उसे गरिमा की सभी बातें प्रिय लगती है। इस मधुर मिलन में किसी विरोध के स्वर से कड़ुवाहट आये यह वह नहीं चाहता। प्यार से उसके मुँह पर हल्का सा घूँघट डाल कर बोला—'वाह ! घूँघट से तो तुम और भी नई प्रतीत होती हो। यह तो युवती बने रहने का रामबाण नुस्खा है।'

परन्तु गरिमा इस भुलावे में नहीं आई। बोली—'यह रामबाण नुस्खा आप अपने लिये ही रख लें। मेरे वश का घूँघट करना नहीं है। इतने दिन तो तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कर लिया।'

राज डर गया। बाबू जी उस पर व गरिमा पर दोनो पर ही नाराज होंगे। उसने फिर उसे मनाया—'अरे भई साल छः महीने तो कर लो। बड़ी भाभी और बहू तो अभी तक करती हैं।'

गरिमा को राज पर खीज चढ़ आई। मेरा कष्ट व परेशानी इनके लिये मजाक है। उसने तीव्र स्वर में कहा—'बड़ी भाभी को लोकाचार करना बहुत आता है। घूँघट के भीतर से बाबू जी के सामने ही पटर-पटर बोलती रहती है। बीच में झूठ-मूठ ही पिन्टू, अपने बाबा से यह कह दे वह कह दे की छाप लगाती है। मै यह सब दिखावा नहीं कर सकती। और ललित (छोटी बहू) बेचारी तो गरीब की बीबी सब की भाभी का उदाहरण है। जिसका पति कमाता नहीं। साल के साल फेल होता है, वह किसके बल पर अभिमान करेगी? कैसे कोई सुविधा मागेगी।'

'तुम जानो। बाबू हम दोनों की खबर लेगे।'

'लेने दो। केवल तुम मुझसे रुष्ट न होना। आखिर मैं कब तक परदे की बेगम बनी रहूँगी। बड़ों का सम्मान करना मुझे आता है।

पर बाबू जी तो यह समझना ही नहीं चाहते हैं कि समय कितना बदल गया है। नारी भी जीने की सुविधा चाहती है।

'अरे बाप रे।' सिंह ने बात हंसी में टाली—'नारी कितनी सुविधा लेगी। पति की आधी कमाई उसके गहने कपड़ों और शृङ्गार पर खर्च आती है। दिन भर पान चबाना, पर चरचा पर निन्दा का रस लेना, और केवल प्रति दूसरे वर्ष एक अदद बच्चा बनाना ही तो उसने अपने जिम्मे लिया है।'

सिंह का इशारा बड़ी भाभी की ओर था। गरिमा भी मुस्कराई—"विश्वास रक्खो नारी अनेक रूपा होती है। ऐसी नारियों भी अब भारत में यत्र-तत्र सर्वत्र सुलभ हैं जो पर चरचा की अपेक्षा; देश और समाज चरचा में रस ही नही सक्रिय भाग भी लेती हैं। और बच्चे बनाने व पालने को मात्र आधी जिम्मेदारी ही अपने सिर रखती हैं। मैं उन्हीं में अपनी गिनती करना चाहूँगी।'

बात नीरस तर्क की ओर जा रही थी और राज का रस पिपासू मन इस समय उससे दूर भाग रहा था। उसने गरिमा की साड़ी कन्धों से भी नीचे गिरा दी कमर में बाहें डाल कर बोला—'अच्छा तुम्हारी ही जीत रही। लाओ परदा हटाने की रस्म अभी से दोहराई जाय।' उसने उसके ब्लाऊज का बटन खोल दिया।

गरिमा लाज से दोहरी होकर वहीं फर्श पर बैठ गई। राज ने उसे गुदगुदा दिया। वह हँसी से लोट गई।

★

दूसरे दिन ही घर में एक तूफान खड़ा हो गया।

गरिमा रसोई की चौखट पर बैठी दाल बीन रही थी। जिठानी गोद वाली लड़की को दूध पिला रही थीं। गुसलखाने में उसके जेठ स्नान कर रहे थे। स्नान करके निकलने से पहले ही वे दो बार खांसे।

पुरुषों की यह बनावटी खाँसी मध्य वत्त परिवारों में इस बात का संकेत होती है कि घूँघट करने वाली बहुएँ घूँघट कर लें अथवा भीतर घुस जाँय।

गरिमा ने संकेत सुना। एक बार उसका हाथ घूँघट खींचने के लिये उठा भी परन्तु फिर उसने केवल साड़ी के पल्ले से जरा सा माथा ढक लिया और अपने काम में लग गई।

जिठानी ने यह ढंग देखे तो आश्चर्य में आ गई। उसने कहा—'मँझली ! तेरे जेठ आ रहे हैं।'

गरिमा बोली नहीं मात्र सिर हिला कर बताया कि उसे पता है। जेठ आँगन से गुजर कर अपने कमरे में चले गये। जिठानी का मुँह खुला रह गया। पढ़ी लिखी देवरानी की इस ढिठाई पर वे स्वयं कुछ न कह कर जल्दी-जल्दी चल कर पति के पास पहुँची।

पति ने शिकायत सुन कर कुछ विशेष उद्विग्नता न दिखाई। वे इन विषयों में पिता जितने अनुदार नहीं हैं। लापरवाही से उत्तर दिया—'नहीं किया तो कौन बड़ी बात है। इस गरमी में घूँघट से जी घबराता ही होगा।'

देवरानी के प्रति पति की यह ममता बड़ी बहू को रत्ती भर अच्छी नहीं लगी। पढ़ी लिखी लड़कियाँ जादूगरनी होती हैं। वह तो केवल झलक दिखा कर ही पुरुषों को मोह लेती हैं। इसमें उन्हें विशेष संदेह नहीं था। मुँह चढ़ा कर उसने पति से कहा—

'पन्द्रह बरस व्याह को हो गये। क्या मुझे गरमी नहीं लगती। लेकिन मैं तो बाबू जी से अब तक घूँघट करती हूँ। अम्मा के सामने तुमसे भी करती हूँ। मेरे लिये तो कभी इतनी ममता न उमड़ी।'

गरिमा के जेठ पत्नी का स्वभाव जानते हैं। कब किस बात पर रूठ कर आसन पाटी सम्हाल लेंगी यह कुछ कहा नहीं जा सकता। उन्होंने बात सम्हाली—'तुमने कभी शिकायत भी नहीं करी कि मेरा गरमी से जी घबराता है। मैं तो कहता हूँ क्या रक्खा है परदे में।

धोबी, नाई, भंगी किसी से परदा नहीं, तो पिता स्थानपि ससुर से क्या परदा ? मत करो तुम भी ।'

'दैया रे ? इतनी बेसरमी हम नहीं कर सकतीं । मोहल्ले भर में सब नाम धरेंगी । बाबू जी तो गालियों से खबर लेंगे ।'

जेठ हँसे—'दोनों हाथ लड्डू कैसे मिल सकते हैं । बदनामी तो उठानी ही पड़ेगी ।'

बड़ी बहू अभी कुछ और भी कहती परन्तु इतने मे मक्खन लाल जी के गर्जन-तर्जन ने सारा घर गुंजा दिया था । बात यह थी कि उन्हें प्यास लगी थी । दो बार पुकारा भी था कि कोई पानी दे जाओ । घर के सब बच्चे दादी के साथ नदी नहाने गये थे । शीला भी ऊपर कुछ काम में लगी थी । गरिमा ने पुकार सुन कर दाल की थाली रख दी और फिर पानी का गिलास लेकर बैठक में चली गई । पानी का गिलास मक्खन लाल के हाथ में आकर काँप सा गया । मँझली बहू के मुँह पर घूँघट नहीं था । गरिमा मरदानी बैठक में कभी नहीं आती है । वहीं एक कोने में दादा जी का खटोला भी पड़ा था । उसने गिलास ससुर को देकर दादा जी के खटोले के पास जाकर पूछा—'दादा जी ! आपको लस्सी मिली या नहीं ?' उसे मालूम था जिस दिन दही दूध कम होता उस दिन बेचारे बूढ़े की मद में कटौती हो जाती है । उसने जब आज से घूँघट उतारने का निश्चय कर ही लिया तो फिर इस मरणासन्न बूढ़े की देख-रेख भी अपने जिम्मे ले लेगी । राज कहता है न कि दादा उसे सबसे अधिक प्यार करते हैं ।

'बहू ?' मक्खन लाल पानी पीना भूल गये—'क्या हम पूछने वाले मर गये हैं जो तुम्हे मुँह उघाड़ कर ददिया ससुर के पास आना पड़ा । चलो अन्दर ।'

गरिमा ने अपने को रोक कर धीमे से उत्तर दिया—'बाबू जी व्यर्थ में क्रोध न करें । आप तो इसी जगह बैठते हैं पर आपको कभी यह मालूम नहीं हो पाता कि दादा को कब क्या चाहिये । मैंने सोचा यह

सेवा मैं ही अपने ऊपर ले लूँ।'

उघाड़े मुँह वाली गरिमा की यह चितवन मक्खन लाल को चुभ गई। बात चाहे गरिमा की ठीक भी थी। परन्तु कल की ब्याही छोकरी यूँ मुँह खोल कर उनके आगे बात कर ले। इस घर की मर्यादा तो गई समझो। वे गला फाड़ कर गरजे—'अपनी सेवा अपने पास रख। घर की दो रोटियाँ सेंक लेगी तो वही समझूँगा बड़ा काम किया। और यह जो मुँह खोल कर बैठक मे चली आई हो। ऐसी बात आगे न होने पाये। हमारे घर में यह सब नहीं चलेगा।'

गरिमा ने उत्तर नहीं दिया परन्तु घूँघट भी नहीं खींचा। उसी प्रकार सिर नीचा करके भीतर चली आई।

मक्खन लाल बहुत देर तक बड़बड़ाते रहे। अपनी डाँट और आज्ञा का पालन देखने की इच्छा से वे दूने वेग से खाँसते खँखारते रसोई तक गये। द्वार पर रुक कर भारी स्वर में कहा—'जरा इमामदस्ता दे दो चूरन कूटना है।'

ललिता ने तो ससुर की खाँसी सुनते ही घूँघट कर लिया था। पर गरिमा उसी प्रकार बैठी प्याज काटती रही। ससुर की इच्छा सुनते ही इमामदस्ता उठा कर उनकी ओर बढ़ाया। मक्खन लाल ने आग्नेय नेत्रों से बहू को ताका।

गरिमा उसी प्रकार आँखें नीचे किये इमामदस्ता लिये खड़ी थी। ऐसी बेशर्म बहू से कुछ कहना अपनी इज़्ज़त कम करना है। मक्खन लाल ने डाँट कर कहा—'नीचे रख दो मैं खुद उठा लूँगा।' गरिमा ने इमामदस्ता रख दिया और प्याज काटने लगी। मक्खन लाल इमामदस्ता लेकर चले गये परन्तु उनकी खड़ाउओं की खट-खट ऐसी थी मानों वे दोनों बहुओं की छाती पर पाँव रख रहे हैं।

'जीजी!' ललिता ससुर के जाने पर फुसफुसाई—'यह क्या गजब करती हो। बाबू जी को तुम नहीं जानती। एक बार बिगड़े तो मायके भेज कर बुलाने का नाम लेंगे। मैं तो एक बार मामा के लड़के के

ब्याह में तीन रोज अधिक रुक गई थी तो इन्होंने पाँच महीने नहीं बुलाया। हार कर मामा जी पहुँचा कर गये।'

गरिमा ने अपनी निरीह देवरानी को स्नेह से देख कर कहा—'मेरे साथ वे यह चाल नहीं चलेंगे। प्रथम तो 'ये' मुझे मायके जाने ही न देंगे। और यदि पिता के भय से कुछ न भी बोले तो बाबू जी मुझे भेज कर पछतायेंगे ही। मैं फिर नौकरी कर लूँगी।'

गरिमा की यह अकाट्य चाल ललिता के लिये एकदम नई थी। उसने श्रद्धा और भय की दृष्टि से अपनी जिठानी को ताका। गरिमा ने उसके गाल में टुनका देकर कहा—'देखती रह मैं इस घर से यह घूँघट प्रथा समाप्त करके ही रहूँगी।'

'तुम बड़ी विकट हो जीजी!'

'बिकट की इसमें क्या बात है। जीने की साधारण सुविधाओं के लिये भी हमें यह क्यों सोचना पड़े कि बुढ़ऊ लुढ़क जाँय तो हम अपने मन की निकालेंगे। या पति के साथ अन्य स्थान पर बदली हो जाय तो हम इस प्रकार मौज करेंगे? वह समय लद गया जब बहुओं के शोषण पर सारा परिवार पाँव पर पाँव रख कर फूली फूली खाता था।'

'जीजी तुम पढ़ी लिखी हो। तुम सब कर सकती हो। हम जैसी बिचारी क्या करे।'

'तू क्यों नहीं पढ़ लेती। मैंने तो तुझसे कई बार कहा।'

'हाय जीजी! बुड्ढे तोते कहीं राम-राम रटते हैं। तेईस वर्ष की तो हो गई। कहीं तेरह साल की थी तब मिडिल पास किया था। अब तो वह सब भी भूल चुकी हूँ।'

'तू तो पागल है। एक तो कौन सी तू बुढ़िया हो गई है। अब तो नरेन्द्र और सुरेन्द्र भी बड़े हो चले हैं। फिर अपना भविष्य भी तो देखा नहीं! पढ़ सकती हो सिलाई कढ़ाई के स्कूल में नाम लिखा ले, दो साल का ही कोर्स है।'

हाय ! ललिता ने आँखें फाड़ीं--'बाबू जी स्कूल जाने देंगे ? फिर घर का काम काज कौन करेगा ?'

'क्यों घर का काम सब मिल कर थोड़ा-थोड़ा करेंगे। बड़ी भाभी, शीला, अम्मा मैं तू और छोटी तारा मीरा रीता सभी कुछ न कुछ कर सकती हैं ?'

'भाभी काम करेंगी ?' ललिता के मुख पर विवश व्यंग झलक आया। देवरानी जिठानी में और भी बातें होतीं। अक्समात बाहर से स्नान करके लौटी सास ने रसोई घर में आकर गरिमा से कहा--

'मँझली बहू। कुछ तो ससुर का लिहाज करो। उनकी चार दिन की जिन्दगी में तो मुँह माथा ढके रहो फिर चाहे सड़क पे नाचना।'

'अम्मा.....?' गरिमा इन सबके लिये पूरे पन्द्रह दिनों से तैयारी कर चुकी थी--'भगवान करे बाबू जी लाख वर्ष जियें। एक घूँघट उतारने के लिये हम ये क्यों मनायें कि उनके बाद सड़क पर नाचेंगी। नाचेंगी तो उन्हीं के सामने नाच लेंगी। अपना मारेगा फिर भी छाँह में ही डालेगा।'

सास इस एम० ए० पास बहू से मन ही मन बहुत घबराती थीं। उनका सारा अभियोग बेटे पर जा पड़ा। माथे पर हाथ मार कर वे आँगन में बैठ गईं। ये सब मेरे अपने कर्मों का दोष है। जब पेट के बेटे ने मेरी बात न रक्खी तो पराई जायी क्यों सुनेगी। आज घूँघट उतारा है कल सड़कों पर लेक्चर देगी। मैं तो आज ही राज से कह दूँगी भइया हमने अपना 'फरज' निभा दिया, शादी व्याह, कर दी। अब तू अपनी लाडली को लेकर वहीं रह जहाँ इसे आजादी मिले। मैं कच्ची गिरस्तीवाली ठहरी इस हठीली के साथ मेरी सब लड़कियाँ यही सीख-सीख के अपने घर जायँगी तो मेरी ही नाक कटेगी।

गरिमा चुप रही।

राज अभी तक छत पर सो रहा था। वह रात किसी स्कूल की संगीत सभा में तबला बजा कर आधी रात को लौटा था। फिर सोई

हुई पत्नी को जगा कर उससे प्रेमालाप करता रहा। गई रात की ठंढक देह की थकावट और प्रातः की ओस भरी मृदु वायु ने उसे आठ बजे तक बेसुध किया हुआ था। माँ के रोने गाने से वह जाग उठा। कान लगा कर सब सुना जब सुन कर लेटना सम्भव नहीं रहा तो ऊपर से पुकारा—'शीला एक गिलास पानी दे जा।'

गरिमा पानी लेकर ऊपर गई फिर मृदु तिरस्कार से बोली—'बाहर चाहे दिन भर तबला बजा कर उंगलियाँ तोड़ें। घर पर एक गिलास पानी नहीं ले सकते।'

राज ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—'किस बेवकूफ को प्यास लगी है? यह तो तुम्हें बुलाने का बहाना था। तुमने यह क्या आफत मचवा दी। अम्मा बिगड़ रही हैं!'

गरिमा मुस्कराई—'अभी नीचे चलो तो बाबूजी बिगड़ेंगे।'

राज के देवता कूच कर गये। विवाह से पहले उसने यह कभी नहीं सोचा था कि गरिमा को लेकर ऐसी झंझटें आयेंगी। घर में भाभी चाची या बहनें सदा से ही घूँघट काढ़ती हैं। उन्हें इस दशा में देखना उसके लिये स्वभाविक सा था। यूँ मजाक में वह भाभी से भले ही कहता हो—'आप भी क्या मुँह पर बुरका ओढ़े रहती हैं। जरा बाहर निकल कर देखो दुनिया कितनी बदल गई है।' किन्तु भाभी ने उसके समर्थन में मुँह खोल कर बाहर की सैर कभी नहीं की। गरिमा को अपने साथ ले जाने की इच्छा उसे होती है परन्तु विरोध के स्वर जितनी देर तक बचाये जा सकें वही अच्छा। अभी तो वह गरिमा को बाहर घुमाने की अपेक्षा, स्वयं के पास, अकेले में अधिक चाहता है। उसने समझाया 'बड़ी जल्दी करती हो सब कामों में। कहा था साल छः महीने चुपचाप काट दो।'

'क्यों मैं यहाँ मेहमान तो हूँ नहीं कि चार दिन जैसे बने काट दूँ। जब सदा इसी घर में रहना है, तो जहाँ में सबकी सुख सुविधा का ध्यान रक्खूँ वहाँ सबको मुझे भी तो थोड़े अधिकार देने चाहिये? जीवन का

एक स्वर्ण सुख का वर्ष मैं घुट कर क्यों बिता दूँ ? फिर बाद में तो और भी कठिनाई पड़ती ।'

'तुम से भला मैं जीत सकता हूँ । तुम्हारे जितना पढ़ा भी तो नहीं हूँ ।' राज ने गरिमा के मर्म पर चोट की । गरिमा दुखी हो आई—'फिर तुमने वही बात कही । तुम माँ बाबू जी के सामने मेरे पत्त में नहीं बोल सकते तो कम से कम इस प्रकार मुझे हतोत्साह तो मत करो । लो मैं चली अब नीचे आओ । माँ बाबू जी तुम पर बिगड़े तो कह देना उसका अपना मुँह है ढके या उघाड़े रक्खे इससे मैं क्या कर सकता हूँ ।' वह गिलास लेकर चलने लगी ।

'हूँ ?' राज ने उसके चुटकी भरी—'बड़ा सरल उपाय बता कर चल दीं । जानती हो बाबू जी इसके उत्तर में क्या कहेंगे ।'

हाँ हाँ जानती क्यों नहीं । गरिमा ने बदले में उसके चुटकी भरी—'कहेंगे जोरू का गुलाम है ।' और फिर सरसराती हुई नीचे उतर आई ।

राज के नीचे आने पर बाबू जी ने उसे खूब झाड़ पिलाई । राज चुप सुनता रहा । हाँ बड़े भाई ने पिता से इतना अवश्य कहा—'बाबू जी जब पढ़ी लड़की घर में लाये हैं तो उसे थोड़ी आजादी तो देनी ही पड़ेगी । आखिर क्या रक्खा है इस बात में । हमारी शीला रीता भी घूँघट नहीं करतीं तो क्या वे बेशरम हैं ?' ऐसे पुराने रिवाज हमें छोड़ने ही पड़ेंगे ।'

बाबू जी कसमसा कर रह गये । दस पाँच दिन सास जिठानी ही नहीं पास पड़ोस की स्त्रियों ने भी गरिमा को सुना कर बोलियाँ-ठोलियाँ मारीं । परन्तु अन्त में गरिमा का घूँघट उतर ही गया । यही नहीं ललिता ने भी जिठानी की देखा-देखी' उसमें बहुत कमी कर ली । फिर दो तीन महीने और खिसक गये ।

१२

ललिता की तबियत फिर खराब रहती है। उसके फिर दिन चढे हैं। वह सारे दिन उबकाइयाँ लेती है। जरा सा खाते ही उल्टी कर देती है और दिन भर अपनी कोठरी में सिर पर गीला कपड़ा लपेटे पड़ी रहती है। बीच-बीच में बस रसोई में जाकर गरिमा से कहती—'लाओ जीजी! मैं सेकूँ रोटियाँ, दोनों समय तुम्हीं को लगना पड़ता है। सचमुच ही यह दो समय की रोटियाँ गरिमा के लिये बहुत भारी पड़ रही थी। इतने बड़े परिवार के लिये भोजन बनाना वैसे भी सरल कार्य नहीं होता फिर वहाँ तो दूसरी परम्परायें भी चल रही थीं। अर्थात् जेठ और ससुर चूल्हे से सिका गरम फुलका ही खाते थे। सास का कहना था कि कमाने वाले को गरम रोटी न मिली तो घर की बहू बेटी का सुख ही क्या हुआ। जेठ तो खैर दस बजे खाकर आफिस चले जाते थे। पर ससुर तो सबेरे अपनी बादाम ठंडाई और पंजीरी खा लेते थे। और आराम से एक डेढ़ बजे भोजन करते। गरिमा को तब तक चूल्हा जलाये परात में थोड़ा सा आटा रोके रखना पड़ता। ससुर जी के भोजन के बाद कहीं घर की बहुयें खातीं। वह बात अलग थी कि बड़ी बहू को देर से भोजन मिले तो उन्हें सिर में गैस चढ़ जाती है। पित्त कुपित हो जाता है। इस कारण वे अपने पति की थाली में ही खा लेती थीं। दो ढाई बजे रसोई निबटती। सबेरे की रसोई में गई गरिमा तीन बजे अपने कमरे में आकर लेटती तो गरमी की दुपहरी में वह भट्टी सी तपी होती। और चार बजते न बजते जेठ जी के आने से पहले ही उसे फिर रसोई में चली जाना पड़ता क्योंकि वे सबेरे जल्दी जाने के कारण नाश्ता नहीं करते थे तो संध्या को उनके लिये ताजी मठरी अथवा कोई अन्य वस्तु बनती थी। शीला और रीता भी यह कार्य कर सकती थीं।

गरिमा की सास का विचार था—जो उनके अपने स्वयं के अनुभव पर आधारित था–कि लड़की मायके में जितना सुख पा ले, वही उसका अपना है। ससुराल में तो चक्की में जुतना ही पड़ेगा। लड़कियाँ भी आरम्भ से ही घर में भाभियों को काम करते देखती थीं। उन्हें भी इसका अभ्यास पड़ा था। कोई भी इतनी गरमी में रसोई में घुसना न चाहती।

तो इस तरह गरिमा को अकेले ही शाम की रसोई भी बनानी पड़ती। रात कहीं ग्यारह बजे जाकर छुट्टी होती।

राज को इतनी रात तक गरिमा का नीचे रसोई की खटपट में लगे रहना अखर जाता। फिर वह देख रहा था कि इतने ही दिनों में गरिमा और भी दुबली और काली पड़ गई है। स्कूल जानेवाली सदा श्वेत वायल की साड़ी पहिनने वाली, गरिमा अब घर में मैली कुचैली धोती में घूमती-फिरती दिखाई देती। रात को अवश्य ही वह अब भी नीचे से स्नान करके तथा स्वच्छ वस्त्र धारण करके ऊपर आती थी।

परन्तु अब थकन से चूर-चूर गरिमा राज के साथ मधुर आलाप करने और उसके वक्ष से लगकर परम सुख की अनुभूति ग्रहण करने की अपेक्षा लेटते ही नेत्र मूँदकर सो जाने में ही सुख पाती है। वैसे भी वह कुछ चिड़चिड़ी सी हो उठी है।

पत्नी का इस प्रकार घर की चक्की में पिसना राज को भला नहीं लगता। पर वह क्या कर सकता है? इस बार भी वह बी० ए० की परीक्षा नहीं दे पाया। दो तीन महीने तो विवाह करने-न करने और कैसे करने की उलझनों में निकल गये थे। उतनी मानसिक अशान्ति में नौकरी भुगताने के बाद भला कोर्स पढ़ने की शक्ति कहाँ बचती थी? फिर फागुन में विवाह होकर गरिमा घर आ गई थी। यौवन के प्रथम दस वर्षों तक दैहिक तृप्ति के अभाव में और मानसिक संघर्षों के पश्चात् यदि अपनी पसन्द की प्रेयसि किसी को पत्नी रूप में मिल जाय, तो क्या वह सामने मोहनभोग की परोसी थाली छोड़ कर भूखे पेट द्राविड़ी प्राणायाम करना चाहेगा? सो राज से भी पढ़ाई नहीं हुई।

गरिमा के निरन्तर टोकते रहने पर भी वह कुछ न पढ़ सका और अन्त में फीस भरने के बाद भी फेल होने के भय से परीक्षा में नहीं बैठा।

उन्नति करके अच्छी आय पाने के राज के स्वप्न फिर खटाई में पड़ गये। उसके मन-मस्तिष्क में फिर दुश्चिन्तायें असमय के खाली बादलों की भाति मँडराने लगीं।

विवाह के बाद ही उसकी शाम वाली ट्यूशन छूट गई थी। इस कारण उसका अपना हाथ पैसे-पैसे के लिये तंग रहने लगा था। पहिले तो वह गरिमा के साथ महीने में दो-तीन बार कहीं अच्छे रेस्तराँ में जाकर चाय-नाश्ता अथवा काफ़ी या आइसक्रीम खा लेता था, पर इधर वह घर पर इतनी सड़ी गरमी में दिनरात उबलती अपनी गरिमा की मधु यामिनियों के लिये कभी बेले-चमेली के गजरे भी न ला सका था। कुछ तो बड़ी भाभी के तानों का भी डर रहता था, परन्तु मूल कारण था पैसे का अभाव। इन चार पाँच महीनों में वह एक साड़ी भी गरिमा के लिये न लाया था।

वैसे तो घर में सभी बहू बेटियों के लिये बाबू जी ही इकट्ठे कपड़े ले आते थे। बहुओं को साल में दो-दो मोटी धोतियाँ और दो-दो बारीक धोतियाँ मिलती थीं। किन्तु उसे मालूम है कि बड़ी भाभी एक से एक बढ़िया इकलाइयाँ रोजाना ही पहनती रहती हैं। कहने को तो वे सब उनके मायके की दी हुई होती हैं, परन्तु सारा घर जानता है कि वे सभी भइया के पैसों से ही चोरी से आती हैं। गहनों पर भी यही नियम बरता जाता है। न जाने बड़ी भाभी के भाई कितने धन्ना सेठ हैं कि लड़कों की वर्षगाँठ तक पर भी सिलाई-मशीन और बिजली के पंखे जैसे उपहार भेंट करते रहते हैं।

गरिमा को रात दिन खटते देख राज सोचता रहता कि जो बीस रुपये की ट्यूशन भी मिल जाय तो वह अम्मा से कह सुनकर रोटी बनाने वाली मिसरानी लगवा दे। यद्यपि इस मँहगी में इतने बड़े परिवार का

भोजन बनाना मात्र बीस रुपयों पर कोई महराजिन स्वीकार करेगी इसमें भी सन्देह ही था। वह अपनी दिन प्रति दिन दुर्बल होती प्रिया के लिये अपने हिस्से का दूध रख छोड़ता। गरिमा बहुत कठिनाई से एक दो घूँट पीती। अधिक जोर देने पर गुस्सा होकर पड़ रहती।

राज कभी कभी सोचता कि गरिमा मुँह पर चाहे न भी कहे, मन ही मन मुझ जैसे सत्तर रुपल्ली कमानेवाले पति से अवश्य असन्तुष्ट होगी। उसे यहाँ आकर क्या मिला? उसके अपने घर में गरीबी अवश्य थी, परन्तु वहाँ माँ का स्नेह, देखभाल और ममता तो थी। यूँ स्कूल में पढ़ाने में भी मेहनत पड़ती है, लेकिन वह दैहिक कम और बौद्धिक अधिक होती। तब चार सखी-सहेलियों में हँस बोल भी लेती थी। अच्छा साफ सुथरा पहनती थी। संगीत गोष्ठियों, स्कूल के जलसों इत्यादि से भी बेचारी का कुछ सांस्कृतिक मनोरंजन भी हो ही जाता था। अब तो गरीब रात दिन चूल्हे-चौके में जुटी रहती है। वह सोचता—मैं भी यदि भाई साहब की भाति छः सौ कमाता तो गरिमा को लेकर सब कहीं घूम फिर सकता। उससे घर में चूल्हा फूँकने को कोई न कहता। भले ही अम्मा-बाबू जी को मन ही मन यह सब बातें अच्छी न लगती पर बहुत सा रुपया कमा कर देता, तो उन्हें सब कुछ बर्दाश्त हो जाता। अब तो यदि गरिमा को लेकर पृथक गृहस्थी बसाये जो बात राज के लिये इस शहर में रह कर तो असम्भव ही है—तब भी तो सत्तर रुपल्ली में क्या बनेगा? पच्चीस तीस में तो रहने भर को कमरा ही मिलेगा। फिर जिन माता-पिता ने जन्म दिया उन्हें छोड़ देना कितनी बड़ी कृतघ्नता होगी!

इस प्रकार राज का मन मस्तिष्क, अशान्त रहता और इन सब अशान्तियों को वह गरिमा के साथ केलि-क्रीड़ा करके भूल जाना चाहता। गरिमा के कष्टों से उत्पन्न सहानुभूति भी उसे चूमने, प्यार दुलार करने और उसे अपने में समेटकर थपकियाँ देने के रूप में ही परिवर्तित हो जाती थीं। वह चाहता था कि गरिमा के सारे अभाव

उसके प्यार के सागर में डूब जाँय।

गरिमा को पति का दुलार प्यार अच्छा ही लगता था। परन्तु थकी देह और क्लान्त मन से वह आधी रात के बाद मात्र सो जाना ही चाहती थी। देर तक जागे, तो अंधेरे उठेगी कैसे ? नहीं उठेगी, तो सास उसे सुना सुनाकर ललिता को बींध डालेगी—'अनोखी के पेट में बच्चा है ! आगे भी तो दो-दो हो चुके हैं। तब तो इतनी उबकाई नहीं लगती थी। दिन-रात माथा थामे पड़ी रहती है। खसम से कह दे कि मिसरानी लगा दे। बूढ़े ससुर में तो इतना दम नहीं है कि सबके चेटीपोटे का पेट भी भरें और नौकर-चाकर भी लगायें।'

जिठानी अलग नाक के सुर में करोद कर कहेंगी—'हाय राम ! भगवान ने मुझे मौत भी तो नहीं देता ! देखने में दिन-रात फूलती जाती हूँ। बादी के रोग ने भीतर ही भीतर खोखला कर दिया है। उठते ही सिर में चक्कर आते हैं। नहीं तो मैं इतने आदमियों की रोटी तो चुटकी बजाते कर डालती थी।'

फिर वह अपनी लड़कियों को धम-धम पीट कर उनके हाथ में झाड़ू बाल्टी थमा देंगी। और कहेंगी—'चल री, घर में झाड़ू दो। दालान धोओ। तुम्हारे भाग में तो चाचा-चाचियों की मजदूरी बदा है। जब इतने कमाऊ बाप के राज में आराम न मिला, तो आगे कब मिलने वाला है। तुम्हें तो मैं एम० ए० पास कराऊँगी नहीं कि बेशरम बनी दिन चढ़े तक सोती रहो और सास-ननदें चूल्हे में जुती रहे।'

ललिता के बच्चा होने तक या कम से कम जब तक वह स्वस्थ न हो जाय, तब तक तो गरिमा को यूँ ही खपना ही पड़ेगा। इसके बाद भी काम में कुछ कमी भले हो जाय, अन्य कोई सुविधा गरिमा के लिये मिलनी कठिन ही है।

पैसों के अभाव में न वह अच्छी पुस्तकें खरीद कर पढ़ सकती है, न अपनी किसी सखी को बुला सकती है। सहेलियाँ आयेंगी, तो

उनके लिये कुछ खर्च भी करना ही पड़ेगा।

सास तो एक-एक पैसे को दाँत से पकड़ती हैं। पकड़ेंगी भी क्यों नहीं? शीला सत्रह वर्ष की हो गई है। दो साल से टेन्थ पास करके घर में बैठी है। रुपयों की कमी से अच्छा लड़का नहीं जुड़ता। इतना अच्छा लड़का कुल चार हजार में मिल रहा था। इस निकम्मे राज के कारण हाथों से निकल गया। बेटे की अपेक्षा क्रोध बहू पर ही था। जाने कहाँ की चुड़ैल आ गई। न रूप, न रंग। न ढंग के चार गहने-कपड़े ही लाई। उनका वश चलता, तो वह महरी को भी छुड़ा देतीं। जब सौ-सौ बर्तन मलने पड़ते, तो सारा पता पड़ जाता खसम की नानी को!

गरिमा सास-ससुर की इस वक्र दृष्टि को समझती है। उसे कभी-कभी क्रोध भी आता है। पर सब बातों पर मनन करने के बाद वह क्रोध अपने पर ही आ पड़ता है। उनके तीन-तीन लड़कियाँ हैं। उन्हें उनके लिये दहेज के पैसे जुटाने हैं। लड़के पर भी उन्होंने अपनी ममता और धन लुटाया है। सत्ताइस वर्ष खिलाया-पिलाया है। अब यदि वह उसकी कमाई चाहती हैं तो क्या बुरा करती हैं? सत्तर रुपयों की बिसात ही क्या? इतने में दो प्राणी, मकान, बिजली, खाने-कपड़े और आनन्द पाने की सब सुविधायें पाना चाहें, तो अन्याय ही है। मूर्खता तो मेरी है जो उस समय राज को पाने के लिये, लगी-बँधी नौकरी छोड़ दी! शान्ता ठीक कहती थी कि राज दब्बू है। अन्यथा यह तो देखते हैं कि मैं रात-दिन इन मोटे कामों में, जिनका मूल्य इतना कम है कि फँस कर अधमरी हुई जाती हूँ। परन्तु यह नहीं चाहते कि बाबू जी को मनाकर इस बात की आज्ञा ले लें कि बहू फिर से कहीं काम खोज ले। इस बात का आभास पाते ही उन्हें बुरा लगा था। पुरुष का झूठा दम्भ जो ठहरा। पत्नी घर में फटा पहने, पर बाहर काम न करे।

उस रात को फिर जब राज ने उसे गुदगुदाया तो उसने बिनती

की—'हाथ जोड़ती हूँ। इस समय सोने दो। बड़ी नींद आ रही है...।'

राज तीन दिन से यही उत्तर सुन रहा था। उसे कुछ क्रोध आ गया। बोला, 'हाँ जी, नींद क्यों न आयेगी? तुम्हें तो अब कुछ पाना शेष नहीं है। सब इच्छायें पूरी हो गयीं या मर गई हैं। वह तो हमीं मूर्ख हैं जिन्हें तुम्हारे बिना नींद नहीं आती।'

राज के तीखे स्वर ने गरिमा की नींद उड़ा सी दी। धीरे से उठ बैठी। उसे पति से इतनी निर्दय वाणी की आशा न थी।

राज ने मुँह फुला कर करवट लेते हुए कहा—'उठ क्यों गईं? अब सोओ न?'

गरिमा ने आहत स्वर में कहा, 'सब कुछ जान बूझकर भी तुम ऐसी बातें कहते हो? क्या इतने बड़े परिवार का काम हल्का होता है? इतना काम करके बैल भी थक जायेगा।'

राज ने हार नहीं मानी। बोला, 'पाव भर दूध पीते तो तुम बहत्तर नखरे करती हो। देह में शक्ति हो, तो काम भी करो।'

'दूध!' गरिमा अब चिढ़ गई—'ललिता के बच्चों को तो दूध जुट नहीं पाता। स्वयं ललिता इतनी बीमार है उसे तो मिलता नहीं। मैं कैसे दूध पी सकती हूँ? दादा जी को भी तो दूध नहीं मिलता।'

'मैंने सारे घर का ठेका तो नहीं लिया? परन्तु अपने हिस्से का दूध तुम्हें तो पिला ही सकता हूँ उसमें किसी का क्या इजारा है?'

'जिससे कल से तुम भी थककर सड़कों पर गिरने लगो!' गरिमा ने अपनी क्लान्त बाहें राज के गले में पहना दीं। उसके कन्धे पर मुख रखकर कहा—'आखिर क्या सोचकर तुमने मुझसे विवाह किया था? क्या मैं इतनी बुरी हूँ कि तुम्हारे मुख से छीनकर दूध-घी खाऊँगी। क्या एम० ए० करके नारी कमीनी स्वार्थिन हो जाय?'

राज परास्त हो गया।

उसके बालों में उँगलियाँ फिराकर बोला—'फिर बताओ मैं क्या

करूँ ? इधर कोई ट्यूशन भी नहीं मिली। मुझे क्या मालूम नहीं है कि इतने बच्चोंवाले घर में तुम्हें और ललिता को ढंग का भोजन भी नहीं मिल पाता। पर जब तक कोई आय का अन्य साधन न हो मैं कैसे तुम्हारे लिये दूध व फल ला सकता हूँ। इधर एक नाटक खेलने की योजना बनाई थी। एक मित्र हैं जो अपने शौक के लिये पाँच सौ खरचने पर तैयार हैं। मुझे पूरा विश्वास था कि पाँच सौ टिकट बिकने के बाद एक हजार अवश्य बन जाते। खर्च काटकर भी मुझे सौ डेढ़ सौ रुपये बच रहते। पर अब हीरोइन ही नहीं मिल रही है।'

'क्यों, शान्ता कहाँ गई ? उसके रहते हीरोइन की कमी ?'

'अरे आजकल उसके भी बड़े दिमाग बढ़ गये हैं। कहती है मेरी अम्मा बीमार हैं। मैं रात की रिहर्सलों में नहीं आऊँगी।'

राज के मन में शान्ता के प्रति क्रोध था। घृणा से थूककर बोला— 'उहँ, उसे क्या पड़ी है, जो सौ रुपयों के लिये अपनी पन्द्रह रातें जागकर बर्बाद करे। इतना तो उसे एक रात जगने पर ही मिल जाता होगा।'

शान्ता कैसी भी हो, उसकी चिर-कृतज्ञ रहेगी, गरिमा की उसने सदा सहायता की है। वह उसे सच्चे मन से दीदी कहती है। गरिमा को उसी ने राज दिलाया था, किन्तु यह प्रेम विवाह कराने के पुरस्कार में तीन चौथाई बदनामी शान्ता के हिस्से आई थी।

पति की उसके प्रति इतनी घृणा गरिमा को भली नहीं लगी। परन्तु शान्ता के पक्ष में तर्क करने की स्थिति भी वह अपनी नहीं समझती। उसने प्रश्न को दबा कर उत्तर दिया—'यह तो बड़ी मुश्किल हुई। जो सौ रुपये अतिरिक्त आ जाते तो ललिता के लिये चुपचाप टानिक इत्यादि की व्यवस्था हो जाती। इस बार तो वह बहुत ही कमजोर है।' फिर रुककर धीमे से पूछा, 'जो मै चेष्टा करूँ, तो क्या तुम्हारे नाटक का काम नहीं चलेगा ?'

'तुम ?' राज को आश्चर्य हुआ—'तुम भला उसमें क्या करोगी ?'

'क्यों ? क्या मैं अभिनय नहीं कर सकती ?' गरिमा दुष्टता से

मुस्कराई, 'अपने स्कूल में मैंने एक बार राजमाता का पार्ट किया था और देखने वालों ने, चाहे वे स्त्रियाँ ही थीं उसे बहुत पसन्द किया था। तुम्हें मेरे साथ थोड़ी मेहनत अवश्य अधिक करनी पड़ेगी।'

राज अवाक् रह गया। यह गरिमा क्या कह रही है? उसने रुक कर कहा—'तुम स्टेज पर जाओगी? पारसाल तो तुम्हें नेपथ्य गायन के लिये तैयार करने में भी शान्ता के तलुये घिस गये थे?'

'तब की बात और थी। कुमारी कन्या को सौ लोग ऐब लगाने लगते हैं। अब तो मेरा रखवाला मेरे साथ मौजूद है।' कहकर गरिमा ने राज के खसखसी दाढ़ीवाले खुरदरे चेहरे पर कोमलता से अपने गाल टिका दिये—'छी, आज दाढ़ी क्यों नहीं बनाई। सारा मुँह छिल गया हमारा तो।'

राज ने इस रसबतिया में रस न लिया। उसने कुछ देर चुप रहकर कहा—'जो बाबू जी तुम्हें अध्यापिका बनाना नहीं पसन्द करते वे भला तुम्हें स्टेज पर आने देंगे? तूफ़ान बरपा हो जायेगा।'

गरिमा ने हिम्मत नहीं हारी—'मेरा विवाह तुम्हारे साथ हुआ है। मुझे तो केवल तुम्हारी हामी चाहिये।'

राज को गरिमा पर रोब जमाने और कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाने का अवसर मिल गया, 'इतनी शिक्षिता होकर तुम ऐसी बात कहती हो! बाबू जी के जीवित रहते, उनके ही साथ रहते, उनकी स्वीकृति का तुम्हारे लिये कोई मूल्य नहीं? वैसे सिद्धान्त रूप से मैं तुम्हारे स्टेज पर आने में कोई बुराई नहीं देखता। जब मैं दूसरों की लड़कियों को स्टेज पर उतारने का प्रयत्न करता हूँ तो तुम्हें क्यों रोकूँगा? पर माता-पिता, जात-बिरादरी का अंकुश तो मुझ पर है ही। क्या तुम चाहती हो कि इस इतनी सी बात पर घर में तूफान मचे और हमें तुम्हें परिवार से अलग होना पड़े?' कहने को तो राज इतना कह गया परन्तु गरिमा के मुख को देखते ही उसे अपनी कटुता पर पश्चात्ताप भी हुआ।

बात का अन्त करते-करते उसका स्वर मुलायम हो गया, 'वैसे मैं तो

तुम्हारा ही हूँ तुम घरवालों के साथ नहीं रहना चाहोगी तो मैं तुम्हें लेकर अलग भी रहने को तैयार हूँ। परन्तु क्या यह अच्छा लगेगा ? जब कि भाई साहब ने ऐसा नहीं किया। केवल स्टेज पर आने के लिये क्या तुम घर छोड़ दोगी ?'

गरिमा के मुख से फिर प्रश्न या उत्तर कुछ भी नहीं फूटा। वह औंधे मुँह पड़ रही। राज ने उसे मनाने का प्रयत्न किया किन्तु जब उसने कोई उत्साह न दिखाया तो वह भी मुँह फेरकर लेट गया। थोड़ी देर में सो भी गया।

गरिमा को बड़ी रात तक नींद नहीं आई। उसके हृदय मे बार-बार यह विचार उठने लगे। 'क्या मै मात्र अपने सुख के लिये स्टेज पर आना चाहती हूँ ? अपने आत्मप्रकाश की भावना से घर की चहार दीवारी से निकल कर समाज में हँस-खेलकर कुछ क्षण बिताने की इच्छा से भी, मैंने यह बात कही थी, पर राज के साथ मैं अधिक देर तक उसकी सहयोगिनी और सहायिका बनकर रह सकूँ, यह कामना भी मेरी है। मुझे गृहस्थी के छोटे कामों से घृणा नहीं है। पर वही सब कुछ मेरे जीवन का उद्देश्य बनकर रह जाय, यह भी मैं नहीं चाहती। बड़ा परिवार, बच्चों की चे-चें में-में और हँसी किलकारियाँ, सास-ससुर, जेठ-जिठानी की प्रसन्नता और आशीर्वाद, उनकी सुख-सुविधा का ध्यान भी रखना मैं चाहती हूँ; पर यदि मैं स्वयं दुखी-दबी हुई और तन-मन से पीड़ित रहूँ तो दूसरों को ही प्रसन्नता का दान कैसे और कब तक कर सकूँगी ? मैं तो स्वयं चाहती हूँ कि शीला का विवाह अच्छे घर में हो। मेरी ननद ससुराल जाकर खाने पहिनने का आराम पाये। दो चार हजार रुपयों के अभाव में उसके यौवन की उमंगे यूँ ही इस घर में घुट-घुट कर न मर जायें। परन्तु यह सब होगा तो तभी जब उसके लिये साधन जुटे। केवल चूल्हे से निकलते गर्म फुलकों से ही स्वास्थ्य नहीं बनता। घी, दूध, फल भी तो चाहिये। केवल सफाई से, फटी धोटी की किनारी से थैला सी लेने से, या पुरानी घिसी धोती को पेबंद लगा

कर पहन लेने से ही परिवार की सेवा नहीं होनी। नया कपड़ा लाने की शक्ति भी तो होनी चाहिये।

गरिमा ने अब सोये हुए राज की ओर देखा। उसके गालों की हड्डियाँ जो विवाह के बाद थोड़ी कम हो गई थीं अब फिर से उभरने लगी हैं। माथे पर लकीरें पड़ चली हैं।

गरिमा अपने तन-मन की समस्त शक्ति से राज को प्रेम करती है। उसकी इच्छायें पूरी करने को हर तरह से तैयार रहती है। फिर भी वह दुर्बल होता जा रहा है।

उसने नींद में सोये हुए राज के माथे पर मोह से हाथ फेरा। उसके रेशम जैसे मुलायम बालों को सहलाया। मन में सोचा कि तन-मन के अन्य प्रभाव यदि बने ही रहें, रोटी-कपड़े की समस्या यदि हल न हो, तो कोई प्यार, कैसा भी प्यार मनुष्य को सुखी नहीं रख सकता। दोनों की समान पूर्ति से ही मनुष्य की देह, मन, आत्मा कला-कौशल और संस्कार की उन्नति होती है।

उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की--'मैं राज के इस भ्रम को दूर कर दूँगी कि मैं परिवार के साथ नहीं रहना चाहती। मैं उनके माता-पिता, भाई-बहनों के लिये शक्ति भर सुख सुविधा जुटाऊँगी। पर वह सेवा रोटी बना लेने भर से नहीं होगी। उसके लिये पैसा चाहिये। राज यदि अपनी परिस्थितियों के कारण घर के लिये अधिक उपार्जन नहीं कर पाते, तो मुझे भी उनके साथ बाहर निकलना ही होगा। बाबू जी और अम्मा के सारे विरोध कदाचित् मुझ अकेली को ही झेलने पड़ेंगे। पर आज की दुनिया में जीने की इच्छा रखनेवाले को विरोध और संघर्षों का सामना तो करना ही पड़ता है। मैं भी मरना नहीं चाहती। मैं जीना चाहती हूँ अकेली नहीं, सब को साथ लेकर जीना चाहती हूँ।'

गरिमा का मन हल्का हो गया। पति की सहायता से सास-ससुर का विरोध सह पाने की जो आशा थी, वह अवश्य ही टूट गई पर एक

निश्चय तो उसने अब कर ही लिया है, जिस पर वह अडिग रहेगी।

अब उसने अपने रूठ कर सो गये साजन को मनाने की चेष्टा की। उसे गुदगुदाया। राज कुनमुना कर फिर सो गया तब उसने राज की उँगली में जोर से दाँत गड़ा दिया। राज दर्द से अचकचा कर जग गया। गरिमा ने अपनी एक तर्जनी उसके दाँतो में दे दी। उसे अपने वक्ष में समेट कर वह रस में रंग गई। डूब गई। खो गई! लोट गई। राज ने अब उसे अंक में भर लिया।

★

दूसरे दिन गरिमा की नींद बहुत देर से खुली।

हल्के-हल्के बादल छाये थे। पुरवाई हवा के हल्के झोंके उसके बिखरे अलकों को सहला रहे थे। उसकी घाम से भरी देह पर सरस वायु का स्पर्श शीतल मरहम से लग रहे थे।

ऊषा की लाली से लाल नारंगी और सुरमई रंग के बादल, आकाश में बाल कलाकारों द्वारा बनाये गए गाय, बकरी और ऐरावत के रंग-बिरंगे अनोखे सलोने रूप धारण किये इधर से उधर भाग रहे थे। उसका मन हुआ कि ऐसे सुहाने समय में कहीं पिकनिक को चला जाय। परन्तु कमरे की टाइम पीस पर नजर पड़ते ही वह हड़बड़ा कर उठी और नीचे भागी।

पौने आठ बज रहा था। सास तो अभी तक स्नान करके मन्दिर से लौटी नहीं थी। हाँ, जिठानी दालान में बैठी लड़की को दूध पिला रही थीं। शीला आँगन बुहार रही थी। रीता सुराहियाँ रखनेवाली घिनौंचियाँ धो रही थी। वाकई आज तो गरिमा ने सोने में कमाल कर दिया था। वह जिठानी की दृष्टि बचा कर रसोई में जा ही रही थी कि उन्होंने बोल का तीर छोड़ ही दिया—'मझली बहू! हमें भी वह गुन सिखा दो न, जिससे दो-दो बजे रात तक बिजली जला

के तुम्हारे जेठ से हम भी रसबतियाँ कर सकें !'

गरिमा झट रसोई में चली गई। देखा, ललिता अपनी लाल सिल्क की साड़ी पहने पिन्टू व जेठ जी के लिये दूध ठन्डा कर रही है।

'वाह !' गरिमा ने उसे देख कर कहा—'मिसरानी जी ! क्या आज ही गौना होकर आया है ? रसोई में भी लाल चूनर शोभा दे रही है।'

ललिता ने अपनी पीड़ित दृष्टि उठा कर उँगली से पास बुला कर कहा—'हल्ला मत करो जीजी। नहाने गई, तो आज बक्स में कोई धुली धोती ही न थी। तीन तो मेरी कुल धोतियाँ हैं। बहुत मैली हो जाने से दो कल धोबी को डाल दी थी। अब नहाने से धोती गीली हो गई तव हार कर साड़ी पहन ली। धोती छत पर डाल आई हूँ। सूख जाय तो वही पहन लूँगी।'

'अरी, तो तूने मेरी धोती क्यों न पहन ली ?'

'वाह !' ललिता हँसी—'एक तो आप बड़े ठाठ से आठ बजे तक जेठ जी के गलबहियाँ डाले सो रही थीं उस पर यह रोब ! अपनी धोती क्या तुमने बन्दरों की दावत करने को बाहर रख छोड़ी थी जो उठा लाती ?'

'उँह ! तो चुन्नी से आवाज लगवा देतीं मैं कोई कुम्भकरण तो थी नहीं, जो न जग जाती।'

'जीजी, तुम्हारे पास ही कौन बहुत सी धोतियाँ हैं। अपने मायके वाली ही तो हैं। जो दोनों जनी पहनेंगी, तो कब तक चलेगी। लो यह दूध तो तनिक बड़े जेठ जी को दे आओ।'

गरिमा दूध लेकर चली गई। लौटी तो देखा सास बाहर से लौट आई हैं। रसोई के द्वार पर खड़ी वह ललिता को उपदेश झाड़ रही थीं—'अब रसोई चौके में भी रेशमी साड़ी पहन कर काम होता है। बहूरानी, तुमने तो हद कर दी। मायकेवाले तो कभी जूठे हाथों की छींट भी नहीं मारते। कभी होली दिवाली भी बित्ता भर कपड़ा

नहीं भेजते। खसम अभी हमारा ही सिर तोड़ कर पढ़ रहा है? और तुम इतनी मँहगी साड़ी से रसोई बना रही हो? जो चिनगारी पड़ जाय तो......?'

गरिमा ने जल्दी से पास आकर कहा—'अम्मा, ललिता के पास धोती नहीं है। नहा के कुछ तो पहनना ही था।'

सास ने बुड़बुड़ाकर कहा—'जाने देह में कांटे लगे हैं, जो इतनी जल्दी धोतियाँ फाड़ डालती है। सबको बराबर कपड़ा आता है, पर छोटी को सदा यही झींकना रहता है।'

जिठानी ने पिन्टू के छोड़े लड्डू और मठरियों को मुँह में भरे हुए ही दालान में बैठे हुए टीप लगाई—'वही साल में चार धोतियाँ मुझे मिलती हैं। मै तो उनमें से मोटीवाली धोतियाँ मरी पहनती ही नहीं हूँ। वह भी, तो मैंने अब की राज लल्ला के ब्याह में नायन और कहारिन को दे दी थीं।'

गरिमा से चुप नहीं रहा गया, धीरे से उत्तर दिया—'भाभी, तुम्हें अपने मायके से भी तो बहुत कपड़ा मिलता है।'

'तो? उसमें किसी को जलन क्यों हो?' भाभी का स्वर प्रखर हुआ—'मायका तो सभी के है। फिर जिसकी जितनी बिसात हो, उसे उसी ढंग से पहिनना भी चाहिये। अब रसोई चौके में रेशम, मखमल पहना जायगा तो आनेजाने, तीज-त्योहार पर आप ही चिथड़े लटकेंगे। बदनामी किसकी होगी? ससुर जेठ की।' फिर उन्होंने अपनी लड़की को पुकारा—'सुधा! ओ सुधा। छोटी चाची को वह काली मक्खी किनारेवाली धोती लाकर दे दे। छोटे सूटकेस पर रक्खी है।'

बात उस समय आई गई हो गई। परन्तु गरिमा के मन में उथल-पुथल मच गई। वह स्वयं भी बारीक और मुलायम धोती पहनती थी। स्कूल जीवन के कारण उसे मैली धोती पहनने का अभ्यास नहीं था। वह घर में भी साबुन लगाती है। धोबी को भी डालती है। अभी कल ही इकट्ठी चार धोतियाँ धुलने गई तो सास ने टोका था—'चार-चार

धोतियाँ दोगी तो पूरे पड़ गये।'

सास जी यह भूल गयीं कि इस बार धोबी पूरे उन्नीस दिन में आया था—'आधी कमाई धोबी की धुलाई में निकल जायगी। फिर धोबी के घर कपड़ा फटता भी तो है।'

गरिमा के पास अभी काफी कपड़ा है। बढ़िया साड़ियाँ तो दो चार ही हैं क्योंकि ससुराल से उसे बहुत कम कपड़ा चढ़ा था, परन्तु सूती, वायल की और प्रिन्ट धोतियाँ दस पन्द्रह हैं। क्योंकि अपने अध्यापन के काल में अपनी साथवाली लड़कियों के साथ उसने भी प्रति दूसरे तीसरे मास धोतियाँ खरीदीं थीं। साल डेढ़साल उसे अभी कोई तंगी नहीं पड़ेगी। परन्तु यदि राज को मात्र सत्तर रुपये ही मिलते रहे तो उसे भी कुल चार कपड़ों में ही जिन्दगी काटने की नौबत आ जायगी। वह फूहड़ नहीं है। चार धोतियाँ भी वह घर पर साबुन घिस कर साफ ही रक्खेगी। पर जीवन क्या दिन-रात साबुन घिस कर कपड़े धोने में ही बीत जाय? वह तो चाहती है उसके पास इतना हो कि चार वस्त्र ननदों को दे सके। नीलिमा को वह सदा सावन की तीज पर एक साड़ी देती रही है। छोटी मुनिया को फ्राक मिलती थी। पर इस बार कुछ भी नहीं दिया। नहीं वह इस प्रकार अपनी योग्यता को बरबाद करके तंगी नहीं उठायेगी?

उसने छोटी ननद रीता को एकान्त में बुला कर कहा—"रीतू, पिन्टू को साथ लेकर जरा अपनी क्लासटीचर शान्ता दीदी के पास चली जा। अम्मा से मत कहना, भला।' उसे एक इकन्नी देकर कहा—'इसकी लेमनचूस ले लेना। पिन्टू को भी देना।'

रीतू मँझली भाभी का पत्र लेकर शान्ता के पास चली गई।

दोपहर में शान्ता आई। दोनों सखियाँ लगभग चार महीने बाद एक दूसरे से मिली थीं। गरिमा ने देखा शान्ता पहले से कुछ पीली पड़ गई है। पाउडर की तह भी पहले से अधिक गाढ़ी और लिपिस्टिक भी अधिक तेज लगी होने पर भी आँखों के नीचे का कालापन स्पष्ट

चमक रहा था। यद्यपि सास को शान्ता का आना पसन्द नहीं था, परन्तु घर आये मेहमान को वापस भी नहीं किया जा सकता। गरिमा ने ललिता के जिम्मे ससुर जी के फुलके बनाने का भार सौंपा और शान्ता को लेकर अपने कमरे में ऊपर आ गई।

'मरी, तूने तो मुझे भुला ही दिया।' गरिमा ने शान्ता को उलाहना दिया—'न बुलाती, तो आज भी देवी जी का काहे को आना होता।'

'देवी जी तो बिना बुलाये भगवान के पास भी जानेवाली नहीं हैं।' शान्ता चारपाई पर बैठने के बजाय लेट गई—'क्षमा करना गरिमा दीदी! थक गई हूँ।'

'तुझे हो क्या गया है? क्या रात की कमाई पर अधिक जोर देने लगी है, जो इतनी पीली पड़ गई है!'

'नहीं, गरिमा दीदी! रात का रोजगार छोड़ दिया था। इसी से इस दशा को पहुँच गई हूँ। तुम अपनी कहो, तुम्हीं पर कौन सा नूर बरस रहा है! क्या सिंह साहब सिर्फ कोरा प्यार ही करते हैं, खिलाते कुछ नहीं?'

'बड़े परिवार में सभी कुछ हिस्से से मिलता है। शान्ता! ऊपर से ही इमारत पक्की है, अन्दर से सब ढोल का पोल है। मैं तो नौकरी छोड़कर पछता रही हूँ। इसीलिये तो तुझे बुलाया है। कुछ हमारी सहायता क्यों नहीं करती?'

शान्ता हँसी—'कैसी सहायता? ब्याह में इतनी दौड़-धूप करवाई। अब क्या बच्चा होने में नर्स का काम करवाओगी? न बाबा वह अपने बस का नहीं है।'

'मर चुड़ैल, तुझे यही सब सूझता है। यहाँ अपना गुजारा नहीं होता, बच्चे का क्या होगा। मैं पूछती हूँ, तूने इनके नाटक में पार्ट करने से इनकार क्यों कर दिया? हमें कुछ पैसे बन जाते।'

शान्ता ने विषादपूर्ण मुस्कराहट से उत्तर दिया—'मेरी हालत

नहीं देखती ? मै क्या काम करने लायक हूँ। रात-दिन चक्कर आते हैं, जी मिचलाता है, छाती में जलन होती है। नहीं तो नौकरी से नोटिस मिल गया है और मैं हाथ आये नाटक के काम को छोड़ देती।'

'नौकरी से नोटिस मिल गया! जगत प्रकाश जी के एडवाइजरी कमेटी में होते हुए भी तुम्हे नोटिस मिल गया? आश्चर्य है!' गरिमा ने चौक कर पूछा।

'यही तो गड़बड़ है गरिमा दीदी! तुम्हारी वह बात मुझे लग गई थी कि इतना पवित्र अध्यापन कार्य करते हुए भी मैं तन बेचती हूँ। मैंने सोचा ठीक ही तो है। मैं अपनी विलासिता कम कर दूँगी। जार्जेट और नाइलोन पहनना छोड़ दूँगी। सिनेमा और रेस्तराँ की चाट बन्द कर दूँगी और मात्र रेलवे के क्लर्क, उसी जेम्स की होकर रहूँगी। जिसे मैं हृदय से प्यार करती हूँ। उससे विवाह चाहे न भी कर सकूँ जीवन भर उसे ही अपना सर्वस्व मानूँगी। पर, उसने एक लम्बी साँस खींची—'यह बड़े-बड़े मगरमच्छ भला अपने शिकार को छोड़ सकते हैं? अपनी बहू-बेटियों को तो सात ताले में बन्द रखते हैं और दूसरों की जवानी को उसकी मजबूरियों से खरीद लेना चाहते हैं। फिर जिसकी देह वे एक बार पा चुके हैं, वही उनकी बिल्ली भला उन्हीं से म्याऊँ कर जाय? जगत प्रकाश और बैरिस्टर सिनहा दोनों ही मुझसे नाराज हो गये?'

'पर तुम्हे सीजन के बीच में कैसे नोटिस दे सकते हैं? या तो मई में ही दे देते।' गरिमा ने उसकी बात काटी।

'ओह, अपने इस फूटी किस्मत को क्या करूँ?' शान्ता ने माथा ठोंका और उत्तेजना से उठ बैठी—'भगवान भी तो पुरुष है न। वह भी तो मेरे पीछे पड़ा है। इतनी सावधानी रखती थी। भावुकता के चरम क्षणों में भी मैंने कभी बिना हथियारों से लैस रहे आत्म-समर्पण नहीं किया। पर न जाने कैसे गड़बड़ हो गई।'

'गड़बड़?'

'और क्या! देखती नहीं जेम्स का यह अनचाहा उपहार सिर

पर पड़ गया है। जगत बाबू तो तेरे पीछे पड़े ही हैं। उन्हें भी न जाने कैसे इसकी सुनगुन हो गई, बस नोटिस मिल गया। वैसे अभी तो परोक्ष रूप से मिला है।'

गरिमा सिहर गई। उसने ध्यान से देखा तो प्रतीत हुआ कि शान्ता का पेट सचमुच ही पहले से थोड़ा भारी है। उसने भय से विस्फारित नेत्रों से शान्ता को ताक कर पूछा—'अब क्या करोगी? जेम्स से विवाह।'

'तुम भी गरिमा दीदी एक ही पागल हो। वह कम्बख्त हिन्दू बनने को तैयार नहीं और न मैं ईसाई। फिर एक बार अपनी सुरक्षा के लिये ईसाई बन भी जाऊँ, तो मेरी माँ, सिद्धू और छोटू का क्या होगा? जेम्स की आय ही क्या है? और मेरी नौकरी तो हर दशा में गई ही समझो। जेम्स की कर्कशा माँ और अंकिल के साथ तो मैं घड़ी भर भी नहीं रह सकती।' फिर अकस्मात शान्ता का स्वर कठोर हो आया—'मैं जेम्स को समूचा पाना चाहती हूँ, एकदम समूचा। जिसके लिये मै धर्म तक छोड़ूँगी, वह अपनी माँ को भी न छोड़ना चाहे।'

'यह तेरा अन्याय है, शान्ता! वह अपनी माँ को छोड़ दे? उसने उसे जन्म दिया था।'

'जी, वह कुछ नहीं छोड़े। न धर्म, न माँ, तो मुझे ही क्या कुत्ते ने काटा है जो अपने नन्हें-नन्हें भाइयों को भूखों मरने के लिये छोड़ दूँ। यह पुरुष सब के सब एक से होते हैं।' शान्ता ने दाँत पीसे।

गरिमा को उसका सफेद चेहरा देख कर भय हुआ कि कहीं इसे फिट न पड़ जाय। भय से काँप कर पूछा—'फिर अब क्या करोगी?'

शान्ता दो क्षण चुप रही। जैसे अपने पर काबू पा रही हो, और सच में ही गरिमा ने देखा वह फिर स्वस्थ सी हो उठी। ब्लाउज से निकाल कर लेमनड्राप्स मुँह में रख उसने दो तीन बार चूसा। फिर आराम से उसका हाथ पकड़ कर कहा—'अब मैं शादी करूगी।'

'शादी?' गरिमा चौंकी। 'तेरे से शादी कौन करेगा?'

'अहा !' शान्ता ने उसे नटखट मुद्रा से ताका—'मुझसे कोई शादी ही नहीं करेगा ? गरिमा दीदी। मैं तो शीघ्र ही तुम्हारी सौत बनने वाली हूँ। वही वकील साहब—चन्द्रा के पिता जी। अरे याद नहीं आ रहा ? बाबू चन्द्रिका प्रसाद वकील, जिनसे मौसी तुम्हारी गाँठ जोड़ रही थी, अब मेरे पति हो जायेंगे।'

'पहेलियाँ मत बुझा। वे भला तेरे से विवाह क्यों करेंगे ?'

'उसका तो बाप भी करेगा।' शान्ता अब अपने मूड में आ गई थी—'करेंगे कैसे नहीं ? किसी कुमारी का शील हरण करके उसके सिर आसन्न मातृत्व लाद कर वह उससे विवाह नहीं करेगा ? कानून क्या उसके लिये नहीं ? सारी वकालत झाड़ दूँगी। वह हैं किस हवा में !'

गरिमा की हैरानी की हद न रही। शान्ता की बातों का सिर-पैर समझ में न आने पर उसने पूछा—'तू क्या बक रही है। अभी तो कहती थी कि यह गर्भ जेम्स का उपहार है। अभी कहती है वकील साहब का है ?'

'अरे दीदी, यही तो राज़ है। माँ के सिवाय बच्चों के असली पिता को कौन जान सकता है ? और सच बात तो यह है कि गरीब जाबाला जैसी अभागिनों को तो स्वयं ही अपने बच्चे का पता नहीं होता। खैर, यहाँ वैसी कोई बात नहीं है। पर जब जन्म भर की गुलामी लिखानी ही है तो मेरा असामी वकील क्या अच्छा नहीं ? बूढ़ा है तो क्या पैसेवाला तो है ! विधवा होऊँगी, तो भी खाने-कपड़े का घाटा न रहेगा। दीदी, जरा एक गिलास शिकन्जबीन तो बना लाओ। लो, नीबू मैं लेती आई हूँ। तुम्हारी सास तो मेरी खातिर में चार डबल भी खर्चना नहीं चाहतीं।' पर्स से एक नीबू निकाल कर उसने गरिमा को थमाया और फिर निढाल होकर लेट रही।

गरिमा नीबू लेकर नीचे उतर आई। शरबत तैयार करते हुए

ललिता से बोली—'बाबू जी खा चुके हों तो तू भी खा ले। मैं जरा देर में खाऊँगी।'

'अच्छा' इधर उधर ताक, अकेला देख कर ललिता ने कहा—'अम्मा बिगड़ रही थीं कि ऐसी बदनाम लड़कियों से बहू दोस्ती रखनी हैं। शीला ऊपर जा रही थी। उसे कस कर डाँट लगाई।'

'लगाने दे!' गरिमा ने सुराही के पानी से ही शरबत बना लिया। उसे मालूम था बर्फ़ मँगाने पर घर में फिर चैं-चैं मचेगी। शर्बत लेकर ऊपर चली गई।

गिलास भर शिकंजबीन गटगट पीकर शान्ता ने एक तृप्ति की साँस ली—'अब कलेजा ठंढा हो गया। भगवान करे दीदी, तुम दूधो नहाओ और पूतों फलो।'

'अच्छा, अच्छा, अपने आशीर्वचन बन्द करके सारी बात खुलासा बता। मेरा तो दम फूल रहा है।'

'अच्छा?' शान्ता ने छेड़ा—'गर्भ का भार मुझ पर लदा है और दम तुम्हारा फूल रहा है। खूब दीदी, यह तो असंगति अलंकार हो गया। क्या दोहा है वह—दृग उरझत टूटत कुटुम्ब, जुरत चतुर संग प्रीति। हाँ आगे क्या है?'

गरिमा ने उसे धक्का देकर कहा—'अपनी बकवास बन्द कर। सब बातें बता।'

'क्या बताऊँ? देखो तुम्हारे ब्याह के बाद जैसे ही मैंने सती-साध्वी बनने का संकल्प किया, तो जगत नारायण और सिनहा रूठ गये। दोनों ही कुछ दिनों मुझे मनाने के प्रयत्नों में लगे रहे। तब तक छुट्टियाँ हो गईं। नोटिस दिलवा न सके। और मन मारकर चुप हो गये।'

पर दीदी, अनाश्रय और सौन्दर्य दोनों के साथ मुझ जैसी बदनाम लड़की यदि पाक साफ़ बनकर रहना चाहे, तो भला ये मगर-मच्छ रहने देंगे? इसी गरमी की छुट्टियों में अम्मा सख्त बीमार पड़ गयीं। उन्हें

अस्पताल में रखना आवश्यक था। साथ ही ऐसी सिफ़ारिश भी चाहिये थी जिससे डाक्टर भंडारी उनकी उचित देखभाल करें—नहीं, तुम तो जानती हो। जनरल वार्ड के गरीब रोगियों और सड़क के लावारिस कुत्तों में कोई विशेष अन्तर ये अस्पतालवाले नहीं समझते। अब सिफ़ारिश कहाँ से लाती? आजकल तो शायद यमराज से मौत माँगी जाय तो उसके लिये भी सिफ़ारिश करवानी पड़ेगी। यह तो अस्पताल का डाक्टर था। फिर एक मेरा चचेरा भाई है। बेचारा मुद्दत से बेकार है। कुल दसवीं कक्षा तक पढ़ा है। उसके लिये भी कुछ करना ही था। ये वकील चन्द्रिका प्रसाद, डाक्टर भंडारी के बड़े मित्रों में हैं। सोचा, यदि ये सिफ़ारिश कर देंगे, तो दोनों काम हो जायेंगे। भंडारी के यहाँ एक टाइपिस्ट की भी जरूरत थी। भाग्य की मारी मैं तुम्हारे वकील साहब से सहायता माँगने चली गई।'

'लेकिन वकील साहब के विषय में तो कभी ऐसी वैसी बात नहीं उड़ी? वे तो भले आदमियों में गिने जाते हैं।' गरिमा बोली।

'दीदी, बात मत काटो। तुमने कितने आदमियों को देखा है जो भले और बुरे का नाप करने बैठ गई।' शान्ता ने तेज पड़ कर कहा—'घर में अच्छी सुन्दरी पत्नी हो, कुछ लोकलाज का भय हो और किसी को बिना संकट में पड़े चंगुल में फँसाने का अवसर न हो तो अनेक व्यक्ति धर्मात्मा बने रहते हैं। यहाँ तो वकील साहब वर्ष भर से पत्नी-विहीन थे। फिर तुमसे सम्बन्ध होते-होते टूट गया था और इसका एक कारण वे मुझे ही समझते थे। यह मुझे बाद को पता चला था अन्यथा मैं उनके पास जाती ही नहीं। पर जब चली गई तो फिर क्या हो सकता था। बाज़ के फंदे में चिड़िया फँस जाय तो भला छुटकारा हो सकता है?'

'क्या उन्होंने तेरे ऊपर बल प्रयोग किया?' गरिमा शान्ता की डाँट भूल कर पूछ बैठी।

'यह भी कह सकती हो। वासना और क्रोध दोनों ही जहाँ इकट्ठे

हों और वह भी किसी प्रौढ़ वकील के भेजे में, फिर तो करेला और नीम चढ़ा की कहावत चरितार्थ हो जाती है। उन्होंने माँ को अस्पताल में दाखिल करने की सलाह देकर आश्वासन दे दिया कि वे डाक्टर भंडारी और माथुर दोनों से ही कह देंगे। ये सब उन्होंने मेरी सहायता के लिये नहीं कहा था। तुझसे ब्याह तुड़वाने का बदला लेने के लिये कहा था। और दीदी, पुरुष के पास स्त्री से बदला लेने का एक ही सबसे सरल नुसखा है कि बिना उससे प्रेम किये, बिना उससे प्रेम पाये, मात्र अपनी वासना की पूर्ति के लिये उसे विवश कर लो। वकील साहब ने वही किया।' शान्ता के मुख पर वही पहलेवाली उत्तेजना छा गई। दाँतों से नाखून चबाते हुए उसने, बात जारी रक्खी—'दीदी, वे सफल हो गये। उनके विवाह में भाँजी मारनेवाली इस बदनाम लड़की को उन्होंने अपनी अंक-शायनी बनने पर विवश कर लिया। बदला ले लिया।' वह जैसे हाँफ रही थी। उसकी साँसें मानों उसके वक्ष में समा नहीं पा रही थीं। वह उठ कर बैठ गई।

गरिमा ने घबराकर उसकी पीठ पर हाथ फेरा। फिर धीरे-धीरे उसे लिटा दिया। उसकी हथेली सहलाते हुए उससे कहा—'तू तो इन सब मामलों में इतनी चतुर थी, कैसे मूर्ख बन गई?'

'दीदी, मूर्खता या बुद्धिमानी का प्रश्न ही नहीं था। माँ अस्पताल में बिना उचित देखरेख के सड़ रही थी। न उसे घर लाने की आशा मिलती थी, न वहाँ ढंग का ही इलाज हो रहा था। चचेरा भाई बीस दिन से रोज चक्कर काटता और कोई बात नहीं बन रही थी। तब अन्त में मैंने सोचा—शान्ता, ये तेरी हिमाकत है जो तू एक की होकर रहना चाहती है। अनाश्रिता को तो सात खसम करने ही पड़ेंगे। तब मैंने वकील साहब को उनकी सिफारिश का मूल्य चुका दिया। फिर माँ भी ठीक हो गई। उस भाई को भी नौकरी मिल गई।' शान्ता चुप होकर एक लेमनड्राप निकाल कर चूसने लगी। उसके मुख पर मरघट की शान्ति छाई थी।

गरिमा 'हाँ, न' कुछ भी न कह पाकर शान्ता का मुख ताकती रही। पर आज इस शान्ता की बातें सुनकर उसके मन में करुणा और घृणा दोनों का ही स्रोत फूट रहा था। करुणा तो उसकी दशा पर थी। पर सबके साथ सो जानेवाली इस लड़की से उसे घृणा हो रही थी। क्यों? इसका उत्तर वह स्वयं नहीं दे पा रही थी। भारी पत्थर से बोझिल वातावरण को हल्का करने के लिये उसने कहा—'पर तू यह वकील साहब से विवाह की बात क्या कर रही थी?'

'ओ, वह बात!' शान्ता मुस्कराई—'दीदी, बदला केवल पुरुष ही नहीं, स्त्री भी ले सकती है। मैं भी वकील साहब से बदला लूँगी। पत्नी बनकर, दूसरे का गर्भ उसके सिर थोपकर! उसे क्या मालूम कि गर्भ किसका है? वह तो एक कुमारी को इतनी आसानी से फँसा लेने के अभिमान में फूले हुए हैं।' शान्ता उत्साह में आकर उठ बैठी। एक साथ दो लेमनड्राप मुँह में रख ली।

'चल-चल, तेरी बदनामी तो जमाने भर में है।'

'पर, दुआ करो दीदी, मैंने उनके साथ यही अभिनय किया है कि मुझ पर मरनेवाले सैकड़ों रहे हैं। पर अनचखे फल को कुतर डालने का सौभाग्य उन्हीं को मिला है। मैंने उन्हें सूचित कर दिया है कि मुझे चार मास का गर्भ है। या तो सीधी तरह विवाह कर लो, अन्यथा बात कोर्ट तक जायगी।'

'तू सुबूत जुटा लेगी? वे इन्कार कर दें तो?'

'कर दिया इन्कार!' शान्ता ने गर्व से माथा ऊँचा किया—'हज़रत के कई पत्र मेरे पास हैं। दीदी, इन बुड्ढों पर तो जवानों से भी अधिक नशा चढ़ता है। वह तो उस रात के बाद दीवाना हो उठा। रोज ही नौकर के हाथ पत्र भेज कर बुलावा भेजता। मैंने भी एक-एक चिट तक सम्हाल कर रक्खी है। बच्चू जायेंगे कहाँ निकल कर? बिना विवाह किये मैं मानने वाली नहीं हूँ।'

'किन्तु दूसरे का गर्भ तू उनके सिर मढ़े, यह बड़ी नीचता है।'

'हाँ-हाँ, नीचता क्यों नहीं है।' शान्ता ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया—'और पैंतालीस पचास के बुड्ढे, युवा लड़कियों पर डोरे डालें, यह बड़ी उच्चता है! तुम उसके फन्दे से बच गईं, इसी से बातें बना रही हो। यदि मैं उसके तीन बच्चों को प्यार करके उन्हें पाल सकती हूँ, तो वह मेरे एक को अपना समझ कर क्यों नहीं पालेगा? अभी तो बैलेंस बराबर होने में दो की कसर है।'

गरिमा ने अब कुछ नहीं कहा।

शान्ता फिर जैसे स्वयं ही बड़बड़ाई—'दीदी, तुम भी मुझे ही बुरा समझती हो। समझो, पर मैं उतनी खराब नहीं हूँ। देख लेना वकील साहब को मन से चाहूँ या नहीं, परन्तु यदि वह मेरी माँ या मेरे भाइयों का पालन करेंगे, मुझे आश्रय देंगे, तो मैं भी उनका ऋण उतारने को विवाह के पश्चात् केवल मात्र वकीलिन बन जाऊँगी।'

गरिमा अब भी चुप रही। शान्ता के द्वारा कहीं नौकरी पाने की आशा टूट चुकी थी। और शान्ता थियेटर में पार्ट भी नहीं करेगी, यह भी निश्चित ही था।

'दीदी, चलूँ! जरा बुड्ढे की मिज़ाजपुरसी भी करनी है। साम, दाम, दंड, भेद सभी बरतने पड़ते हैं।'

शान्ता चली गई।

गरिमा उस दिन रोटी नहीं खा सकी। शान्ता अपना इतना बड़ा रहस्य उसके पेट में उंडेल गई थी कि उसे ही हज़म कर पाना कठिन हो रहा था। अपना अथवा दूसरों का रहस्य, रोमांच, प्रेम और शत्रुता किसी से कह सुन लेने पर मन हल्का हो जाता है। भार उतर जाता है तथा परालोचना वृत्ति की तृप्ति भी हो जाती है। परन्तु गरिमा शान्ता का यह भेद किसी से कह भी नहीं सकती। एक तो उसने सदा उसकी सहायता की, इस कारण। राज और उसके विवाह में तथा नौकरी पाने में जब वहाँ उसके वश में रहा, उसने साथ देने से कभी मुँह नहीं मोड़ा। गरिमा पर विश्वास करके ही वह अपने सभी कर्म-

अकर्म उसे निश्छल भाव से बता देती है। गरिमा क्या उसके विश्वास से छल करे? एक बार इच्छा हुई राज से जिक्र करे। पर दूसरे ही क्षण उसने अपना यह विचार छोड़ दिया। राज शान्ता को पसन्द नहीं करता। फिर तो वह कभी शान्ता से गरिमा को बात भी नहीं करने देगा। सम्भव है वकील साहब से ही जाकर कह दें। नहीं, गरिमा अपनी सखी का राज़ किसी से भी नहीं कहेगी, राज से भी नहीं। शान्ता जो करेगी, आप ही भोगेगी। मैं क्यों उसके दुखों को बटाऊँ।

नीचे सास शीला पर बड़बड़ा रही थीं—'अरे शीला, तुझे छत पर इस दुपहरी में क्या लड्डू मिलते हैं? जब देखो, तब वहीं टॅंगी रहती है। बिना पढ़े ही तेरे मिजाज नहीं मिलते। जहाँ जायगी, मेरा नाम बदनाम करेगी। नीचे तो आ...!'

गरिमा झटपट कमरे की कुन्डी चढ़ा कर नीचे आ गई। उसे भी आश्चर्य था। शीला कमरे में तो आई नहीं थी। खुली छत पर इस समय क्या कर रही थी?

१२

इसके पन्द्रहवें दिन ही घर के पुरुषों की एक मीटिंग बैठी। बैठक में राज, देव, उनके बड़े भाई, पिता और दादा एकत्र थे। सास और जिठानी द्वार के बीच में घूँघट निकाले बैठी थीं। और गरिमा दालान के खम्भे से लगी खड़ी थी। घर के छोटे बच्चों को वहाँ आने से मना कर दिया गया था। समस्या थी कि शीला का विवाह शीघ्र से शीघ्र कैसे किया जाय?

यूँ तो शीला के विवाह की चिन्ता घर में सब को थी ही। परन्तु

इस कमेटी के बैठने का एक विशेष कारण भी था।

शीला दो बरस से घर में बैठी है। अपनी ऊँची पूरी उठान के कारण वह सोलह से पहले ही अठारह बीस की जँचने लगी थी। माँ उसे बहुत कम घर से निकलने देती। घर में भी भतीजे भतीजी को खिलाने पढ़ाने के अतिरिक्त उसे कोई विशेष काम न था। अपने दिन रात के सभी खाली घन्टों में वह, जासूसी या रहस्य रोमांच और सस्ते उपन्यास पढ़ा करती थी। पड़ोस की एक छोटी लाइब्रेरी में इनका काफी जमाव था। वह पिन्टू या रीता या तारा से किताबें मँगा लेती थी। फ़िल्मों की इकन्नीवाली पटकथाओं का उसके पास एक पूरा ढेर जमा था। सिनेमा देखने की हविश वह उसी से पूरी करती थी।

इधर कुछ दिनों से गरिमा ने लक्ष्य किया था कि शीला प्रायः छत की मुंडेर पर लटकी रहती है। और फिर उसने पाया कि सामने के मकान से एक युवक भी ताक-झाँक करता था। एक दो बार उसने शीला को मना भी किया। वह मँझली भाभी से रूठ गई।

गरिमा ताक में रही और एक दिन सुधा द्वारा लाया एक परचा उसने पकड़ ही लिया। वह पत्र उसी युवक ने अपनी जानेमन शीला को लिखा था। गरिमा ने पत्र सास और जिठानी को नहीं दिखाया। इससे शीला पर बहुत डाँट-फटकार और सम्भवतः मार तक पड़ सकती थी।

रात को उसने राज से कहा—'या तो शीला को कहीं पढ़ने अथवा किसी अन्य कला-कौशल के स्कूल में डाल दो। अथवा उसका शीघ्र विवाह कर दो। यूँ बैठाये रख कर उसके दिन क्यों नष्ट करते हो?'

राज ने पत्नी के स्वर में रहस्य की गन्ध पाई, तो कसम देकर सब कुछ पूछ लिया। गरिमा ने पत्र उसे देकर कहा—'लड़का तो बुरा नहीं है। बस जाति का अहीर है। उसके बाप का दूध का कारोबार है। घर का मकान है।'

राज गरिमा की बात पर झल्ला पड़ा—'क्या बे-सिर पैर की बातें

करती हो ! मैं उस किशनलाल के हाथ-पाँव तोड़ कर रख दूँगा । उसे पत्र लिखने की हिम्मत कैसे हुई ? और इस शीला के तो मैं अच्छी तरह कान मलूँगा । अभी से उड़ने लगी ।'

गरिमा अवाक् रह गई । स्वयं प्रेम-विवाह करनेवाले व्यक्ति भी अपनी बहन-बेटी के प्रेम के मामले में बदले के लिये दूसरों का हाथ-पाँव तोड़ने को तैयार हैं ।

गरिमा ने समझाया—'किशन का ही सब दोष नहीं है । शीला भी रात दिन उसे ताका झाँका करती थी । और शीला भी क्या करे ? खाली दिमाग में शैतान बसता है । न पढ़ना, न कोई काम करना । बस, रातदिन रद्दी उपन्यास पढ़ना और विवाह हो जाने की प्रतीक्षा करना । ऐसे में यह सब तो होगा ही । वैसे लड़का बड़ा सुन्दर है !'

'अहीरों से सम्बन्ध करना पड़ेगा ? बाबू जी तो प्राण दे देंगे ।'

गरिमा को हँसी आ गई—'बाबू जी से पहले तो तुम्हीं प्राण लेने पर उतारू हो । अपनी भूल गये ?'

राज को और भी क्रोध चढ़ा—'तो मैं अहीर हूँ ? मैंने तुमसे कभी अशोभन व्यवहार किया था ? फिर तुम बालिग लड़की थी । शीला तो अभी कुल जमा सत्रह की भी नहीं है ।'

गरिमा राज के क्रोध से भयभीत हो गई । धीरे से बोली—'तुम तो हँसी में ही चिढ़ गये । मैं कब कहती हूँ कि तुम किशन से शीला का विवाह कर दो । पर उसके मन को लगाने के लिये उसे कुछ काम भी तो सौंपो । या पढ़ने बैठा दो ।'

'जैसे मेरे कहने मात्र से ही अम्मा-बाबू जी उसे स्कूल भेजने लगेंगे ।' राज ने किशन के पत्र को सम्हाल कर जेब में रखते हुए कहा—'एक बार उस बदमाश से बातें करनी होगी ।'

'न, न, न !' गरिमा ने मना किया—'इससे बदनामी ही होगी । तुम शीला को ऊपर जाने से मना कर दो । बच्चा ही तो है ।'

राज ने शीला को डाँटा।

अम्मा को यह बात अच्छी नहीं लगी। सयानी बेटी को वह चाहे जो कहे, लड़के कौन होते हैं कहनेवाले? इस मँझली ने कुछ जरूर लगाई-बुझाई की होगी।

उन्होंने उलट कर राज को डाँटा।

चिढ़ कर राज ने किशन का पत्र माँ के सामने रख दिया।

सब के मुखपर क्षणभर में मानो एक साथ ही बिजली गुल हो जाने सा अन्धेरा छा गया। शीला को बहुत गालियाँ मिलीं और रात को ही यह मीटिंग बैठी।

मक्खन लाल जी के दृष्टिकोण से इन सब बातों का कारण राज था। वह यदि रामनगर वाली लड़की से विवाह कर लेता, तो तैयार दहेज के साथ नकद चार हजार मिल जाते। एक हजार और डाल कर चटपट शीला के हाथ पीले हो जाते।

उन्होंने राज को तीखी नज़र से देखा। फिर बड़े बेटे से बोले—'अब बोलो! जल्दी कहीं शादी तय करते हो या मुँह में कालिख पुतवाओगे? अभी भी कासगंजवाला लड़का रोका जा सकता है।'

बड़े ने गम्भीर मुख से कहा—'बाबू जी, आप मुझसे क्या कहते हैं? तीन सौ घर में देता हूँ। साढ़े तीन सौ ले लें। आखिर मुझे भी तीनों लड़कियों को पार करना होगा। एक बड़ी रकम तो उनके इन्श्योरेन्स में निकल जाती है। फिर पिन्टू के मास्टर की फीस, इनकी बीमारी के कारण डाक्टरों का बिल, मेरा अपना पान-सिगरेट, तांगे-रिक्शे का खर्च, सभी कुछ तो मैं अपने पास से करता हूँ। डाकखाने में जो पाँच सौ रुपया पड़ा है। वह मैं जब चाहिये दे दूँ।'

देव ने कहा—'मैं तो धेला भी कमाता नहीं। पर कहिये तो उसके जो दो चार जेवर हैं, वह दे दूँ।'

अब राज की बारी थी। उसने कहा—'अपनी पूरी तनख्वाह, वह

चाहे जितनी भी है, मैं अम्मा को दे देता हूँ। अब चोरी तो करने से रहा।'

मक्खन लाल बिगड़ उठे—'चोरी तुम क्यों करोगे, साहबजादे! वह तो मुझे इस बुढ़ापे में करनी पड़ेगी। नहीं तो कन्या-पाप से मुक्त कैसे हूँगा?'

राज क्रोध से भरकर बाहर निकल आया।

बहुत देर चख-चख मची। फिर यही तय पाया कि कर्ज ले लिया जाय और शीला का विवाह इसी माघ में कर दिया जाय।

★

दिन जाते देर नहीं लगी। माघ आन पहुँचा।

शीला का विवाह और गरिमा के जेठ का ट्रान्सफर दोनों ही इसी महीने में एक साथ हो गये। ट्रान्सफर तो बीच में दो बार और हुए थे। अब से आठ वर्ष पहले। परन्तु तब जेठ जी अकेले ही गये थे और छः सात महीने बिता, घूम फिरकर घर आ गये थे।

इस बार वह अपना परिवार भी ले गये। उनका कहना था कि इस बार का ट्रान्सफर जल्दी कैन्सिल नहीं होगा। मेरा स्वास्थ्य भी अब पहले जैसा नहीं है कि होटल की रोटियाँ खा सकूँ। फिर लखनऊ में बच्चों की पढ़ाई और भी अच्छी तरह होगी।

मक्खन लाल उन्हें परिवार ले जाने से रोक नहीं पाये। यूँ तो बहू रानी और बेटा दोनों ही पूरा आश्वासन दे गये थे कि प्रत्येक पहली को वे दो सौ रुपये भेज दिया करेंगे। पर घर भर यह जानता था कि कर्ज की लम्बी किश्त देने के बाद घर में जो तंगी होगी, कोरी दाल-रोटी पर दिन कटेंगे, उनसे बचने के लिये ही बड़ी बहू ने इस बार जाने पर कमर कस ली। वे चले गये।

दो महीने में ही घर में चाँदना नज़र आ गया। जेठ ने एक महीने

दो सौ भेजे। दूसरे में सौ! तीसरे में कुल पचास भेज कर कर लिख दिया—

'क्या करूँ यहाँ आकर सभी बीमार पड़ गये। इन्हें डाक्टर ने मनाही कर दी है। महरी, मिसरानी और नौकर तीनों लगाने पर जैसे-तैसे गृहस्थी की गाड़ी खिंच रही है।'

मक्खन लाल जी पत्र पाकर बहुत भड़के। जोरू के गुलाम बड़े बेटे को एक लाख गालियाँ सुनायीं।

उन्होंने छोटों को भी नहीं बक्शा। उनका बड़ा बेटा तो हीरा था। उसकी बहू तो बिलकुल गऊ थी। पर जब एक ने अपने मन की शादी कर ली, तो वे ही अपने मन से क्यों न चलेंगे?

घर में दूध आना एकदम बन्द हो गया। महरी भी छुड़ा दी गई। ललिता आजकल में ही माता बननेवाली थी। उसके पावों पर सूजन थी और उसे उठना-बैठना तक कठिन था। उसके छोटे लड़के का जिगर बढ़ा हुआ था। फिर भी उसे वही पड़ोसी वैद्य जी की पुड़िया फँकाई जाती थीं। वह दिन भर रीं-रीं करता रहता। दादा जी दो-दो दिन बिना अफ़ीम के पड़े रहते थे। ससुर की पंजीरी भी बन्द थी। घर में तेल के पराठे भी बनते, तो उन पर छोटी ननदें व ललिता के बच्चे ऐसे टूटते मानो कभी कुछ खाया न हो।

गरिमा काम से पिसी जा रही थी। यूँ अब सास का व्यवहार उसके प्रति पहले से अच्छा ही था। इस तंगी में भी गरिमा बिना शिकायत किये दोनों समय का भोजन, चौका-बर्तन व घर की सफाई कर लेती थी। कुछ भी हो, चाहे उसका पति सत्तर ही कमाता है, लेकिन इस समय तो यदि वे सत्तर भी न आएँ, तो भूखों मरने की नौबत आ जायगी। सास ने रीता और तारा को मँझली भाभी की सहायता करने को कह दिया था। माँ की आज्ञा हो जाने से लड़कियाँ भाभी का हाथ बटा लेती थीं।

राज ने दिन प्रति दिन सूखती गरिमा से एक बार कहा भी—'थोड़े

दिनों को अपनी माँ के पास रह आओ नीलो। बार-बार टोकती है कि जीजा जी ने तो हमारी जीजी को कैद कर लिया।'

गरिमा पति का मतलब समझ गई। ये उसे कुछ दिन घर के काम से आराम देना चाहते हैं। मुस्करा कर कहा—'सो तो कर ही रक्खा है!' फिर रुककर कहा—'ललिता को ऐसी दशा में कैसे छोड़ा जा सकता है? उसकी चिन्ता से मेरे प्राण सूखते रहते हैं। आपकी जाति भी महास्वार्थी होती है। चाहे बच्चे के पेट भरने की क्षमता नहीं, उन्हें निमंत्रण दिये जाते हैं। देव जी ने तो ललिता के प्राण लेने की तैयारी कर ली है।

'कुसूर सारा क्या पुरुषों का ही होता है?'

'सारा न सही। तीन चौथाई तो है ही। जब हमारे देश में नारी पुरुष पर अवलम्बित है, तो उसके पालन और रक्षा का भार भी पुरुष पर है।'

'पुरुष बेचारा तो स्वयं ही निरुपाय है। अपनी रक्षा तो कर नहीं पाता। तुम्हीं कहो सत्तर रुपल्ली में मैं क्या तो स्वयं खारहा हूँ और क्या अपनी आश्रिता को खिला रहा हूँ', राज ने बात मजाक में उड़ाई।

'धत!' गरिमा लजा गई—'पर तुम देव जी को समझा दो। इस बार सदा को छुट्टी कर लें।'

'मतलब यह कि सन्यास ले लें?' राज ने चुटकी ली।

'सन्यास क्यों, एक ब्याह और कर लें!' गरिमा ने उलट कर चोट की—'तीन बच्चे काफ़ी हैं। अपना या ललिता का आपरेशन करवा दें।'

'अम्मा-बाबू जी का मुँह देखा है? आपरेशन का नाम सुनते ही देव को सैकड़ों गालियाँ पड़ेंगी।'

गरिमा ने एक क्षण रुक कर, मानों स्वयं से ही कहा—'तब लगता है यह मोरचा भी मुझे ही लेना पड़ेगा। पर आपरेशन भी तो

तभी होगा, जब ललिता में उसे झेलने की शक्ति होगी। बिना दूध और टानिक के वह उबरेगी कैसे? उसे अभी से इनकी जरूरत है।'

राज चुप रह गया। आज तो वह एक पैसा कर्ज लेने की हैसियत भी नहीं रखता। उसने गरिमा को यह भी नहीं बताया है कि उसकी नौकरी घपले में पड़ी है। स्कूल का बजट कम हो गया है और स्कूल में सबसे फालतू डास मास्टर ही समझा गया है।

गरिमा भी इन दिनों न तो यही सम्भव पाती है कि सास-ससुर का विरोध झेल कर भी बाहर निकल कर काम खोजने लगे और न ही अधिक दिन इतना काम करने की शक्ति अपने में पाती है। फिर भी ललिता के प्रसूति से सकुशल निकल आने तक उसे कुछ भी करने की फुरसत नहीं है। और कुशल प्रसूति के लिये कम से कम सौ रुपयों की अभी जरूरत है। उसने सोचा कि शायद उसकी माँ के पास कुछ रुपये हों। 'मैंने ढाई वर्ष उन्हें कमा कर दिया है। वे मुझे क्या सौ रुपये न देंगी?'

दूसरे दिन ही वह दिन भर के लिये सास से छुट्टी लेकर रीता के साथ मायके पहुँची।

शहर के शहर में होने पर भी लक्ष्मी ने बेटी को लगभग वर्ष भर बाद देखा था। देख कर अवाक् रह गई! काली, दुबली, हाथों में मात्र काँच की चूड़ियाँ और देह पर वही गौने की सिल्क की साड़ी।

भौतिक वैभव ही मनुष्य के ऊपरी सुख दुख का प्रमाण होता है। लक्ष्मी ने सोचा बेटी वहाँ बहुत दुखी है। जो लड़कियाँ माता-पिता की बात न मान कर अपने मन से बिवाह करती हैं, वे दुखी ही तो होंगी। मुझसे कहती थी राज दो सौ रुपये पाता है। दो सौ होते, तो यही दशा रहती?

कुशल-मंगल के बाद उन्होंने बेटी को सुना कर पति से कहा—'भाग्य बिना कुछ नहीं होता। भाग्य हो तो लड़की बूढ़े के जाकर भी सुखी

रहती है। चालाक तो शान्ता निकली। कुँआरी भी मौज मारती रही और उन वकील साहब को फाँसकर अब रानी बन बैठी। परसों उसके लड़के के डशटौन (नामकरण) मे गई थी। कितनी बड़ी तो दावत की। गहनों से देह फटी पड़ती थी। लड़का भी ऐसा सुन्दर हुआ है कि क्या कहूँ? बिलकुल गुलाब के फूल सा है। एकदम माँ की तरह गोरा-चिट्टा! वकील साहब तो सावले हैं। वकील साहब की बदौलत शान्ता के माँ-भाई भी मौज करते हैं। सारा खिलाना-पिलाना उसकी माँ करवा रही थीं। वकील साहब की बहन को तो उसने कोने में बैठा दिया था।'

अमरनाथ ने टोका—'होगा! हमें क्या, रुपयों से ही सब कुछ नहीं होता। वकील की उम्र नहीं देखती हो? शान्ता से बीस बरस बड़े होंगे।'

पिता परोक्ष में अपनी बेटी गरिमा का पक्ष ले रहे थे।

'तुम तो सदा उल्टे ही चलोगे।' लक्ष्मी उठ कर चली गई।

गरिमा माँ का रुख देख रही थी। माँ से रुपये माँगने को उसका साहस जवाब दे रहा था। शान्ता के लड़का होने के समाचार से उसका मन उसे देखने को छटपटा आया। उसे अपनी भूल पर पश्चा-ताप हुआ कि क्यों उसके मुख से राज के सामने शान्ता का रहस्य प्रकट हो गया। राज ने उसे उससे मिलने की सख्त मनाही कर दी थी। तभी तो वह पाँच महीने पहले न तो शान्ता के विवाह में गई, न शान्ता के लड़का होने पर। क्यों न वह यहाँ से ही शान्ता के घर हो आये? जो राज को पता चल गया? चल जाने दो, वह कोई उनके घर की गाय नहीं है, जो सदा उनकी रस्सी से बँधी रहे।

उसने भाई से कहा—'प्रमोद, मुझे पाँच रुपये की मिठाई और दो चार खिलौने बाजार से ला दे। मैं शान्ता के घर जाऊँगी।'

तीसरे पहर गरिमा वकील साहब के घर पहुँची। बहुत दिनों पश्चात् दोनों गले मिलीं।

शान्ता ने अपना बालक उसकी गोद में देकर कहा—'सिंह साहब ने आज्ञा दे दी ? वह भी बड़े हजरत निकले। अपनी शादी में मेरा कचूमर निकलवा लिया और मेरी बारी पर. . .खैर वह अच्छे तो हैं ?'

'अच्छे ही हैं।' गरिमा ने बालक का मुँह चूमते हुए कहा—'इसे मुझे दे दो। बड़ा प्यारा है।'

'हाय, छूत लग जायगी !' शान्ता ने आँखें गोल-गोल घुमाकर कहा—'और सच पूछो तो इसे कभी नहीं दूँगी। आगे जो हो, उसे ले लेना। पर क्या तुम्हारी मशीन में जंग लग गया है ? पूरा साल खाली निकल गया।'

'अपना ही पेट पालना दूभर है।' गरिमा का स्वर उदास था।

'और मेरे लाल को ले जाना चाहती है ? वाह', शान्ता ने धीरे से कहा—'इसी कारण तो बुड्ढे को गले लगाना पड़ा। नहीं तो वह मुँह और मसूर की दाल।'

'अब भी तू ऐसा कह रही है ?' गरिमा को शान्ता की बात अच्छी नहीं लगी—'अब तो वह तेरे पतिदेव हैं।'

'यह तुम समझाओगी, क्या तभी समझूँगी ? गरिमा दी, मैं भी अब उनकी विशुद्ध पत्नी हूँ। माना, तुम्हारी जैसी दूध की धुली नहीं हूँ। फिर भी अब तो रोज उनकी गंजी होती चाँद पर बादाम रोगन मलती हूँ। पाँव दबाती हूँ। यही नहीं, उनका चरणामृत भी लेती हूँ।'

'अरे !' गरिमा ने आश्चर्य से आँखें फाड़ीं।

'सुनो तो। इससे मेरी बूढ़ी ननद जी प्रसन्न रहती हैं। यूँ तो वह मुझे वेश्या से कम नहीं समझतीं। पर क्या करें वह ? घर की मालकिन तो मैं हूँ। उनके भाई की घरवाली हूँ। उनकी दृष्टि में पिछले पापों के प्रायश्चित के लिये चरणामृत लेना आवश्यक है। मेरा भी क्या बिगड़ता है, दीदी ? मेरा तो जीवन का मंत्र वही पुराना है—'रोटी खाओ शक्कर से और दुनिया जीतो मक्कर से।'

गरिमा हँसने लगी। इधर-उधर की गप्पों के बाद उसने शान्ता से सौ रुपये उधार मांगे।

शान्ता ने इधर-उधर ताका। ननद या सौत की लड़कियाँ वहाँ नहीं थीं। उसने चुपके से बक्स खोला। और पचासी रुपये लाकर गरिमा को थमा दिये।

'दीदी, मेरे पास केवल इतने ही हैं। अभी वकील साहब को मुझ पर इतना विश्वास नहीं है कि अपनी सारी कमाई मेरे हाथ पर रक्खें। अभी तो गहनों के बक्स की चाभी भी उन्हीं के पास रहती है। फिर जो रुपये बचते हैं, वह मै अपनी गरीब माँ को दे देती हूँ। सिद्धू और छोटे मेरे पास रहते हैं। पर अम्मा तो नहीं रहती न।'

गरिमा ने रुपये ले लिये। उन्हें पर्स में रखते हुए कहा—'बड़े संकट मे पड़कर ले रही हूँ। ललिता के लिये चाहिये। मुझसे तो तू ही अच्छी रही। ब्याह के बाद भी अपनी माँ और भाइयों का पालन तो कर रही है।'

'यह मत कहो, दीदी! वह तो चान्स की बात है। नहीं तो मुझ जैसी लड़कियाँ बुढ़ापे में सड़-सड़कर मरती हैं। सभी कोई बुड्ढे वकीलों को थोड़े ही फाँस सकती हैं। तुम तो शिक्षित हो। कुछ भी हो, एम० ए० की डिगरी का बाजार-मूल्य कुछ न कुछ तो है ही।'

'डिगरी लेकर चाटूँ!' गरिमा ने उसके बच्चे को, जो इतनी देर में उसकी गोद में सो गया था, खटोले पर लिटाते हुए कहा—'ऐसे बुरे घर में फँसी हूँ कि पूछो मत।'

'गरिमा दीदी! वे दिन अब लद गये जब टेन्थ पास लड़की ढूँढ़े न मिलती थी और बी० ए०, एम० ए० लड़कियाँ गजटेड आफ़िसरों की पत्नियाँ बनती थीं। तितली सी बनी क्लबों में घूमती थीं। शापिंग करती थीं। अब तो यदि कुँआरी ही नहीं मरना हो, तो अपने ही जैसे परिवारों, वैसे ही मामूली कमानेवालों से विवाह करने होंगे। उनसे और उनके घरवालों से जूझना होगा। क्यों नहीं, तुम फिर

नौकरी ढूँढ़तीं ? अभी से चेष्टा करोगी, तो कहीं जुलाई तक जगह मिलेगी ।'

गरिमा ने उसके चुटकी भरकर मजाक किया—'तेरी जैसी कला मेरे पास कहाँ है ? नौकरी भी तो सीधे-सीधे नहीं मिलती ।'

'नहीं दीदी ! मैंने भी अच्छे बुरे सभी तरह के आदमी देखे हैं । देश में सभी ही जगत प्रकाश या सिनहा अथवा सेठ चुन्नीलाल नहीं बसते । मैं तो कमजोर थी । अधिक संघर्ष नहीं करना चाहती थी । फिर एक बार बदनामी उठा चुकी थी । मैंने उस मार्ग को सरल पाकर उसे ही अपना लिया था । तुम्हारे सिर पर तो पिता और पति दोनों का हाथ है । दो, चार, छः जगह अर्जी दो ! जाकर मिलो । कहीं न कहीं काम हो जायगा । और सिंह में साहस हो, तो दूसरा काम भी कर सकती हो ।'

'क्या ?' गरिमा की समझ में नहीं आ रहा था कि वह दूसरा कौन सा काम कर सकती है ।

'तुम नाच क्यों नहीं सीख लेतीं ? कुछ सिंह सिखा दे । कुछ बच्चन महराज से सीख लो । दो साल बाद अपना स्कूल खोल लेना । तबला सिंह बजाया करेंगे । अपने काम की बात ही निराली होती है ।'

गरिमा ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—'न, न ! वह इससे सहमत नहीं होंगे ।'

'कौन, सिंह ? तुम भी दीदी, बस एकदम बछिया की ताई हो । यह 'वह, वह' का भय छोड़ दो । अन्यथा सदा ऐसी ही घुटन में सड़ोगी । आखिर आगे सिंह को कौन सी कलेक्टरी मिल जायगी, जो तुम परदे की बेगम बनी रहना चाहती हो ?'

'सो तो ठीक है ।' गरिमा ने स्वीकार किया—'राज को मैं जितना उदार हृदय समझती थी, वह उतने नहीं हैं । फिर बाबू जी के आगे उनकी चलती भी नहीं ।'

'हूँ !' शान्ता ने मुँह बिचकाया—'यह कहो कि वह भी तुम्हें

रनिवास में कैद करके रखना चाहते हैं। पर जब राजपाट और महल नहीं है, तो क्या भूखों मरोगी? अरे बाबा, बरतन रगड़कर, हाथ मुँह काले करने से तो लड़कियों को पढ़ाना और नाच सिखाना लाख गुना अच्छा है।'

गरिमा चुप हो गई। वह स्वयं भी इससे सहमत है। परन्तु तनिक-तनिक सी बात पर उसे इतना विरोध सहना पड़ता है, तो क्या वह बड़े विरोधों के सामने टिक सकेगी?

उसे चुप देख कर शान्ता बोली—'अच्छा चलो, मौसी बनने की खुशी में थोड़ी गोंद पंजीरी तो खा लो।'

गरिमा उसके साथ भंडार घर में जाने के लिये उठी ही थी कि चन्द्रा ने भीतर आकर कहा—'दीदी जी! बैठक में प्रमोद आया है। आप तुरन्त चलिये! आपकी सास ने फ़ौरन बुलाया है।'

'ले बाबा, आ गया तेरा परवाना।' शान्ता ने एक थैले में गोंद और जीरा-पाक बन्द करके गरिमा को थमा दिया।

गरिमा घर न जाकर सीधी ससुराल पहुँची। वहाँ ललिता के लिये कोठरी साफ़ की जा रही थी।

★

पूरी रात ललिता को तड़पते ही बीत गई थी। मोहल्ले की दो दाइयाँ बैठी थीं और प्रसव नहीं हो रहा था।

गरिमा ने देवर को बुलाकर धीरे से कहा—'देव बाबू, अस्पताल ले चलो। मुझे तो घर पर मामला सम्हलता नहीं दिखता। और मेरी मानो, तो इस बार उसका आपरेशन भी करवा ही दो।'

देव ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—'अम्मा तूफ़ान बरपा कर देंगी!'

गरिमा को क्रोध आ गया। ललिता की पीर उसके कलेजे को काट रही थी।

उसने तेज पड़ कर कहा—'अम्मा का डर तो आपको है, पर भगवान से भी तो डरो। देखते नहीं, उसकी क्या दशा है?'

देव की आँखों में आँसू आ गये—'भाभी, इस बार ललिता बच जाय, तो सच कहता हूँ आगे के लिये कान पकड़ता हूँ।'

'बहुत देखे हैं कान पकड़नेवाले।' गरिमा को इतने दुख में भी हँसी आ गई—'तुम केवल इतना ही करो कि लेडी डाक्टर को लिख कर दे देना। बिना पति-पत्नी की सम्मति के वह लोग आपरेशन नहीं करतीं।'

'आपरेशन!' न जाने सास ने कैसे सब जान लिया—'बहू रानी, दुनिया भर के कुलच्छन कोई तुमसे सीख ले! यह क्या उल्टी-सीधी पट्टी पढ़ा रही हो देव को!'

वह एकदम उसके सिर पर चढ़ गई—'पता है मेरे पूरे तेरह हुए! जिनमें कुल यह छः दीख रहे हैं। मैं यह सब नहीं होने दूँगी! वाह, वाह, कोई दस-पाँच हो चुके हैं, जो आपरेशन करा दो।'

'अम्मा!' गरिमा भी चमकी, चाहे घर में पिलाने को दो बूँद दूध भी न हो—चाहे माँ के प्राण ही क्यों न निकल जायें, पर बच्चे अवश्य होने चाहियें!'

'तुम अपनी मालिक हो।' सास भी गुर्राई—'पराई बेटी को बाँझ बनानेवाली तुम कौन?'

गरिमा पाँव पटकती ऊपर चली गई। उसे बड़ी जोर से रुलाई आ रही थी। नीचे से ललिता की चीख सुनी, तो उल्टे पाँव भागी।

किसी प्रकार प्रसव हुआ। ललिता का वह शिशु केवल दो घन्टे साँस लेकर दूसरे लोक को चलता बना।

सास को गरिमा पर व्यंग्य करने के लिये एक अवसर और मिल गया। मोहल्ले भर में यह बात फैल गई कि पहले से ही जिठानी तो जलती थी। न जाने क्या टोना कर दिया कि लड़के ने साँस ही न भरी।

सास ने सभी आई-गइयों के आगे रोना रोया—'नौ महीने खुद दुख झेला। हाय, मेरी बहू के तोते को न जाने किसकी नज़र खा गई! बच्चे ने माँ का दूध भी न जाना और वह चलता बना। हाय, हाय! बीबी जी, तुमसे क्या बताऊँ, ऐसा सुन्दर भूरा-भूरा लड़का था, बड़ी-बड़ी आँखें और सुआ सी नाक, नरेन सुरेन तो उसके आगे कुछ भी न लगते।'

पड़ोस में भी सहानुभूति पाकर उस कथा में चार बातें जोड़ देतीं। गरिमा को सब सुनना पड़ा। ललिता का यह शिशु बहुत ही दुर्बल हुआ था। एकदम सूखा था। बड़ी-बड़ी आखों और सुआ सी नाक भी नहीं थी। परन्तु मरने के बाद उसमें सारे ही गुण आ गये थे।

ललिता उस दिन लगभग बेहोश सी ही पड़ी रही। वह भी बहुत दुर्बल हो गई थी। रात को जब सब सो गये, तो उसने गरिमा से पूछा—'जीजी, मैंने तो ठीक से देखा भी नहीं था। किसकी सूरत पर था?'

सारे दिन के व्यंग्यों से गरिमा त्रस्त थी। देवरानी के वाक्य ने उसका मन दुखा दिया—'ललिता!' उसने उसका हाथ थाम कर कहा—'क्या तुम भी यही सोचती हो कि मेरी अशुभ कामना से बच्चा मर गया?'

'छी, जीजी! यह तुम क्या कहती हो?' ललिता ने अपने कमज़ोर हाथ से उसके आँसू पोंछ दिये—'मैंने तो यूँ ही पूछा था। जन्म देने से मोह हो जाता है न। वैसे तो मैं सोचती हूँ अच्छा ही हुआ। यह दुख तो चार दिनों में भूल जायगा। पर अब मैं अपने सुरेन को अच्छी तरह देख-भाल सकूँगी। देखो न, उसका पेट कितना बढ़ता जा रहा है।'

गरिमा का मन आश्वस्त हो गया। उसने देवरानी के सिर पर हाथ फेरा और पूछा—'थोड़ा सा दूध पी लो। दो बूँद ब्रान्डी भी ले लो, तो देह में फुरती मालूम पड़ेगी। लाऊँ?'

'ब्रान्डी कहाँ से आई, जीजी?'

'मैंने मँगा रक्खी थी।'

गरिमा ने उठ कर दूध गरम किया। एक चम्मच ब्रान्डी देकर ऊपर से ललिता को उसने एक गिलास दूध पिला दिया। अच्छी तरह

ललिता का मुख पोंछ कर फिर सावधानी से उसे करवट बदलवा दी।

सचमुच पाँच मिनट बाद ही ललिता को लगा जैसे प्राणों में कुछ शक्ति सी आई हो। उसने जिठानी का हाथ पकड़ कर कहा—'जीजी! तुमने ही मुझे बचा लिया। अन्यथा भाभी के राज में मुझे सौरी में जाने से पहले तक रसोई बनानी पड़ती थी। इस बार तो सातवें महीने ही रसोई छूट गई थी।'

'तेरे में कुछ बचा भी है?' गरिमा ने उसके बालों में उँगलियाँ फिराते हुए कहा—'एक बात मानोगी?'

'जीजी! एक क्यों, तुम्हारी तो मैं हजार बातें मानूँगी।'

'तो देख, तू इस बार ठीक होने पर, चाहे कैसे भी हो, सिलाई-कढ़ाई के स्कूल में नाम लिखा ले। अपने हाथ में एक कला होनी चाहिये। देव जी, इस बार पास हो भी जायँ, तो इसी साल से कमाई थोड़े ही करने लगेंगे। कुछ न होगा, तो कुछ दिन बाद रुपया सवा रुपया तो तू घर में बैठकर भी कमा लेगी। हाथ के कामों में इससे अधिक आय होती भी नहीं है। पर कुछ न होने से, तो यह भी गनीमत रहेगा। अपने बच्चों के दूध नाश्ते, अपने लिये बूँद भर सिर का तेल या साबुन के लिये तो किसी का मुँह न ताकना पड़ेगा।'

ललिता गरिमा की इस उत्साहवर्धक सलाह पर उछल नहीं पड़ी। कुछ देर में बोली—'दीदी, मैं तो स्वयं चाहती हूँ। पर मैं स्कूल जाऊँगी, तो नरेन, सुरेन को कौन रखेगा? घर का काम क्या तुम अकेली ही करोगी?'

'मैं तो स्वयं नौकरी करने की सोच रही हूँ।'

'वाह, तब तो आनन्द ही आ जायगा।' ललिता मुस्कराई—'अम्मा रोटियाँ बनायेंगी। रीता तारा बरतन मलेंगी और हम लोग स्कूल में पढ़ेंगी, पढ़ायेंगी। तब तो बाबू जी तो हम दोनों को चौबीस घन्टे का नोटिस देकर निकाल देंगे।'

गरिमा ने उसके हाथ दबाते हुए कहा—'हम कोई घर के नौकर थोड़ा ही हैं, जो निकाल देंगे। वह चाहे जितना कहें, हम निकलेंगे ही नहीं।'

'जीजी! और यह न मानें, तो?'

'उन्हें मानना ही पड़ेगा। तू बिलकुल न दबना। क्या कर लेंगे? बहुत होगा बोलना छोड़ देंगे। छोड़ दें, थोड़े दिनों में आप ठीक हो जायेंगे। अग्नि को साक्षी देकर आई हूँ। छोड़ना कोई हँसी खेल नहीं है।'

'जीजी, डर लगता है। सब जगह बदनामी होगी कि इनकी बहुयें बड़ी बेशरम हैं। सबके सर पर पाँव रख कर चलती हैं।'

गरिमा ने उसका माथा सहलाते हुए उत्तर दिया—'पाँव तो हम जमीन पर ही रक्खेंगी। पर हाँ तनिक मजबूती से रक्खेंगी। मै तो तेरे ही भले के लिये कहती हूँ। आगे तेरी इच्छा है। भाभी चुपचाप लखनऊ में अपनी सारी कमाई समेटे बैठी हैं। उन्हें तो बदनामी से डर न लगा। हम ही डर-डर कर मर जायें क्या?'

ललिता कुछ देर सोचती रही। फिर निश्चय से बोली—'अच्छा जीजी, जो होगा देखा जायगा। इस बार मैं भी स्कूल जाकर ही दम लूँगी। पर जीजी तुम साथ न छोड़ना। नहीं तो टाँय-टाँय फिस हो जायगी।'

'मैं भला कहाँ जा रही हूँ?' गरिमा ने उसका सिर गोद में रख लिया।

ललिता को नींद आ चली। उसके नेत्र मुँदने लगे।

गरिमा ने उसे ठीक से कपड़ा उढ़ा दिया और पास के खटोले पर स्वयं भी लेट गई।

१४

एक महीने में ललिता उठ खड़ी हुई। घर का बहुत सा काम उसने सम्हाल लिया।

गरिमा ने स्वस्ति की साँस खींची। लगभग पाँच छः महीनों से उसे यह होश ही न रहता था कि कब सवेरा हुआ और कब रात हो गई।

राज भी इधर एक ट्यूशन पा जाने और इस वर्ष बी० ए० की तैयारी के कारण व्यस्त रहता था। परीक्षा देकर उसे भी पढ़ने से कुछ छुट्टी मिल गई। स्वभावतः गरिमा अब फिर राज का सामीप्य चाहती थी। अपने पिछले दिनों की कार्यव्यस्त उदासीनता को धोकर अभी कुल सवा साल पुराने विवाह के दिनों को फिर से रसमय करना चाहती थी। उसकी सभी साड़ियाँ फट चली थीं।

उसने पहली बार राज से कहा—'इस बार हमें दो अच्छी वायल की साड़ियाँ ला देना।'

पास में पैसा हो तो मनुष्य इसके लिये तरसता है कि कोई उससे कुछ मांगे। वह किसी की इच्छा या आवश्यकताओं को पूर्ण करे। किसी पर अपना सब कुछ लुटा दे। परन्तु खाली जेब होने पर किसी की फरमाइश केवल अखरती ही नहीं क्रोध का संचार भी करती है।

राज ने तनिक चिड़चिड़ा कर उत्तर दिया—'सब कुछ समझ बूझ कर भी तुम कैसी बात करती हो? ज़हर खाने को तो जेब में पाई बचती नहीं।'

गरिमा को धक्का सा लगा।

यूँ वह समझदार नहीं है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। परन्तु उसका पति प्रेमी कुछ त्याग कर, कुछ कष्ट उठा कर, उसके लिये

कुछ करे, यह इच्छा तो उसे भी थी। उसने सोचा था कि राज कदाचित् उसकी प्रथम इच्छा सुन कर फूल उठेगा। उसे चुम्बनों से भरकर कहेगा—'रानी! इतने दिनों में माँगा भी तो क्या? वायल की साड़ी। कुछ और माँगतीं।'

और तब शरमाई हुई गिरी उसके वक्ष में मुख छिपा लेगी। राज चाहे उधार करके ही लायें, उसी रात उसके लिये साड़ियाँ ले आयेगा।

राज के रूखे स्वर ने उसे मर्माहत कर दिया।

थोड़ी देर चुप रह कर उठते हुये बोली—'इसी साहस पर चाहते हो कि मैं घर की बहू बनी बैठी रहूँ। पहनने को कपड़ा न हो तब भी आपके श्रीमान पिता जी की मर्यादा को ही ओढ़, बिछा कर दिन काट दूँ! मैं ऐसा नहीं कर सकती।'

राज को बात कहने के बाद संकोच हुआ था कि क्यों ऐसी बात कही? परन्तु गरिमा के वाक्यों ने उसके मन की इस भावना को पुष्ट कर दिया कि एम० ए० पास लड़की उससे कभी नहीं दबेगी। अब तक जो वह उसका सम्मान करती थी वह मात्र उसका सौजन्य था, राज का अधिकार नहीं।

फिर भी राज उत्तर देने से थोड़ा ही चूक जाता। उसने उसी तार से कहा—'तुम भला ऐसा क्यों करोगी? वह तो मेरी अपनी मूर्खता थी कि एम० ए० पास लड़की को जो राजमहलों में रहने के स्वप्न देखती थी, इस झोपड़ी में ले आया। पर इसमें तुम्हारा अपना भी दोष है। बेकार ग्रेजुएट से विवाह करके तुम ने बड़ी आशायें ही क्यों बाँधी?'

राज को आशा थी कि सदा की भांति एम० ए० पास के व्यंग्य से गरिमा दब जायगी। अभी तक गरिमा ने सदैव ही राज की इस हीन भावना को उसके प्रेम और कला की दुहाई देकर सन्तुष्ट रक्खा था। पर आज वह भी तीखी पड़ गई। अभावों के दिवस, व्यक्ति के मन की आर्द्रता सुखा देते हैं।

उसने भी तुर्की बतुर्की उत्तर दिया—'राज महल के स्वप्न चाहे न भी देखे हों, पर कन्धे से कन्धा भिड़ा कर कर्मक्षेत्र में उतर कर जीने के स्वप्न तो देखे ही थे। एम० ए० पास लड़की, मात्र पति की अंक-शायिनी ही नहीं बनेगी, सच्चे अर्थों में अर्द्धांगिनी, अर्थात् आधा हिस्सा, आधा अधिकार माँगनेवाली—होगी, इतना तो तुम्हें भी विचार ही लेना था।'

राज ने उत्तर नहीं दिया। आग्नेय नेत्रों से उसे घूरकर बाहर चला गया।

आज स्कूल में उसे नोटिस मिल गया था। बजट और सीखने वाली लड़कियों की कमी के कारण प्रधानाध्यापिका ने उसे अकेले में बुला कर कहा था—'मिस्टर सिंह, मुझे बहुत दुख है। मई के बाद नृत्य की कक्षायें बन्द की जा रही है। हाँ, जो पाँच सात लड़कियाँ सीखती हैं, उन्हें चाहे तो आप यहीं अथवा अपने घर पर सिखा सकते हैं। कुल पैंतीस रूपये बना करेंगे उससे। परन्तु क्या करें, स्कूल अधिक घाटा नहीं उठा सकता।'

सिंह को इसकी सुनगुन पहले से ही थी। क्योंकि वास्तव में लड़कियाँ कम हो गई थीं। फिर तृतीय वर्ष की परीक्षा दिलाने से अधिक की विद्या उसके पास थी भी नहीं। इस कारण भी कई लड़कियों ने सीखना बन्द कर दिया था। स्वयं अपनी परीक्षा में समय देने के कारण उसने इधर कक्षा पर ध्यान भी कम दिया था। वह चुपचाप चला आया था।

गरिमा से यह बात वह कल से बताना चाह कर भी कह न सका था। उसने इधर उधर दो चार स्थानों पर प्रार्थना-पत्र भी भेज रक्खे थे। जिसमें अपने ग्रेजुएट होने का उल्लेख किया था। इस बार उसने पेपर अच्छे किये थे। पास वह हो जायगा यह निश्चित था। और जुलाई में जब तक कहीं से इन्टरव्यू की काल (पुकार) आयेगी वह प्रमाण पत्र न सही रोल नम्बर लिख कर ही काम चला लेगा। एक दो ट्यूशन

तबले का ही मिल जाय तो भी कुछ सहारा लग जायगा। एक मित्र ने एक बड़े घर में ट्यूशन बताई थी। वह मिल जाय तो तीस रुपयों का प्रबन्ध हो जाय। इसके पश्चात ही वह गरिमा से स्कूल की नौकरी छूटने की बात बतायेगा।

इन्हीं तनाव के दिनों में ही गरिमा से उसकी झड़प हो गई। दो दिनों तक कोई एक दूसरे से नही बोला।

गरिमा सोचती जब देखो तब एम० ए० की डिगरी का ताना। एम० ए० पास करना कोई अपराध नहीं है। और क्या राज को यह बात पहले नहीं मालूम थी?

उसने अपने हृदय को टटोला—'क्या मैं उन पर रोब जमाती हूँ?'

बहुत खोजबीन करने पर वह इस निश्चय पर पहुँची—'मैं जो भारतीय पत्नी की भांति राज की प्रत्येक बात सिर झुका कर नहीं मान लेती, उसके विरुद्ध तर्क करती हूँ, इसी से राज को यह भ्रम है कि मुझे एम० ए० पास होने का घमन्ड है। परन्तु क्या अशिक्षित पत्नियाँ पति से नहीं झगड़तीं? हाँ, वे तर्क से काम नहीं लेतीं। उनके पास आँसुओं का हथियार रहता है।'

गरिमा ने विवाह के बाद इस घर में आकर मात्र राज के प्यार या ललिता के स्नेह के अतिरिक्त और अधिक कुछ नहीं पाया था। अब जो राज की ओर से भी खीज और तिरिस्कार की गन्ध आई, तो उसका मन भी कठोर हो चला। वह अपने मायके चली जायगी। उसे सवा साल तो हो गया, रहने के लिये कभी गई ही नहीं!

मायके के साथ ही उसे ध्यान आया—'मायके में ही मुझसे कौन प्रसन्न है? घर की दशा मेरी नौकरी की आय बन्द हो जाने से अबतर हो गई है। माँ व पिता की इच्छा के विरुद्ध मैंने राज से विवाह कर लिया। इससे पिता चाहे मुख से न कहें, मन में तो उन्हें दुख है ही। माँ तो स्पष्ट ही मुझसे अप्रसन्न हैं और वह इस अप्रसन्नता को छिपाती भी नहीं।' क्रोध की झोंक में वह सोचती चली गई—'मैं तो कुमारी ही

भली थी। विवाह करके मुझे क्या मिला ? फिर, विवाह घरवालों की प्रसन्नता से होता, तो कम से कम मायके में स्थान तो रहता ! दुख सुख पड़ने पर चार दिन स्नेहमय आश्रय तो मिलता। अब क्या मिला ?'

क्रोध में विवेक कुंठित हो जाता है। उसे यह स्मरण ही नहीं आ रहा था कि जीवन का वह सूनापन सबके बीच में रहते हँसते-खेलते-खाते भी किसी को अपना न बना सकने की व्यथा, अपने अस्तित्व तक को निष्फल समझने की अव्यक्त पीर, जो प्रत्येक समय बाँस की फाँस की भांति हृदय में चुभती थी, और किसी हँसते हुये जोड़े को बाजार में निकलते देख कर जो अभाव खटक उठता था, वह सब कुछ मिट गया है। तन का अभाव बढ़ जाने पर भी मन उसका भरा-भरा है। उसे क्रोध की झोंक में यह सब याद नहीं आया। वह भी मुँह फुलाये चुप चाप घर के काम में लगी रहती।

राज ने भी क्या कुछ नहीं सोचा इन दिनों में—'एम० ए० पास है तो क्या मुझे मोल ख़रीद लेगी ? नौकरी करके कमा लेगी, बस इसी अभिमान में फूली रहती है। मुझे और बाबू जी को यह अवश्य ही मन ही मन मूर्ख समझती है। इससे तो अच्छा था कि उसी राम-नगरवाली मेंगी लड़की से विवाह हो जाता। न बाबू जी इतने नाराज रहते, न शीला के विवाह के लिये कर्ज लेना पड़ता, न घर में पैसे-पैसे की तंगी रहती।'

गरिमा की कार्य-दक्षता, उसका आपत्ति-विपत्ति में धैर्य पूर्वक साहस से काम लेना, नित्य नये गहनों अथवा कपड़ों के लिये जिद करके रो-धोकर अपने माँ बापों को ऐसे घर में झोंक देने के उलाहने द्वारा मन का आक्रोश न निकालने की वृत्ति भी, उसके मन को शान्त नहीं कर पा रही थी। असल में तो उसके अचेतन में यह बद्धमूल धारणा जमी हुई थी कि पति को पत्नी से अधिक शिक्षित, अधिक योग्य होना ही चाहिये। यही भारतीय परम्परा है। आज वीर पूजा

का युग नहीं है। तलवार द्वारा शौर्य दिखाकर पत्नियाँ जीतने का युग भी नहीं है। आज तो पति के पौरुष और योग्यता का एक मात्र माप है, उसके सम्पत्ति-उपार्जन की क्षमता। लायक लड़का और योग्य वर वही माना जाता है जो माता-पिता को, पत्नी को, अधिक से अधिक कमा कर दे सके। सिंह में योग्यता नहीं है, ऐसा नहीं; परन्तु उसकी योग्यता परिस्थितियो और समाज व्यवस्था के बीच घुटकर रह गई है। वह एक अच्छा मंच-अभिनेता है। निर्देशन और साहित्यिक रुचि भी परिष्कृत है। परन्तु उसकी यह कला मात्र कुछ धनिकों की इच्छा-विलास की भेंट चढ़ कर रह गई। अच्छी अभिनेत्री के अभाव में भी उसकी कला का निखार कुछ रुका है। और वह कला जो उसे और उसके आश्रितों को साधारण जीवन की सुविधा भी प्रदान न कर पाये, उसे लेकर वह क्या करे? वह यदि बहुत सा धन कमा कर गरिमा को गहनों-कपड़ों से लाद कर अच्छा खिला पिलाकर आराम से रख सकने की क्षमता रखता, तो उसे अपने मात्र बी० ए० होने और पत्नी के एम० ए० होने का कलंक न सालता। पर अब बात दूसरी थी।

वह भी दो-तीन दिन गरिमा से नहीं बोला।

इधर गरिमा ने नीलो के मिलने आने पर उससे कह दिया—'बाबू जी से कहना क्या मुझे एकदम ही भुला दिया? एक बार तो लेने आयें।'

नीलो को आश्चर्य तो हुआ, क्योंकि जब होली से पहले बाबू जी ने बुलाने को भेजा था, तो स्वयं जीजी ने ही मना कर दिया था कि अभी ललिता बहुत कमजोर है।

उसने घर जाकर बाबू जी से कहा। अमरनाथ ने दूसरे ही दिन बाबू मक्खन लाल जी के पास प्रमोद द्वारा पत्र भेजा जिसमें लिखा—

'अब तो आपके यहाँ सब प्रकार कुशल-मंगल है। कुछ दिनों के लिये आप यदि गरिमा को मायके जाने की आज्ञा दे दें, तो बड़ी कृपा होगी।'

मक्खन लाल साल भर में बहू को पहचान गये हैं। उसके मन में जो होता है, वह कर लेती है। घूँघट वह नहीं करती। ललिता को घुमाने वह संध्या समय ले जाती है। यही नहीं, फागुन चैत में पड़ोसी बाबू की लड़की दया को पढ़ाने की ट्यूशन भी उसने कर ली थी। यही गनीमत समझो कि उनके कहने सुनने पर वह स्वयं पढ़ाने नहीं गई। दया स्वयं आकर पढ़ जाती थी। घर की आर्थिक दुरावस्था में यदि एक प्राणी का भोजन भी बचे, तो उसे बचत ही समझा जाता है। गरिमा दो तीन मास मायके रह लेगी, तो चार पैसे बचेंगे ही। अमरनाथ कितने भी गये गुज़रे हों, विदाई पर दो धोतियाँ भी देंगे ही।

यही सब सोच समझकर उन्होंने अमरनाथ को उत्तर में लिखा—

'आपकी लड़की है, ले जायें। मुझे कब इन्कार हो सकता है?'

कल गरिमा मायके जायगी। उसने निश्चय कर लिया है। वहाँ से वह तब तक नहीं लौटेगी, जब तक कहीं नौकरी न ढूँढ़ लेगी। राज के झूठे मान-अभिमान को लेकर वह अपनी ही नहीं, साथ में ललिता और उसके बच्चों की भी दुर्दशा नहीं करायेगी। देव जी इस वर्ष पास हो जायेंगे। तब भी वकील होने की डिगरी मिलते ही थैली थोड़ा ही कमा लेंगे? ललिता के साथ रीता को भी सिलाई के स्कूल में भेजने का अर्थ है, पन्द्रह बीस रुपयों का अलग व्यय। सुरेन की दवाओं का जो लम्बा बिल चढ़ता जा रहा है, उसे भी तो उतारना ही है।

और वह स्वयं क्या विवाह करके, इतना अतिरिक्त भार लाद कर भी माँ बनने के सुख से वंचित रह जायगी? अभी वर्षभर से वह न चाहते हुए भी कृत्रिम उपायों द्वारा अपनी सुरक्षा करती आई है। यद्यपि उसे यह सब अच्छा नहीं लगता। यह भय भी है ही कि आगे अधिक आयु बढ़ जाने पर वह बन्ध्या ही न रह जाये। नहीं, नहीं, वह अब कुछ नहीं करेगी।

किन्तु राज जो गरिमा से रूठा रहता है, इससे उसे सबसे अधिक

पीड़ा होती है। क्या वह खुशी से बाहर की नौकरी करना चाहती है ? जाने से पहले वह चाहती थी कि राज से मेल हो जाय।

अपने अभिमान को दबाकर उसने रात को दूध का गिलास पकड़ाते हुए राज से कहा—'मौनी महाराज, दूध पी लीजिये! आपको कष्ट देनेवाली यह गरिमा एम० ए० अब काफी दिन के लिये आपसे बिदा ले रही है। इसलिये उसकी भूल-चूक भी क्षमा कर दीजिये।'

'एं!' राज चौंक पड़ा। उसे अभी तक पता न था कि गरिमा जा रही है।

बात यह थी कि पति-पत्नी के इस मन-मुटाव का पता घर में किसी को न था। सास-ससुर की समझ में गरिमा अपने पति से कह सुनकर जा रही थी।

राज की प्रश्न सूचक 'एं' पर गरिमा ने स्पष्ट किया—'कल बाबू जी मुझे लेने आयेंगे! आपके बाबू जी ने उन्हें मुझे ले जाने की अनुमति दे दी है।'

राज का हृदय निष्फल अभिमान से फूल उठा—'जब सब कुछ तय हो ही चुका है, तो मुझसे कहने की क्या आवश्यकता है ? तुम अपनी इच्छा की स्वामिनी हो।'

गरिमा को बुरा लगा। पर जाते समय कलह करने की उसकी इच्छा न थी। इससे स्वर को यथा-साध्य शान्त रखकर बोली—'तुम्हारे पास रह कर ही तुम्हे कौन सा सुख दे रही हूँ ? फिर भेजने बुलाने का काम मेरे तुम्हारे बाबू जी ने तय किया है। इस समय तो मैं निहायत शान्त बालिका बधू की भांति ही जा रही रही हूँ।'

उसने गिलास पास की तिपाई पर रख दिया और अपनी चारपाई पर लेट गई। रोकते-रोकते भी उसकी सिसकी निकल ही गई। आँखों पर हाथ रख कर राज की ओर से करवट बदलकर पड़ रही।

राज की पीड़ा पर भी वे आँसू मरहम का काम दे गये। चार दिनों के मौन ने भी उसे उबा दिया था। फिर अब गरिमा जा रही है,

बहुत दिनों तक मिलना भी नहीं होगा। और कुछ भी हो, राज की बात रह गई थी। पहले तो वही बोली थी।

राज उठकर उसके सिरहाने आ बैठा। बलपूर्वक उसका मुख अपनी ओर फिरा कर कहा—'अब मेरी सूरत भी बुरी लगती है? जाते समय भी नहीं देखना चाहतीं? अच्छा भई, तुम्हारी इच्छा। मेरा तो भाग्य ही बुरा है। नौकरी छूट ही गई। तुम जा ही रही हो। मैं भी देश-परदेश निकल जाऊँगा...।'

नौकरी छूट गई!

गरिमा एकदम उठ बैठी। लड़ाई-झगड़ा, मान-अभिमान सब जैसे लुप्त हो गया। आसन्न विपत्ति पर जैसे कछुआ अपने सब अंग समेट लेता है, ऐसे ही उसका सारा ध्यान पति की विवशता पर केन्द्रित हो गया। उसने पति के हाथ को सहारे के ढंग से पकड़ लिया, मानो अलक्ष्य सांत्वना देना चाहती हो कि 'डरो मत, मुसीबत में तुम अकेले नहीं रहोगे।'

बोली—'कब नोटिस मिला? मुझे तुमने बताया ही नहीं!'

'कब मैं बता देता? तुम तो साड़ीवाली बात पर ऐसी रूठीं कि मेरी ओर ताकती ही नहीं थी...।'

बात पूरी तरह सत्य नहीं थी। रूठाराठी तो दोनों ओर से ही बराबर थीं। पर गरिमा ने उस समय यह बात नहीं कही। पूछा—'बाबू जी से कह दिया?'

'न। अभी तो नहीं। पर बताना तो पड़ेगा ही।'

'मत बताना। पहले भाई साहब को लिखो कि जैसे भी हो, दो चार महीने सौ रूपये बराबर भेजें। और तुम भी इस नौकरी-चाकरी का चक्कर छोड़कर अपनी लाइन में ही सिर खपाओ।'

'वाह, यह खूब सलाह दी! मेरी लाइन, यानी स्टेज—वह मुझे सौ रूपये भी देता, तो मैं रात दिन उसी में जुटा रहता। पर एक आदमी के श्रम से वहाँ क्या हो सकता है?'

'कोई आदमी इतनी बड़ी दुनिया में अकेला नहीं होता। तुम अपने जैसे ही दस पाँच साथी जुटाकर नाटक कम्पनी चालू कर लो।'

'मेरे जैसे सभी साथी मुझ से ही ठनठन गोपाल होंगे', राज ने दोनों हथेलियाँ आपस में मसलते हुए कहा, 'असली चीज, म्याऊँ का ठौर, तो बिना पकड़े ही रह गया! कलदार बिना नाटक कैसे खेलेंगे? कम्पनी का खर्च कैसे निकलेगा?'

गरिमा हँसी। 'यह सब तो पहले सोचना था जब इस शौक़ के पीछे पढ़ाई छोड़कर कैरियर बिगाड़ लिया था। अब तो जब इससे इश्क़ किया ही है, तो पूरी तरह निभाओ। पृथ्वीराज कपूर ने भी तो निभाया ही। उसने तो सिनेमा में काम करके जो कमाया, वह भी इसी में लगाया।'

'लगाया होगा।' राज झल्लाया—'मैं तो पृथ्वीराज कपूर नहीं हूँ! न ही सिनेमा में अभिनय करता हूँ। मेरे भाग्य में तो क्लर्की के लिये ही धक्के खाने लिखे हैं।'

'इतने निराश क्यों होते हो?' गरिमा ने उसे दुलराया—'तुम्हे एम० ए० पास पत्नी भी मिली है। तुम मुझे नौकरी करने पर लगाओ और स्वयं उधर जुट जाओ। जहाँ हीरोइन न मिले, वहाँ मजबूरी में मुझे ही बना लेना!'

पत्नी नौकरी करे और सिंह स्वयं नाटक कम्पनी में (जिसमें कम से कम वर्ष भर तो एक पैसा मिलने की आशा न थी) लग जाय, यह उसे कुछ जँचा नहीं। पर गरिमा से वह यह स्पष्ट नहीं कह सकता, क्यों कि तब वह तुरन्त तर्क पर उतर आयेगी। सीधे ही कहेगी, 'तुम मुझे अपने से अलग समझते हो। तुम मुझ पर विश्वास नहीं रखते। तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं है...' इत्यादि।

उसने बात पिता पर टाली—'बाबूजी जीना मुश्किल कर देंगे। तुम्हारी स्कूल की नौकरी तो शायद वह हद दरजे की मजबूरी समझ कर सह भी लें, क्योंकि बड़े भइया के व्यवहार ने उनकी कमर तोड़ दी

है। वरना वह अपनी मान्यताओं से डिगनेवाले महापुरुष नहीं थे। पर तुम्हारा स्टेज पर आना, तो वह एक से लाख तक न सहेंगे। वहीं जाकर गालियाँ सुनायेंगे। अपने बाल नोचेंगे। और ताज्जुब नहीं, जो मुझे वहीं चप्पल खींच कर मारें!'

गरिमा इन सब विरोधों से अनजान नहीं है। पर इसके डर से राज जीवन भर क्लर्क बना रहे, वह स्वयं घुट घुटकर मरती रहे, ये उसे स्वीकार नहीं। उसने इस बात को तर्क का विषय नहीं बनाया। उल्टे राज से कहा—'बाबूजी के क्रोध से तो डरते हो, पर क्या यह तुम्हें अच्छा लगेगा कि वह अब इतनी उम्र पर फिर से पान-बीड़ी की दूकान खोल लें? मैंने अपने कानों से सुना है, वह अम्मा से कह रहे थे—तुम अपना एकआध गहना दे दो। तो मैं उसे बेचकर घर की बैठक में ही पान-सिगरेट लगा कर बैठ जाऊँ।—अम्मा इस पर तैयार नहीं हुई।'

'सच?' राज आकाश से गिरा। कुछ भी हो उनके परिवार का समाज में एक मान है। पान-बीड़ी की दुकान उससे बहुत नीची आती है। दोनों हाथों से माथा थामकर बोला—'यह सब भाई साहब की कृपा है। लखनऊ जाकर वह इतने बदल गये हैं!'

'उन्हें ही क्यों दोष देते हो? सम्भव है, हम भी उस दशा में यही करते। क्या वह अपने बच्चों का भविष्य न सोचें? फिर भाभी जैसे पत्नी को लेकर चलना भी बड़े बूते का काम है।'

राज वैसे ही माथा थामे बैठा रहा। दूसरों की निन्दा या आलोचना से उसकी अपनी बेकारी की समस्या हल नहीं हो सकती।

१५

गरिमा को मायके आए तीसरा महीना था।

इस बीच में राज उससे केवल दो बार मिलने आया। वह माँ के घर भी उससे परदा नहीं करती। जलपान अथवा भोजन भी स्वयं परोस कर खिलाती है। फिर भी राज को ससुराल जाने की इच्छा नहीं होती। क्योंकि कुछ भी हो, वह उस घर का जामाता है। फिर उसने बिना अधिक दहेज लिये ही विवाह कर लिया है। वह चाहता है कि वहाँ उसका विशेष आदर हो। जमाई का आदर कैसे होता है, यह वह एक बार केवल एक दिन के लिये आये अपने साढ़ू गिरीश की खातिर में देख चुका है। यूँ घर के बच्चे उससे भी स्नेह करते हैं, अमरनाथ भी भली प्रकार बोलते हैं। पर सास उसे उस ललकते मन से ग्रहण नहीं करतीं। भोजनपान में भी यह कहकर कमी कर लेती हैं कि 'नीलो बेटी, जो बना है, वही ले आ न। तेरे ये जीजा तो घर के ही लड़के हैं।' राज को भोजन का साधारण होना उतना नहीं खलता, जितना सास का उससे खिंचा रहना। आखिर वह भी कोई दूधपीता बच्चा नहीं है। घरके लड़के का बहाना करके, उसे न तो वह आत्मीयता मिलती है और न जमाई का आदर-सत्कार ही, वह दोनों बार गरिमा के बुलाने पर ही गया था।

गरिमा ने उसे बताया उसने तीनों स्कूलों में प्रार्थनापत्र दे दिया है। पर कोई आशा नहीं दिखती, क्योंकि अब तो एल० टी० या कोई भी ट्रेनिंग पाये बिना स्कूलों में पूछ कम ही है। राज ने भी उसे बताया कि उसने भी दो-चार जगह दौड़-धूप की है।

फिर दूसरी बार राज ने पूछा—'घर कब तक चलोगी?'

गरिमा को भी मायके रहने का बहुत चाव नहीं है। वह यहाँ केवल इसलिये पड़ी थी कि यहाँ से कहीं मिलने जाने में आसानी रहती

है। ससुराल में सास-ससुर, ददिया ससुर सभी से पूछना-पुछवाना और प्रश्नोत्तरों के बाद ही अनुमति मिलने की सम्भावना रहती है।

बिना नौकरी पाये वह ससुराल नहीं जायगी। बाद में जो होगा, वह भुगत लेगी। पर इधर काम की खोज में दौड़ करे और उधर ससुर जी के उपदेश सुने, ये दोनों काम उसे कठिन लगते हैं।'

उसने राज से कहा—'अब काम बन जाने पर ही आऊँगी।'

राज ने जान लिया कि गरिमा नौकरी करने पर तुली है। वह उसे किस बल पर मना कर सकता था? फिर भी उसने उससे कहा—'मुझे अब तभी बुलवाना, जब साथ चलने की इच्छा हो। इधर बहुत से कामों मे फँसा हूँ। छुट्टी नहीं रहती।'

जुलाई में स्कूलों में जगह मिलने की आशा भी टूट गई। केवल उसकी अपनी प्रिंसिपल ने आशा बँधाई थी कि अगस्त में मिसेज़ चड्ढा तीन महीने की छुट्टी जा रही हैं। एवज़ी पर उसे बुला लेंगे।

गरिमा को एवज़ी पसन्द नहीं। उसने सोचा, क्यों न वह सरकारी क्लोदिंग फैक्ट्री के आफ़िस में अर्जी भेज दे? ससुर जी और कदाचित राज को भी दफ़्तर में बाबुओं के साथ बैठकर काम करने देने में आपत्ति हो। पर किया क्या जाय?

उसने राज के बिना बताये ही, क्लोदिंग फैक्ट्री में प्रार्थनापत्र दे दिया।

कॉल भी आ गई। इन्टरव्यू में पहुँची, तो स्त्रियों में अकेली वही थी। वह कुछ जल्दी पहुँच गई थी। उस समय केवल दो लड़के ही आये थे। चपरासी ने उसे एक दूसरे कमरे में बैठा दिया।

साथ लाई पत्रिका पढ़कर वह समय काटने लगी।

ग्यारह बजे चपरासी ने उसे पुकारा—'मेम साहब।'

वह साड़ी का पल्लू सम्हाल कर उठी। मन हुआ शीशा होता, तो अपनी शक्ल देखती। लिपस्टिक कहीं फैल तो नहीं गई? वह रूज़

और लिपस्टिक कभी कभी ही लगाती है। पर भीख के लिये भी वेष चाहिये। रूप साधारण हो, तो ऊपरी शृङ्गार चाहिये। जीवन के इन नवीन सत्यों को इन चार महीनों में वह शान्ता के मुख से सौ बार सुन चुकी है। वह कहती अच्छा रूप तो सभी के नेत्रों को सुख देता है। बाहर काम करने के लिये आप रूप की ज्वाला बनकर न भी निकलें, तो राख भी तो न बन जायें। और यदि तुम्हारा मन साफ़ है, तो मात्र लिपस्टिक पर मोहित होकर कोई तुम्हें हड़प नहीं सकता।

अभिनय मात्र स्टेज पर ही नहीं किया जाता। यह संसार ही रंगशाला है। सभी के चेहरों पर रंगे नक़ाब पड़े हैं। गरिमा ने भी यह तो स्पष्ट ही देखा है कि 'मेम साहब' बनकर निकलने पर सम्मान कुछ अधिक ही मिलता है।

वह भीतर पहुँची। कुर्सियों पर तीन साहब बैठे थे। एक बूढ़े से काली शेरवानी और सफेद चूड़ीदार पैजामे में। इन्हें उसने वकील चन्द्रिका प्रसाद के यहाँ भी देखा था। बीच की कुर्सी पर गोरे से ठिगने कद के एक अधेड़ सज्जन बैठे थे। उनके बाल, जो थोड़े से ही थे, इतने अधिक स्याह थे कि गरिमा को लगा उनमें खिज़ाब लगाये हैं। बढ़िया सर्ज का सूट, हाथों में सिगार—उसे लगा सबसे बड़े अफ़सर कदाचित यही हैं। क्योंकि तीसरी कुर्सीवाले तो अपनी खादी की धोती कुरते से स्पष्ट ही ऊँचे नेता मालूम पड़ते थे।

गरिमा ने तीनों को बारी-बारी से नमस्कार किया। सूटधारी ने उसे ऊपर से नीचे तक नापनेवाली दृष्टि से देखा। गरिमा एक बार सिहर सी गई। बैठने की आज्ञा मिलने पर कुर्सी भी ग्रहण कर ली।

अचकनवाले बूढ़े ने अपनी भवों पर बल देकर अंग्रेजी में पूछा—'मिसेज श्रीवास्तव, ऐसा याद पड़ता है कि जैसे मैंने आपको कहीं देखा हो?'

'जी, मैं तो इसी शहर की लड़की और बहू दोनों ही हूँ। फिर आपने अभी हाल में ही वकील चन्द्रिका प्रसाद जी के यहाँ मुझे देखा

होगा। उनकी पत्नी मेरी क्लास फेलो रही है।' गरिमा ने अंग्रेजी में ही उत्तर दिया।

'ओ यस, यस!' बूढ़े ने सिर हिलाया।

सूटधारी की आँखों में चमक सी आ गई। उन्होंने सिगार की राख एस्ट्रे में झाड़ी। चश्मा जरा ऊँचा किया और अंग्रेजी में ही प्रश्न किया—'माफ कीजिये, मिसेज़ श्रीवास्तव, आपने स्कूल कालेज के मुकाबिले आफ़िस की सरविस को क्यों पसन्द किया? वैसे तो देहली, बम्बई, कलकत्ता और अब लखनऊ जैसे शहरों में तो लड़कियाँ सभी आफ़िसों में काम करने लगी हैं। पर इस जैसे छोटे ज़िले में जरा कम ही लड़कियाँ इतनी एडवान्स हैं। आप तो एम० ए० हैं।' उन्होंने अपने सामने रक्खी उसकी अरजी पर दृष्टि डाली।

'जी, सर। सरकारी स्कूलों के लिये ट्रेनिंग आवश्यक होती है। मैं किन्हीं कारणों से बी० टी० ले नहीं सकी। फिर प्राइवेट स्कूलों में जहाँ अक्सर १००) की रसीद लेकर ८०) लेने पड़ते हैं, मुझे काम करने की इच्छा नहीं होती। फिर एम० ए० तक पढ़कर भी यदि मैं अपने को मनुष्य न समझकर मात्र नारी ही समझूँ, तो शिक्षा का अर्थ ही क्या?'

गरिमा ने सोचा कि उसने पहली बार में ही अच्छी अंगरेजी बोल कर धाक जमा दी।

वह बोलती ही गई, 'यद्यपि आफ़िस में सरविस के लिये मैंने प्रथम बार ही आवेदन दिया है। परन्तु यदि आप मुझे अपने यहाँ जगह देंगे तो मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि किसी पुरुष की अपेक्षा कार्य करने में मैं पीछे नहीं रहूँगी। जितनी गलतियाँ आप का पुरुष सहकारी करेगा, मैं पूरा प्रयत्न करूँगी कि मेरी भूलें उससे कम ही हों।' गरिमा को पसीना आ गया था। उसने रूमाल निकालकर माथे को लगाया। रूमाल शान्ता का था और उसमें इत्र बसा था। कमरे में सुगन्ध की लहर फैल गई।

तीनों सज्जन हल्के से मुस्कराये। सूटधारी महोदय ने ही दूसरा प्रश्न किया—'टाइप तो आप न जानती होंगी ? क्षमा कीजिये, आपसे टाइपिस्ट का काम न लिया जायगा। यूँ ही पूछ रहा हूँ ! आफ़िस में इसकी भी ज़रूरत पड़ जाती है।'

'जी अभी तो नहीं जानती। पर पन्द्रह दिन से सीखना शुरू कर दिया है। हारमोनियम पर दौड़नेवाली उँगलियाँ टाइप पर भी जल्दी ही भागने लगेंगी।'

लड़की हाज़िरजबाव है। तीनों को लगा, उन्होंने और दो-चार प्रश्न किये। फिर बताया कि उसे दस दिन के भीतर उत्तर मिल जायगा।

वह उठी, नमस्कार करके बाहर चली। वह अपने साहस पर सन्तुष्ट थी। आते-आते उसके कानों में आवाज़ आई (यह शायद वही नेता जी बोले थे) 'छोकरी तेज़ है!'

गरिमा मन ही मन मुस्कराई। चिक उठाकर बाहर आते ही हठात् वह काँप गई। लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बची। उसके पीछे भीतर इन्टरव्यू के लिये आनेवाला उम्मीदवार राज था।

राज भी उसे देख कर चौंका—'तुम ?' उसके मुख से निकल ही पड़ा।

गरिमा सिर झुकाकर चिक से बाहर आ गई।

बढ़िया इन्टरव्यू देने का उसका सारा आनन्द किरकिरा हो गया। उसकी इच्छा थी कि यहाँ से सीधे वह शान्ता के घर जायगी। उसके गोल-मटोल मुन्ना को खिलायेगी। पर अब वह रिक्शा करके फ़ौरन घर आ गई।

माँ ने उसका चेहरा फक देखा, तो पूछा—'क्या रहा ?'

'ठीक ही रहा।' उसने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

फिर जल्दी-जल्दी ऊपर चली गई। लक्ष्मी धीरे-धीरे बड़बड़ाई—'सो तो सूरत से ही मालूम होता है। अरे बाबा, लड़कियों के स्कूल

में पढ़ाना और बात है, दफ़्तर में काम करने के लिये हाथ भर का कलेजा चाहिये। साहबों के सामने कहीं बोली फूटती है!'

गरिमा ने उत्तर नहीं दिया। उसके मस्तिष्क में बराबर यही परेशानी थी कि राज ने क्या सोचा होगा? यही न कि मुझसे बिना बताये चोरी-चोरी इन्टरव्यू में गई थी।

माथे पर हाथ रखकर वह फ़र्श पर ही लेट गई, क्योंकि कमरे में पड़ी चारपाई पर मुन्नी सो रही थी। उसकी चिन्ता जारी रही— 'अब यदि राज को न लेकर मुझे ही ले लिया गया तो? इसकी संभावना भी बहुत है, क्योंकि मैं एम० ए० हूँ। तब क्या मुझे वहाँ नौकरी नहीं करनी होगी? कर लूँगी, तो राज को दुहरा दुख होगा। खुद को नौकरी न मिलने का सारा दोष वह मेरे सिर डाल देंगे। परन्तु अब क्या मैं हाथ आई नौकरी छोड़ दूँगी? शान्ता के साहस दिलाने पर ही तो उसने प्रार्थनापत्र दिया था। उसका कहना था कि वकील साहब वहाँ कुछ ज़ोर लगा देंगे। क्या वकील साहब से कहूँ कि राज के लिये कह देखें। ८र बी० ए० ही नहीं, कई एम० ए० लड़के भी वहाँ आये थे।'

और वकील साहब से वह अब भी बात नहीं करती। उनकी अनुपस्थिति में ही शान्ता के पास जाती है। इतने प्रश्न एक साथ और जल्दी-जल्दी उसके मन में उठ रहे थे कि वह लेटी न रह सकी, बैठ गई। फिर टहलने लगी।

ऊपर रक्खी सुराही से एक गिलास पानी पीकर जब कुछ स्वस्थ हुई, तो उसके मन का तर्क जागा—'चोरी यदि मैंने उनसे रक्खी, तो उन्होंने मुझसे रक्खी? जो वह बता देते कि यहाँ एप्लाई किया है, तो मैं क्यों करती? या कम से कम इन्टरव्यू में तो न जाती। अब तो जो होना था, हो गया। नौकरी मिल गई, तो क्यों छोड़ूँगी? यह तो उनका व्यर्थ का क्रोध होगा, जो अपनी असफलता मेरे सिर डालें। इन्टरव्यू में और भी तो आठ-सात लड़के आये थे। फिर मेरी और

उनकी कमाई कोई दो तो है नहीं ? अगर समझें, तो समझा करें।' एक बार उसे भय लगा—'जो इसी बात पर राज, उसे छोड़ दे ? सब हंसेगे। कहेगे, प्रेम विवाह का यही फल होता है। परन्तु छोड़ना क्या आसान है ? मैं भी और चाहे कुछ हो, यह दोष अपने सर न आने दूँगी। क्या मेरे प्रेम में इतनी भी शक्ति नहीं कि वह एक पुरुष को, अपने पति को ही बाँध ले ? उसने उसी समय राज को पत्र लिखना प्रारम्भ किया—

'मेरे प्राण,

मेरे जीवन ! क्या सचमुच तुम आज मुझे देखकर अप्रसन्न हो गये हो ?'

पर चार पंक्तियाँ लिखते-लिखते उसे लज्जा आई—'इस खुशामद का क्या अर्थ ? क्या मैंने कोई पाप किया है जो क्षमा माँगू ? फिर अभी तो यह पता भी नहीं है कि इन्टरव्यू में ली भी जाऊँगी या नहीं ?'

उसने पत्र फाड़ दिया।

पन्द्रहवें दिन उसे सूचना मिली कि पहली तारीख से उसे नौकरी पर जाना है।

वह उसी दिन माँ से कहकर ससुराल चली गई।

★

मक्खन लाल पर मानों बज्र गिरा।

बहू नौकरी करेगी ? सो भी स्कूल की नहीं, दफ़्तर की। दस बाहरी पुरुषों के साथ मेज़-कुरसी जमाकर सारे दिन वहाँ बैठेगी ! पर बहू को क्या कहना था, अपराध तो सब उनके लड़के का है, जिसने पहले तो अपने से अधिक पढ़ी बहू ब्याह ली और फिर उसे दबा कर भी न रख सका !

उन्होंने गला फाड़ कर राज को कोसना शुरू किया—'निकम्मे

तो तुम हो! नालायक़ तो तुम हो, जिसने बहू को इतना सिर चढ़ा लिया कि वह जो चाहे, करे। तुम्हारे मुँह में ज़ुबान नहीं है। मेरे जीते जी उसे नौकरी करने की पड़ गई। उसे किस बात की कमी है? नंगी रहती है? भूखी रहती है? या तुम उसका मन नहीं भर सकते। किसलिये वह बाहरी मर्दों में उठ-बैठकर दिल बहलाने जा रही है? वहाँ क्या उसके लिये मिठाई के थाल रक्खे होंगे? मुझे नहीं चाहिये ऐसी कमाई—स्त्रियों की कमाई खानेवाले मर्द हिंजड़े होते हैं। तुम पूछो, वह क्यों नौकरी करना चाहती है?'

राज कब तक सुनता। ज़ोर से बोला—'खड़ी तो है आपके सामने। उसी से पूछिये न—क्या परदे की बेगम है, जो उत्तर नहीं दे सकती? पूछिये, कब इन्हें नौकरी करने को कहा? या ये कब मुझसे पूछकर इन्टरव्यू में गयीं?'

मक्खन लाल अब बहू की ओर घूमे।

गरिमा ने धीर स्वर में कहा—'मुझसे किसी ने नौकरी करने को नहीं कहा। मैं स्वयं अपनी इच्छा से कर रही हूँ। घर की दशा आप सबको मालूम है। आपको स्वयं ढंग से खाना नहीं मिलता। तब मैं ही क्या खा-पहिन सकती हूँ? फिर मैंने जो पढ़ा है, उससे कुछ जीने की सुविधा मिल जाय, तो क्या बुरा है? नौकरी करना कोई पाप नहीं है।'

'तू मुझे पाप-पुण्य सिखाती है। कल की छोकरी, एम० ए० पास कर लेने से ही अक्ल नहीं आ जाती। यह कुल की मर्यादा का सवाल है। जिस घर की बहुओं को कभी सूरज की किरन न देख सकी थी, वे दफ़्तरों में नौकरी करेंगी! नहीं, मैं तुम्हें हरगिज़ नौकरी नहीं करने दूँगा......!'

'तो बाबू जी!' गरिमा ने सिर उठा कर कहा–'मुझे आपकी आज्ञा के बिना ही यह काम करना पड़ेगा। मैं आई लक्ष्मी को लात नहीं मार सकती। इतनी कठिनाई से काम मिला है, उसे छोड़ नहीं सकती।'

'नहीं छोड़ सकती, तो तुम दोनों मियाँ बीबी अभी मेरे घर से निकल जाओ। बड़ा चला गया, तब भी मैं जिन्दा हूँ। तुम लोगों के जाने के बाद भी मरूँगा नहीं।' अब वह लड़के की ओर घूमे, 'अभी इन बूढ़ी हड्डियों में दम है बेटा! खोन्चा लगाकर भी अपने बच्चे पाल लूँगा। मैं ज़नख़ा नहीं हूँ!'

राज तिलमिला गया। यह फटकार उसे अकारण मिल रही थी। उसे गरिमा पर क्रोध आ रहा था।

'सुन लिया?' उसने उसकी ओर मुड़कर कहा—'क्या घर छोड़ने पर तुली हो?'

'बिलकुल नहीं।' गरिमा ने सहजभाव से उत्तर दिया—'घर से तो अब मरकर ही निकलूँगी!'

'वाह, वाह!' वृद्ध ने हाथ नचाया—'घर से भी नहीं निकलोगी—घरवालों की बात भी नहीं मानोगी! यह खूब रही। न बाबा मुझसे रोज-रोज यह बेशरमी न देखी जायगी। सबेरा हुआ नहीं कि बहूरानी रंगाई-पुताई करके, बटुआ बगल में दबाये दफ़्तर जाती दिखाई देंगी। सारा मोहल्ला मुझे थूकेगा। बिरादरी में सिर उठाना मुश्किल हो जायगा। तुमको नौकरी करनी है, तो अलग रहो। अपने मियाँ को ले जाओ। इसे ही बन्दर-नाच नचाओ!'

'मैं कहीं नहीं जाऊँगी। इस घर में मेरा भी हक़ है। कैसी भी हूँ, आप मुझे विवाह कर इस घर में लाये हैं। निकाल नहीं सकते।' और यह कहते हुए वह भीतर चली गई।

अन्दर ललिता खड़ी काँप रही थी। गरिमा उससे बोली—'वाह री ललिता, अभी तरकारी भी नहीं काटी? चल, तू चूल्हा जला। मैं आती हूँ।'

मक्खन लाल बहू की इस अद्भुत ज़बरदस्ती से परेशान हो गये। वे बड़बड़ा रहे थे—'ये खूब रही! ये खूब रही! रहेंगे भी यहीं—लड़ेंगे भी यहीं—जो मरजी आयेगा, करेंगे भी यहीं—वाह—वाह—न भइया, राज

अपनी इस बहू को तू ही सम्हाल ! वाह, वाह—हमें उँगलियों पर नचाती है यह...!'

गरिमा ने रोटी बनाई। बच्चे खाकर सो गये। उसने सास से कहा, 'बाबूजी से कहो भोजन करलें। मुझसे अप्रसन्न हैं। पर अम्मा, पेट ने क्या बिगड़ा है?'

सास बोली—'तेरी माया, तू ही जान। आप ही जाकर मना।'

गरिमा थाली लेकर पहुँची।

तंगी के दिन हैं। शाम का जलपान बन्द ही है। सबेरे नौ बजे की रोटी खाये मक्खन लाल इस समय भूख और क्रोध से जल रहे थे। गरिमा को देखकर बोले—'बहूरानी, थाली ले जाओ। वरना इसे उठाकर फेंक दूँगा ? बेकार बर्तन टूटेंगे।'

गरिमा एक क्षण चुप रही। फिर बोली—'मेरे कारण ही यदि भोजन छोड़ रहे हैं, तो ठीक है। मैं आज से जल भी छोड़ दूँगी। यहीं पड़ी-पड़ी प्यासी मर जाऊँगी। जो मैं पानी भी पियूँ, तो मुझे गऊ-हत्या का पाप लगे।'

वह क़सम कभी नहीं खाती। आवेग में कह गई। उसे एकदम से रोना आ गया। थाली वहीं रखकर वह रोती-रोती भीतर चली गई।

ससुर स्तब्ध रह गये। ऐसी जबरदस्त बहू तो कभी देखी ही नहीं। वह थोड़ी देर खूब तड़के, भड़के। फिर थक गये, तो धीरे-धीरे बैठकर भोजन करने लगे। खाकर डकार लेते हुए चिल्लाये—'सुनती हो, जी ? रात में अगर कोई भूखा-प्यासा सोया, तो मुझसे बुरा कोई न होगा ! देखो मैंने थाली में कुछ भी नहीं छोड़ा है।'

छोड़ते कैसे ? आज गरिमा ने अपने घर से लाये देसी घी से फुलके जो चुपड़े थे। शान्ता के घर से आये दूध से खीर भी बनी थी।

राज ने भी दो फुलके खा लिये। वह नहीं चाहता था कि गरिमा को यह प्रतीत हो कि वह उसकी नौकरी के समाचार से ईर्ष्या रखता है। वैसे भीतर से उसका चेतन और अचेतन दोनों ही उससे अप्रसन्न

थे। गरिमा ने उससे बिना पूछे अगर वहाँ आवेदन कर दिया था तो उसे बता तो देती। तब कम से कम वह इन्टरव्यू में जाकर अपनी ही पत्नी के समकक्ष पराजित हो कर अपमानित तो न होता। फिर जब बाबू जी नहीं चाहते, तब भी वह नौकरी करने पर कमर कसे है। यह क्या उनका खुला अपमान नहीं है? रही तंगी, तो संसार में भगवान् राम और भगवती सीता तक पर इतने संकट पड़े। उन्होंने क्या कष्ट नहीं उठाये?

राज इस समय भूल गया कि सीता पूरे घर भर की अनिच्छा पर भी राम के साथ बन चली गयी थीं। और यदि वे न गई होतीं, तो न उनका अपहरण होता, न रावण से युद्ध होता और न ही उन्हे कलंकनी बनकर दोबारा वन जाना पड़ता। वास्तव में हम सभी ऐसे कँटीले अवसरों पर विराट सत्य को आँख के तिल की ओट करके अपने-अपने धर्म-पुराण और कर्म-संस्कार के स्वार्थ-संगत तर्क ही याद रखते तथा बाचते हैं।

पर गरिमा तो अपनी डिगरी के अभिमान में है। इसके अतिरिक्त अचेतन में अपने बेकार और पत्नी के 'बाकार' होने की ईर्ष्या भी दंश मार रही थी। परन्तु वैसे वह ऊपर से शान्त था। भोजन करके घूमने चला गया। घन्टे भर बाद लौटा, तो सीधे कमरे में जाकर लेट रहा। और सिगरेट पीते-पीते सो गया।

गरिमा ने भी ललिता के साथ मिलकर चौका-बर्तन किया। फिर नहा कर कंपड़े बदले और ऊपर चली गई।

आज वह सानचढ़ी छुरी की भांति पैनी थी। बाबू जी ने इतना बका-झका था। और राज चुपचाप सुनता रहा था कि उसने उसके पक्ष में कुछ भी न कहा था। अब यदि ऊपर कुछ भी बोले, तो वह भी खूब खरी-खरी सुनायेगी।

ऊपर पहुँच कर गरिमा ने चुपचाप दूध का गिलास राज को थमा दिया।

राज ऊपरी मुस्कराहट से दूध लेकर बोला—'अभी तो तुम्हारी पहली तनख्वाह भी घर नहीं आई, और दूध बाँध लिया ?'

गरिमा ने भारी स्वर में कहा—'आज नरेन, सुरेन जल्दी सो गये। दूध पिया ही नहीं। वही आधा-आधा आप दोनों भाइयों के हिस्से आ गया है।'

गरिमा पाँव के अँगूठे से फ़र्श खुरचने लगी।

राज ने चुपचाप दूध पी लिया, फिर हँसकर बोला—'नौकरी पाने की खुशी में कहीं चाय-वाय नहीं पिलवाओगी ?'

गरिमा ने अभिमान से भरकर कहा—'चाय तो तुम्हें पिलानी चाहिये थी। तुम्हारी पत्नी को नौकरी मिली है। पर. . .' और वह चुप हो गयी, क्योंकि इतने दिनों की निरन्तर कलह से उसके प्राण पहले ही सन्तप्त थे। अब कहीं राज लड़ न पड़े।

पर राज भी अपने को उसकी दृष्टि में ओछा नहीं बनाना चाहता। हाथ पकड़कर बोला—'सो तो पिलाऊँगा। पर उसके लिये भी तो पत्नी के वेतन आने तक प्रतीक्षा करनी होगी।'

राज के स्पर्श से गरिमा गल सी गई।

धीरे से सिर डालकर कहा—'राज, जो मुझे मालूम होता कि तुमने भी वहाँ एप्लीकेशन दी है, तो मैं इन्टरव्यू में न जाती। अनजान में ही भूल हुई है. . .!'

'ओ, तो क्या हुआ ? अच्छा तो है।' राज ने ऊपरी उदारता से कहा—'मैं भी अब अपनी कला की ओर ही सारा ध्यान लगाऊँगा। या तो नाटक मुझे रोटी देगा या फिर. . .'

'देगा क्यों नहीं ?' गरिमा का उत्साह उमड़ आया—'अभी न सही, दो-तीन साल में अवश्य फल मिलेगा। तुम उसमें लगो तो सही। मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि तुम्हारी प्रतिभा छः छः वर्ष की बच्चियों को ता-ता-थेई सिखाने में ही समाप्त हो जाय। या आफ़िसों की फ़ाइलों में गर्क हो जाय।'

राज ने भी इस समय इसी सुखद स्वप्न के सत्य होने की आशा में उत्साह दिखाया।

छलिया चाँद ने द्विज की अल्पाभा को पुनः रसीली पूनम बना दिया। चन्द्रवृन्त पर चाँदनी के शत-शत फूल खिल गये।

१६

देव जिस दिन पहले-पहले कचहरी गया था, उस दिन सास ने लड्डू बांटे थे। वह स्वयं किसी केस की पैरवी में नहीं जा रहा था। केवल अपने सीनियर वकील के साथ जिससे वह काम सीखना चाहता था, एक बड़े मुकदमे में उनकी बहस सुनने जा रहा था। फिर भी सबेरे ही से—'देव के लिये दूध भेज दो—देव के लिये पान की गिलौरियाँ लगा दो—देव को दोपहर में नाश्ता कौन देने जायगा—' का शोर मचा था।

संध्या को देव के लौटने पर—'किन-किन से मिले? क्या हुआ? क्या देखा?' आदि प्रश्नों के साथ गरमा-गरम हलवे से उसका सत्कार हुआ।

परन्तु जिस दिन गरिमा पहले दिन आफ़िस गई, उस दिन सास तो नदी नहा कर ही नौ बजे तक वापिस न आई थीं। ससुर जी एक सम्बन्धी के यहाँ आवश्यक कार्य निकल आने से वहाँ चले गये और दस बजे के बाद ही घर लौटे थे। राज बेचारा तो सबेरे ट्यूशन पर चला ही जाता है।

केवल बूढ़े दादा जी ही अपने खटोले पर पड़े खाँस रहे थे। उनकी अफ़ीम दो दिन से खत्म थी। और वह अपनी खाली डिबिया को ही धो-धोकर दो बार पी चुके थे।

गरिमा ने ललिता को कल दिन में ही सब समझा दिया था कि सबेरे आठ बजे तक वह स्वयं घर की सफ़ाई वग़ैरा कर जायगी। बिस्तरे उठा देगी। नरेन, सुरेन को नहला-धुला देगी। रसोई में भी सहायता कर देगी। पर भोजन ललिता को ही बनाना पड़ेगा। शाम की सफ़ाई व रसोई की तैयारी तारा करेगी। ललिता व रीता अपने सिलाई-स्कूल चली जायेंगी। फिर दफ़्तर से लौटकर गरिमा स्वयं खाना बनायेगी। महरी उसने दो दिन पहले ही रख ली थी।

आज गरिमा ने देव के साथ उसी की थाली में दो फुल्के खा लिये। यूँ सास-ससुर से पहले खाते उसे तनिक ग्लानि हुई, पर विवशता थी। उसे तो दफ़्तर में साढ़े चार बजे तक रहना होगा।

देव ने कहा—'भाभी, कहो तो मैं तुम्हें आफ़िस तक छोड़ आऊँ। पहला पहला दिन है।'

'नहीं, नहीं, मैं चली जाऊँगी,' गरिमा ने कहा, 'तुम क्यों अपना हर्ज करो।'

देव हँसा—'हर्ज? अरे भाभी, अभी तो बाररूम में कोरी बैठक-बाज़ी करने जाता हूँ।'

पर गरिमा ने बहाना बना दिया। उसे आशा थी कि शायद राज उसके जाने से पहले ही लौट आयेगा। पहले दिन वह उसका आशीष, उसका प्यार पाकर जाना चाहती थी।

नौ, सवा नौ, साढ़े नौ बजे। पर राज नहीं आया।

गरिमा ऊपर से नीचे उतरी। अपनी उदासी उसने अच्छे मेकअप और लिपस्टिक में छिपा ली।

ललिता ने हँसी की—'हाय जीजी! एकदम लाइट मार रही हो—कहीं दफ़्तर पर बिजली न गिर पड़े।'

गरिमा सूखी हँसी हँसकर बैठक में चली गई।

बूढ़े ददिया ससुर के चरण छूकर कहा—'दादा जी, मैं नौकरी पर जा रही हूँ। आशीर्वाद दीजिये कि आपके कुल की मर्यादा को

निभाते हुए नौकरी भी कर सकूँ। अरे आपकी अफ़ीम तो खत्म हो गई। लाइये, डिबिया और लायसेन्सवाला काग़ज़। मैं शाम को लेती आऊँगी।'

वृद्ध के मुख पर चमक आ गई। अपने खाल-हड्डी मात्र कंकाल हाथ को उठाकर उन्होंने बहू के मस्तक पर रख दिया।

गरिमा निहाल हो गई। दोबारा वृद्ध के चरण स्पर्शकर वह भीतर आई।

'ललिता किवाड़े बन्द कर ले। मैं जा रही हूँ,' उसने पुकारा।

'राम राम जीजी, ऐसे न भाग जाओ—लो ज़रा सी दही-चीनी ही चख लो। पेड़ा तो है नहीं,' ललिता रसोई से पत्थर की कूँड़ी में रखे दही में उँगली से चीनी मिलाती भागी आई।

गरिमा ने एक उँगली से मीठा दही चख लिया। पर वह ललिता के इस स्नेह से आकण्ठ विभोर हो गई।

*

आफ़िस में महीने-बीस दिन में किसी न किसी अफ़सर का आना-जाना लगा ही रहता था। वैसे कभी काम से भी देर-सबेर हो ही जाती है।

गरिमा आम तौर से साढ़े चार बजे आफ़िस छूटते ही घर की ओर चल देती थी।

पर आजकल बादल-बूँदी के दिन हैं। पानी बरसता हो या बरसने का आसार हो, तो रिक्शेवाले अपना रेट दुगुना कर देते हैं। गरिमा इस महीने भरसक पैदल ही जाना चाहती थी। परन्तु उससे मक्खन लाल कदाचित और भी अधिक अप्रसन्न हो जाते। दफ़्तर दूर भी है। वह कभी पैदल आती, कभी रिक्शा पर। यूँ वह शान्ता से रुपये उधार ले सकती थी, पर एक तो पिछले पचासी रुपये का कर्ज़ ही वह अभी

उतार न पाई थी। दूसरे यदि वेतन मिलने से पहले ही वह उधार चढ़ा ले, तो ससुर अपने मन में क्या सोचेंगे ?

घर पहुँचते-पहुँचते गरिमा को साढ़े पाँच बजने लगे।

तारा काफ़ी काम कर लेती है। फिर भी अभी छोटी ही तो है।

पर सास प्रायः ही पड़ोसिनों के आने पर उसे सुनाती रहतीं—'जब बहुयें दफ़्तर करेंगी, तो सासें आप ही घर की महरी-मिसरानी बन जायेंगी। नहीं बनेंगी, तो मेम साहब लोगों को चाय कौन देगा ? उनके बिस्तर कौन बिछायेगा ?'

सच तो यह है कि गरिमा को न तो आज तक कभी आफ़िस से लौटने के बाद चाय मिली थी और न ही किसी को उसका पलंग बिछाना या उठाना पड़ा था।

आज अपने एक सहकारी के तबादले के अवसर पर विदाई भोज में रुक जाने के कारण उसे घर पहुँचते साढ़े सात बज गया। फिर भी सास ने चूल्हा नहीं सुलगाया। ललिता और मीरा भी तभी घर पहुँची थीं।

देव जी ने ललिता को डाँटा, 'कोई ज़रूरत नहीं स्कूल-विस्कूल जाने की ! बाहर से जले-तपे आओ, तो घर में एक प्याला चाय भी नसीब न हो। क्या एक बन्दर न रहेगा, तो वृन्दावन सूना हो जायगा ? तुम सिलाई-कढ़ाई न सीख पाओगी, तो क्या घरवाले कोरे थान लपेटे थोड़ा ही घूमेंगे ! दरज़ियों का तो अकाल नहीं पड़ा है अभी।'

सास अलग भिन्ना रही थीं। वह कहीं कीर्तन करके लौटी थीं। गला फाड़-फाड़कर राम-श्याम की धुन गाने व जमकर दो घन्टे ढोलकी बजाने से थकी हुई थीं। सो रीता पर बरस पड़ीं—'रहने दे स्कूल जाना। दिन भर पढ़ाई का स्कूल, शाम को सिलाई का स्कूल। मरा, दो घड़ी रामनाम जपने का भी समय न मिले हमें। दिन भर घर का पहरा दो और ऊपर से रात को चूल्हा झोंको।'

गरिमा ने किसी प्रकार अपनी सफ़ाई दी—'अम्मा, मुझे मालूम

नहीं था कि आज आफ़िस में चायपार्टी है। अन्यथा ललिता से कह जाती कि आज स्कूल न जाना। शनिवार को आफिस न जाने से यह सब गड़बड़ हो गई।'

चाय पार्टी!

सास का पारा और भी गरम हो गया—'लो सुनो! बहूरानी बाहर चाय उड़ाती हैं। घरवाले उपास करते हैं। तुम्हें हम क्या कह रही हैं बहूरानी? क्या अब अपनी लड़कियों को कहने का हक़ भी हमें नहीं रहा? तुम चाय पियो, दावतें उड़ाओ, घरवाले चाहे भूखे मरें, चाहे पियासे। मेरा देव इतने दिन से कचहरी जाता है, हुआँ तो कभी चायपार्टी नहीं होती।'

सास को समझाना व्यर्थ था।

गरिमा ऊपर चली गई।

आज राज भी लौट आया था। मुँह फेरे लेटा था। गरिमा के आने पर उसने उसे ताका भी नहीं। वैसे भी इन दिनों वह बड़ा चिड़-चिड़ा सा हो गया है।

गरिमा समझती है यह सब बेकार रहने की खीज है। वह भरसक दबी रहती है। अपने किसी आचरण से यह प्रकट नहीं करती कि नौकरी कर लेने से उसमें कोई परिवर्तन आ गया है। वह राज के सभी काम अपने हाथों से ही करती है। परन्तु राज उससे कटा सा रहता है। कपड़े मैले रहने पर अगर वह टोक देती है—'कमीज़ कितनी मैली है! लाओ, साबुन लगा दूँ।' या—'तुम्हारी पैन्ट तो एकदम पायजामा बन गई है। उतार दो, धोबी के डाल दूँ।' तो राज उपेक्षा से कहता—'ऊँह, सब ठीक है। अभी आठ दिन भी तो नहीं हुए इन्हें पहने।'

पर कभी सूखी मुस्कराहट से तीखे व्यंग्य-शर छोड़ता—'हम मज-दूरों को यही मैली पोशाक शोभा देती है। इन कपड़ों में मैं तुम्हारे आफ़िस तो जा नहीं रहा हूँ। न मेम साहब के साथ शापिंग को निकल

रहा हूँ। तुम बेकार में ही परेशान होती हो।'

गरिमा चुप रह जाती।

पर उसका मन तो चुप नहीं रहता। बेआवाज़ वह चीख़ता है—'वाह, यह अच्छा अभिमान है। फटा पहिनकर, रूखा खाकर घर में सड़ती रहूँ, तो इन्हें प्रसन्नता होती। समझते हैं, टिपटाप होकर आफ़िस जाती हूँ, तो मैं अब विलासिनी हो गई हूँ। घर लौटने पर मुझसे कभी किसी ने यह नहीं कहा कि तुम थक गई होगी, पाँच मिनट विश्राम कर लो। कभी किसी ने एक गिलास पानी भी हाथ में लाकर नहीं दिया। ललिता घर पर होती, तो भले ही पूछ लेती। पर वह उस समय अपने स्कूल गई होती। पुरुष कमाता है। बाहर से थककर आता है, तो स्त्री उसके पंखा झलती है। पानी-पान पूछती है। उसके कोट, टोपी, छतरी को सम्हालती है। पर स्त्री बाहर काम करे, तो पुरुष क्या उसके लौटने पर हँसते मुख से दो बातें भी नहीं कर सकता?'

गरिमा अब घरवालों से तो कम, पर राज के प्रति अधिक खिन्न रहती। घरवालों पर उसे रोष कम, दया अधिक आती थी। पर राज पर क्रोध ही था। कई-कई दिन तो पति पत्नी में बातचीत तक न होती। राज प्रायः ही रात को देर से लौटता। गरिमा तब सोई होती थी। और अब इधर राज ने उसे कभी जगाया भी न था। दो-चार बार तो दूध भी उसी तरह पड़ा रहा।

गरिमा पूछती—'दूध क्यों न पिया? देखो, कितनी मुश्किल से चीज़ आती है।'

राज उत्तर देता—'तुम्हें क्या मालूम कि मुझे कितना तेज़ जुकाम है। ठन्डा दूध पीकर क्या मरना था?'

गरिमा अभिमान से फूलकर भुनभुनाती—'तो मुझे जगा लेते, गरम कर देती। क्या पहले कभी नहीं करती थी?'

राज शालीनता से उसे परास्त कर देता—'करती क्यों नहीं थीं। पर अब बाहर भी काम करो और घर में रात को बारह बजे दूध

गरम करो ! मैं क्या इतना अन्यायी हूँ ?'

गरिमा निरुत्तर हो जाती। परन्तु मन में सोचती कि जब ललिता बीमार थी या भाभी-भाई का पूरा परिवार साथ था, तब दिन के आठ-दस घण्टे रसोई में और बाकी आधे पानी पान-नाश्ता देने में फिरकी-सी नाचती थी, तब तो वह उसे आधी रात को उठा लेते थे। आज उसके सुख का इतना ध्यान है ! यह सब तो लोकाचार है। मुँह से कोई किसी से कुछ नहीं कहता। मन में ही छुरियाँ चलती रहती हैं।

आज भी जब गरिमा ऊपर पहुँची, राज बिना रोशनी किये अंधेरे में पड़ा था। बिजली जलाकर उसने एक बार पति को ताका। उसे उधर मुँह फेरे देख, उसने आफ़िस के कपड़े बदलकर साधारण धोती पहनी।

राज ने फिर भी मुँह फिराकर उसे न देखा।

गरिमा ने पास बैठकर कहा—'अंधेरे में क्यों लेटे थे ? बिजली भी न जलाई।'

'कोई जानबूझकर अंधेरे में नहीं रहता। सिर में दर्द था, इसी से पड़ा था।'

गरिमा माथा दबाने लगी, पर राज ने उसका हाथ झटककर कहा—'यह सब रहने दो। बड़ी कृपा हो जो एक प्याली चाय बना दो। तुम तो पी आई, पर मैं तो सबेरे से ऐसा ही हूँ।'

गरिमा चुप रही। इस अकारण अपमान ने उसे हतबुद्धि कर दिया। चाय पीने के एवज़ में सबसे अधिक काम तो उसे स्वयं उस पार्टी में करना पड़ा था। आफ़िस की वही एक मात्र नारी सदस्या थी। अफ़सरों की चाय बनाने और नाश्ता पेश करने का भी काम सौजन्य के नाते उसे ही करना पड़ा था। वह भी थकी हुई थी।

राज ने उसे चुप देखकर कहा—'अच्छा रहने दो। तुम भी तो थकी हुई आ रही हो। मैं तारा से बनवा लूँगा।'

गरिमा नीचे उतर आई। तारा के हाथ चाय बनाकर भेज दी।

१७

दूसरी पहली आई।

गरिमा को पहला वेतन मिला। एक बार सोचा कि पूरे रुपये राज के हाथ पर रख दे। फिर शंका हुई कि जो उन्होंने रुपये फेंक दिये, या कोई व्यंग्य कसा, तो क्या होगा? सास को दे दे? पर सास के हाथ में जाकर पैसा निकलना बहुत कठिन था।

ललिता के पास धोतियाँ नहीं हैं। दादा जी के पास अफ़ीम नहीं है। तारा की फ्राकें फट गई हैं। क्यों न वह बाज़ार जाकर पहले कुछ-कुछ सबके लिये ख़रीद ले? शेष बचे रुपये सास को दे देगी। दस रुपये अपने लिये रख लेगी।

आफ़िस में सभी चाय पीते हैं। उनका अफ़सर वही गोरा ठिगना इन्टरव्यूवाला साहब तो प्रायः ही उसे चाय पीने को कहता है। गरिमा से इनकार करते भी नहीं बनता। अब इस महीने वह भी उन्हें पिला कर यह भार उतार देगी। नहीं, वह अपने लिये पन्द्रह रुपये रखेगी।

आफ़िस से ही वह रिक्शा करके बाज़ार चली गई। उसने सबके लिये कुछ न कुछ ख़रीदा। ससुर के लिये एक मरदानी धोती और दो बनियानें। सास की चप्पल टूट गई थी, सो उनके लिये चप्पलें। ललिता के लिये धोती, मीरा के लिये स्कर्ट का कपड़ा और तारा के लिये फ्राक का। नरेन, सुरेन के लिये टाफ़ी का डिब्बा और बिस्कुट। और दादा जी के लिये अफ़ीम और रेवड़ियाँ। दाँत न होने पर भी दादाजी अफ़ीम के बाद की मिठाई की चटक बुझाने को रेवड़ियाँ चूसते थे। रेवड़ियाँ बहुत बढ़िया व केवड़े से बसी हुई थीं।

राज के लिये कुछ लेते उसे डर लगा। राज आजकल तनिक बात का उल्टा अर्थ लगा लेता है। न ले गई, तो भी शायद उसे बुरा लगे। ले गई, तो भी कदाचित कुछ सुनना पड़े। सबके लिये ख़रीदारी

करने में उसे तनिक भी असुविधा नहीं हुई। यहाँ तक कि देव के लिये भी उसने एक शेविंग बाक्स ख़रीद लिया। वह किसी शादी में गया था। वहाँ उसका शेविंग बाक्स चोरी हो गया था। आजकल वह केवल ब्लेड लेकर राज के सेट से काम चलाता था।

पर राज के लिये, अपने पति के लिये, वह नहीं समझ पा रही थी क्या ले? राज की पैन्ट-कमीज़, बनियानें, चप्पलें, सभी चीजें पुरानी हो गई थीं। कुछ भी ख़रीदा जा सकता था। वह बहुत सस्ती सिगरेट पीने लगा था। बढ़िया सिगरेट भी ख़रीदी जा सकती थी। किन्तु कब किस बात पर राज चिढ़क पड़ेगा, इसका ठिकाना नहीं। कब मज़दूर बनकर उसकी लाई वस्तुओं को बड़े आदमियों की उपभोग्य वस्तु बताने लगेगा, इसका कुछ ठीक न था।

आख़िर उसने अपने और राज के लिये कुछ भी नहीं लिया। थोड़ी मिठाई और फल खरीदकर वह लौट पड़ी। दो चार गुब्बारे व सस्ते खिलौने भी ले लिये।

दोनों बच्चे उसकी प्रतीक्षा में द्वार पर खड़े थे। क्योंकि वह प्रायः ही आफ़िस से लौटते हुए दो-चार पैसे का कुछ खाने का सामान, चाहे वह भुने चने ही हों, ख़रीद लाती थी।

'ताई! ताई!' बच्चे उसका रिक्शा देखकर दौड़े।

गुब्बारे देखते ही उनका मन हवा में उड़ चला। खिलौने पाकर वे फूले न समाये। दोनों हाथों से अपनी सम्पत्ति बटोरे हाँफते भागते वे भीतर पहुँचे। गरिमा अभी रिक्शा के पैसे चुकाकर शेष सामान सहेज रही थी।

'दीदी! दीदी! देखो ताई हमारे लिये क्या लाई हैं!' नरेन्द्र ने दादी के सामने टाफ़ी का डिब्बा चमकाया।

'तारा बुआ! तारा बुआ! दौड़कर जाओ, ताई गठरी भर फल लाई हैं। मिठाई लाई हैं।' सुरेन्द्र ने अपने गुब्बारे और फिरकी हवा में उड़ाते हुये पुकार लगाई।

तारा अभी छोटी है। दस-ग्यारह साल की होने पर भी उसे गुब्बारों का चाव है। भाभी ने सब गुब्बारे नरेन, सुरेन को दे दिये। यह देख कर उसने रोने स्वर में खिसियाकर कहा—'जाओ, तुम्हीं सब मिठाई खा लो। हम कोई भूखे हैं?'

बाहर से गरिमा का स्वर आया—'तारा बीबी जी, तनिक ये टोकरी पकड़ लो। गिरी जा रही है।'

सास की उत्सुकता अब रुक नहीं पाई। स्वयं उठते हुये लड़की को डाँटा—'देखती नहीं, भाभी बुला रही हैं। छोटे बच्चों से झगड़ने लगी।'

सामान से लदीफँदी गरिमा भीतर आई। सब सास के पाँवों के पास रख दिया। और झुककर उनके पाँव छू लिये।

इधर बहुत दिनों से घर में इकट्ठे इतने फल, मिठाई और सामान नहीं आया था। सास का मन प्रसन्न हुआ। पर मुँह से बुदबुदा कर बोली—'जीती रह। बूढ़ सुहागन हो। ये क्या क्या अटर-सटर ख़रीद लाई? किसने कहा था इन सब कुछ के लिये?'

गरिमा ने आज अपनी आफ़िस की साड़ी के मैले होने की परवाह न की, वहीं दालान में बैठ कर एक एक चीज़ दिखाने लगी, 'ये बाबू जी की धोती बनियानें। अम्मा, ये तुम्हारी चप्पलें। पहनकर देख लो। अन्दाज़ से लाई हूँ। जो छोटी-बड़ी होंगी, तो कल तक बदल सकती हैं।'

चप्पलें मजबूत और अच्छी थीं।

सास ने उन्हें पाँव में डालते हुये कहा—'ये क्यों ले आई? ये तो बड़ी मँहगी मालूम पड़ती हैं। कोई सस्ती ले आतीं।'

सास की वाणी की मिठास गरिमा के मन में फूल की बास की तरह छा गई—'अम्मा मैं तो इससे भी अच्छी ले आती। पर आपके डर से नहीं लाई। यह देव जी के हजामत का बक्सा। यह तारा की फ्राक। ये मीरा के स्कर्ट ब्लाऊज़ का टुकड़ा...।'

सास निहाल हो गई । आज उन्हें अपनी बहू देवी प्रतीत हुई । बोलीं—'लगता है तू सारी तनख्वाह ख़तम करके लौटी है ।'

'नहीं अम्मा, मुझे तुम ऐसा न समझो । अब मैं सौदा लेने में सबके कान काटती हूँ । यह देखो ललिता की साड़ी । अच्छी है न ? और यह दादा जी की चुनिया बेगम और रेवड़ियाँ ।'

सास ने दुलार से कहा—'अपने लिये और राज के लिये कुछ नहीं लाई ?'

'अम्मा !' बहू ने फुसफुसाकर कहा, 'उनका मिजाज़ आजकल बड़ा तेज़ हो रहा है । इसी से नहीं लाई । अम्मा, तुम कुछ मेरी सहायता करो न । देखो, उन्हे काम नहीं मिलता, तो इसमे मेरा क्या दोष है ? क्या मै नहीं चाहती कि मेरा पति कमाये और मैं पाँव पर पाँव रख कर खाऊँ ?'

सास को भी आज लगा कि यह उसके बेटे का अन्याय है । बोली—'तू चुपकी रह । मैं भी उसे समझाऊँगी । दोनों बाप-बेटों के मिजाज़ नहीं लगते । यह मरदों की जात होती हो खराब है !'

गरिमा ने पन्द्रह रुपये अपने लिये रखकर शेष सत्तर रूपये सास के पाँवों के पास रख दिये—'अम्मा ये बाकी रुपये मैने ले लिये हैं ।'

'तू और ले ले । जब बाहर निकलती है, तो चार पैसे खर्च होते ही हैं । मैं तो नदी स्नान को जाती हूँ, उसी में चार छः पैसे उठ जाते हैं ।' फिर धीरे से बहू को समझाया—'रूपये तू अपने ससुर के हाथ पे रख दे । ठहर जा, मैं उन्हें यहीं बुलवाती हूँ ।'

आँगन की एक एक वस्तु का समाचार मक्खन लाल तक पहुँच चुका था ! रीझ-खीझ, हर्ष-विषाद, क्रोध और प्रसन्नता के हिंडोले में वह झूल रहे थे । और ईर्ष्यावश सोच रहे थे—'मुझे तो कुछ समझा ही नहीं । सास आज बहुत प्यारी हो गई । और वह भी कैसे लपक-झपक के सामान सहेज रही है ! लड़कों को मिठाई बाँट रही हैं, जैसे

आगे कभी घर में कुछ आया ही न हो।'

तारा बुलाने गई, तो बोले—'क्या काम है? यहीं बता दे न?'

अब गरिमा स्वयं उठी। द्वार के पास जाकर कहा—'बाबू जी, अम्मा जी बुलाती हैं।'

मक्खन लाल अब उठे। भीतर गये। गरिमा ने उनके पाँव छुये और रुपये पैरों पर रख दिये। मक्खन लाल ने उदासीनता से कहा—'दुआ, दुआ...लो अब रूपये तुम ही रख लो। मैं क्या करूँगा? नहीं, अपनी सास को दे दो। वही तो घर की मालकिन हैं।'

गरिमा ने सिर झुकाकर कहा—'न अम्मा लेती हैं न आप लेते हैं। क्या मैं आपकी बेटी नहीं हूँ? क्या देव जी,' वह लाज से राज का नाम न ले सकी 'रुपये लाते, तो आप न लेते? मैं ही पराई हूँ?'

मक्खन लाल परास्त हो गये। रूपये उठाकर बोले—'अरे बाबा, तुम तो बिना क़ानून पढ़े भी देव से ज्यादा वकालत जानती हो। तुम से मैं भला जीत सकता हूँ? लो, अब तो प्रसन्न हुई।'

गरिमा ने उठकर धोती व बनियानें ससुर के हाथ में रख दीं। फिर रेवड़ियों का पैकेट और अफ़ीम लेकर उनके पीछे-पीछे दादा जी के खटोले के पास पहुँची।

'दादा जी, लीजिये आज चुनिया बेगम बिना बुलाये हाज़िर हो गई' कहकर उसने उनके पाँवों में हाथ लगाया।

रेवड़ियों की सुगन्ध बूढ़े के नथुनों में प्राणवायु की भांति घुस गई। बूढ़ा उठ बैठा। टूटी कमानी के चश्मे को आँखों पर चढ़ाकर अफ़ीम की डिबिया खोलकर देखी। इतनी अफ़ीम इधर वर्षों से इकट्ठी न आई थी।

'बहू तुम जुग-जुग जियो! मेरी उमर भी तुम्हें लग जाय!' वृद्ध अभी और भी कुछ कहते, पर खाँसी के वेग ने स्वर रुँधा डाला था।

'आपके लिये चाय ले आऊँ,' कहती हुई गरिमा झटपट भीतर चली गई।

राज उस दिन रात भर नहीं लौटा। वह अपने नये नाटक की ग्रान्ड रिहर्सल में व्यस्त था।

गरिमा के मन में एक गाँठ और पड़ गई।

१८

छः महीने बीत गये।

घर में अब प्रायः सुख-शान्ति है। जेठ भी सौ पचास भेज देते हैं। देव को भी इधर दस बीस रुपये कभी-कभी मिल जाते हैं। शीला के विवाहवाले कर्ज़ की बड़ी किश्त भुगताकर भी घर में मामूली, दाल रोटी, तरकारी बिना कठिनाई के चल जाती है। ललिता ने भी स्कूल में सिलाई के कुछ कपड़े लेकर सिये हैं। अपने रुपये से उसने अपने लिये सोने की अँगूठी बनवाली है। उसकी अँगूठी टूट गई थी और दो साल से वह अँगूठी के लिये तरस रही थी। देव ने उससे कह दिया था कि अपने पैसों से वह जो चाहे ख़रीदे, उसे क्या! उसे विश्वास था कि दो-तीन साल में उसकी वकालत जम जायगी, तो अच्छी कमाई होने लगेगी।

घर में सबसे बुरी दशा राज की थी। यह बात नहीं कि उसके लिये कुछ आ न सकता हो। पर वह न तो स्वयं ही अपने लिये कुछ ख़रीदता था, न दूसरों का लाया ही छूता था। उसका केवल एक ही ख़र्च बढ़ा था, चाय और सिगरेट का। पर उसके लिये उसे किसी से कुछ लेना न पड़ता था। एक ट्यूशन से उसका ख़र्च निकल रहा

था। वह बेहद सिगरेट पीता, सस्ती और तीखी।

अधिक सिगरेट पीने के लिये गरिमा कभी टोकती तो कहता—'कला के आराधक तो शराब पीते हैं। मैं सिगरेट भी न पियूँ?'

अब वह रातदिन अपने दस-पाँच साथियों सहित नाटक कम्पनी खोलने के प्रयत्न में लगा रहता है। जोड़-बटोरकर एक नाटक खेला। जिससे कुछ पैसे भी बने। पर एक ही नाटक, एक छोटे नगर में, कितने दिन खेला जा सकता है? फिर प्रायः ही युवकगण महीना, दो महीना, उत्साह के साथ रहते, फिर साथ छोड़ देते। जब तक उसके पास मासिक वेतन, चाहे वह कितना ही स्वल्प क्यों न हो, देने का साधन न हो, कम्पनी जमती नज़र न आती थी। कभी वह हताश हो जाता। जहाँ दिन रात श्रम करके वह एक पैसा नहीं कमा पाता था, वहाँ गरिमा कुल आठ घन्टों में ठाठ से कुर्सी पर बैठकर अच्छा वेतन ले आती थी।

बाबू जी और अम्मा अब गरिमा को कुछ न कहते थे। अब उल्टे उनका कहना था, 'हम तारा और रीता को भी एम० ए० पास करायेंगे। समय पड़ने पर अपना गुज़ारा तो कर लेंगी।'

घर में अब पहले से अच्छा भोजन बनता था। रात को दूध भी राज को अपने सिरहाने टेबिल पर रक्खा मिलता। किन्तु राज को पीने की इच्छा न होती। पत्नी की कमाई पर दूध? वह गिलास वैसा ही ढँका रहने देता। कभी बिल्ली पी जाती, कभी जम जाता।

गरिमा भी इधर कुछ बदल गई थी। या यह राज की दृष्टि का दोष था? वह राज के दूध न पीने पर उससे मनुहार न करके अब झल्ला पड़ती थी। कपड़े न बदलने पर माथे में तेवर चढ़ा लेती थी।

चढ़ा ले, वह कोई उसका गुलाम तो नहीं है। वह चाहता है कि बस उसे कोई न छेड़े, भूखा रहने पर खाने को न पूछे, वह कहाँ जाता है, क्या करता है, कोई न पूछे। उसे किसी का एहसान, किसी की सहानुभूति नहीं चाहिये। प्रेमिका के रूप में जहाँ गरिमा की सहानुभूति

उसे उसके प्रति मोह बढ़ा देती थी, वहाँ अब उसका दुलार उसके प्रति विरक्ति उत्पन्न करता था।

वह जल्दी ही घर से बाहर चला जाता। बहुत रात गये लौटता। दोपहर का भोजन भी कभी करता, कभी नहीं।

माँ कहती—'अरे राज, दिन भर मारा-मारा फिरता है। रोटी तो खाने आया कर।'

माँ को अब बेटे के निकम्मा होने में कोई सन्देह न था। वह सोचती—'बहू कमा रही है। तो इसने नौकरी ढूँढ़नी ही छोड़ दी। रात दिन अपने स्वाँगों के पीछे दीवाना घूमता है।'

राज चिढ़कर उत्तर देता—'माँ, मैं सैर करता तो नहीं घूमता। काम से ही घूमता हूँ। मेरे लिये तुम क्यों खाना लिये बैठी रहती हो?'

'काम? जिस काम में पैसा न मिले, वह भी कोई काम है?' माँ झनझना पड़तीं—'कौन सी मोहरें उगाने का काम करता है तू? कुछ पता भी तो चले।'

राज उत्तर न देता। पर माँ के प्रति क्रोध भी अन्त में गरिमा पर जा पड़ता। सोचता—'इसीके कारण माँ मुझसे चिढ़ी रहती है। इसीने मेरे पीछे माँ के कान भरे होंगे। मुझसे कहती थी अपनी कला में लग जाओ और दूसरों से मेरी बुराई करती है।'

'बुराई!'

संसार में मनुष्य सबकी आलोचना सुन सकता है, पर अपने विरुद्ध पत्नी की आलोचना नहीं। भारतीय पति तो आज भी पत्नी को मात्र अपना ही ग्रामोफोन समझना चाहता है। जो केवल उसी के गाये रेकार्ड बजा सकती है।

राज को गरिमा पर क्रोध आता। कभी इच्छा होती उससे लड़कर खूब बातें सुनाये। खूब ताने दे। इतने, इतने कि गरिमा रो पड़े।

पर गरिमा अब इधर उससे बहुत कम बोलती थी। उसे पति से डर लगता था। मानो वह कोई अपरिचित व्यक्ति हो। कभी वह

सोचती नौकरी छोड़ दे। परन्तु यह विचार दो क्षणों से अधिक नहीं रुकता। उसके प्रणय का वह पहला उफ़ान, जिसकी झोंक मे उसने पहली बार केवल अपने ससुर को प्रसन्न करने के लिये नौकरी छोड़ दी थी, अब मन्द पड़ गया था। अपने हाथ से छोटों को कुछ देने का सुख, चूल्हे-चक्की-झाड़ू के मोटे, कपड़े गन्दे करनेवाले, कामों से छुटकारा मिलने का सुख, और साधारण सुख-सुविधा पाने, अच्छे वस्त्र पहिनकर समाज के चार सभ्य जनों में मिल-बैठने के सुख का मोह भी था ही।

रात को अपनी शैया पर अकेली लेटी-लेटी वह नौकरी छोड़ने का संकल्प करती। पर प्रातःकाल वह राज के सोये क्लान्त मुख के दर्शन करके विचार करती—'मैं कोई बुरा काम नहीं करती। क्यों छोड़ूँ नौकरी? अभी यह दिन-दिन भर बाहर घूमते हैं, ढंग से बात नहीं करते; तो कम से कम आफ़िस जाकर चार व्यक्तियों का मुख तो देख लेती हूँ। दोनों समय आतेजाते बाज़ार की भी सैर हो जाती है। दफ़्तर के साहब के दिये आदर से ही संतुष्ट हो लेती हूँ। पैसा पास में रहने पर भाई-बहन, देवर-ननदों को ले देकर मन के हौसले पूरे कर लेती हूँ। नौकरी छोड़ने पर ही क्या विश्वास कि यह बदलकर पहले जैसे हो जायेंगे? चलने दो, ऐसे ही सही।'

ससुर अब उसे बेटी की भांति मानने लगे थे। घर के प्रत्येक काम में उसकी सलाह ली जाती थी। अपने प्रणयातुर मन की पुकार दबा कर गरिमा स्वाभाविक रूप में ही हँसती, बोलती, खाती, खेलती। कार्यशीला महिला होने के नाते बाहर के समाज में उसके निजी सम्पर्क भी बन रहे थे।

दफ़्तर के सहयोगी मिसरा के लड़का हुआ, तो वह उसके नाम-करण संस्कार में सम्मिलित होने के लिये उसे भी निमंत्रण मिला। उसने राज से कहा—'जरा मिसरा के यहाँ चलना होगा। आज शाम को पाँच बजे उसके लड़के के नामकरण संस्कार की चायपार्टी है।'

'कौन मिसरा ?' राज ने रूखे स्वर में प्रश्न किया ।

'हमारे आफ़िस में हैं । बेचारे बहुत सज्जन हैं । बुलाया है,' कह कर गरिमा ने निमन्त्रण पत्र राज के सामने रक्खा ।

लिफ़ाफ़े पर केवल 'मिसेज़ श्रीवास्तव' का नाम और आफ़िस का पता था । राज का मन कठोर हो आया ।

'तो तुम चली जाओ । मैं जाकर क्या करूँगा ?'

गरिमा को बुरा लगा । उसने भीतर का कागज़ खोलकर कहा—'श्री और श्रीमती दोनों का ही आमंत्रण है । देखो ।'

राज ने उसी भाव से कहा—'मुझे 'वीर कुणाल' का सेट आज तैयार करवा लेना है । मैं न जा सकूँगा ।'

उसकी धारणा थी कि अकेली गरिमा कभी न जायगी ।

परन्तु गरिमा ने सोचा कि राज उसे झूठमूठ तंग करना चाहता है । सेट बनवाना क्या एक दिन टल नहीं सकता ? न जायें ! जब आफ़िस में मिसरा के साथ काम करती हूँ, तब उसके शिशु के लिये चार रुपये की एक भेंट से मुँह चुराना क्या अच्छा लगता है ?'

वह तारा को साथ लेकर चली गई ।

सुरेन्द्र का जन्म दिन आया ।

गरिमा चाहती थी कि वह भी उस दिन चायपार्टी दे । आफ़िस के कितने ही साथियों के घर वह जा चुकी है । अपने घर पर बहुत दिनों से कोई समारोह न हुआ था । शीला को ससुराल से बुलाने का बहाना भी चाहिये था । वह वहाँ कष्ट में थी । भाई साहब व भाभी भी छुट्टी लेकर कुछ महीनों को आ रहे थे । अब देवर भी कुछ कमाने लगे थे । उनकी भी इच्छा थी कि उनके बच्चे का कुछ नेगटिक हो । अभी तक तो घर में केवल बड़े भाई के बच्चों पर ही दावतें हुई थीं ।

गरिमा ने राज से बात की । राज को प्रसन्नता नहीं हुई । उसने देव से सौ रुपये सूट तैयार करने को माँगे थे, सो देव ने इन्कार कर दिया था । वह तो अपनी कमाई की पाई-पाई अम्मा को दे देता है ।

स्वयं गरिमा से ही उसे पता लगा था कि देव ने माँ की चोरी से ललिता को दो साड़ियाँ लाकर दी हैं, पर उसने अपने मामा का उपहार बताकर सास को भुलावा दे लिया था। क्या सुरेन्द्र की सालगिरह पर चायपार्टी में साठ सत्तर रुपये न लग जायँगे ? उसने गम्भीर होकर कहा—'एक ओर अम्मा दाँत से पैसा पकड़ती हैं, दूसरी ओर यह शाहखर्ची ? क्या ज़रूरत है जी ? इसकी ?'

गरिमा ने उत्तर दिया—'मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जहाँ दूसरों का खाना है, तो खिलाना भी चाहता है। इस बहाने मैं भी अपने आफ़िस के चार लोगों को बुला लूँगी। छोटे-बड़े साहब को भी बुलाना चाहती हूँ। तुम भी अपने मित्रों के नामों की लिस्ट बना दो, जिससे अन्दाज़ा लग सके कितने व्यक्ति आयेंगे।'

राज ने मुँह भारी करके उत्तर दिया—'मेरी चिन्ता मत करो। मेरा कोई मित्र नहीं आयेगा।'

गरिमा को पति का यह ढंग बिलकुल पसन्द नहीं आया। वह चाहती है जहाँ सारा घर उससे प्रसन्न है, राज को भी उसका सम्मान करना चाहिये। जब प्यार नहीं करते, तो आदर ही करें। जब देखो मुँह फुलाकर पत्थर सा मार देते हैं, उसने उत्तर दिया—'क्यों, प्रेम को तो दीमक चाट ही गई थी, क्या मित्रता में भी घुन लग गया ? कोई मित्र ही नहीं रहा आपका जो घर आवे।'

राज ने उसी वज़न पर कहा—'हाँ, जहाँ प्रेम को बेकारी चाट गई, वहीं मित्रता में ग़रीबी का घुन लग गया है। फिर मेरे मित्र भी मेरे ही जैसे आवारा हैं। वे तुम्हारे साहबों के सामने अशोभन लगेंगे। देव के वकील दोस्तों के साथ भी नहीं जँचेंगे।'

गरिमा का मन हुआ अपना सिर दीवार से दे मारे ! परन्तु नीचे सब लोग हैं।

बड़ी भाभी का विशेष डर है, क्योंकि वह तो कहने का कोई अवसर ही नहीं चूकतीं। आजकल तो उनकी सारी दया राज के प्रति

है और सारे व्यंग्य गरिमा के लिये। उसने पति पर तीव्र दृष्टि डाली और तीर की भाति कमरे से निकल आई।

वर्षगाँठ तो आई ही। पार्टी भी हुई ही। इन तीन दिनों में गरिमा घर में व्यस्त रही और राज अपने 'वीर कुणाल' में। माँ के बहुत क़समें धराने पर वह उस दिन पार्टी के समय घर पर रुका।

गरिमा ने अपना अभिमान तोड़कर उससे प्रार्थना की—'आज कम से कम शेव बनाकर और धुली पैन्ट पहनकर आना।'

राज ने जलते नेत्रों से उसे ताककर कहा—'जिससे अपने बड़े साहब के सामने मुझे अपना पति बताते तुम्हे लज्जा न आये? कोई हर्ज़ नहीं, तुम मुझे घर का नौकर बता सकती हो। या मैं उधर जाऊँगा ही नहीं।'

गरिमा का रक्त तेल की तरह खौल उठा।

संध्या हुई। गरिमा थक कर चूर थी। उसके तन और मन दोनों ही टूट रहे थे। परन्तु वह व्यर्थ की जगहँसाई नहीं करायेगी। उसने आज सबसे बढ़िया साड़ी पहनी। गहनों की कमी उसने ब्यूटी कारनर से ख़रीदे नक़ली सोने के टाप्स, माला और अँगूठियों से पूरी की। रूज़, लिपस्टिक, पाउडर, सेन्ट सभी का उपयोग किया। शीला व ललिता को भी जी भर सजाया। आज वह भाभी को भी दिखा देना चाहती थी कि उनके व्यंग्यों से गरिमा का कुछ नहीं बिगड़ता। देवर से फूल मँगवाकर अपने व सबके जूड़े सजाये। जिठानी के गहनों की दमक उसने अपने संयत, कुशल शृङ्गार से फीकी कर दी। सास को तो बहू-बेटियों का सजना-सँवरना सदा से रुचता था। इससे परिवार की प्रतिष्ठा बढ़ती है। मँझली को गहने पहने देखकर उनका मुख खिल उठा।

सास ने उसे पास बुलाकर देखा और कहा—'वाह, बिलकुल असली से मालूम पड़ते हैं! चार असल और चार यह पहन लो, तो किसी को पता ही न चले। बहू तू मुझे भी एक लाकेट ला दीजो।

यह सोनेवाला तो मेरा एकदम घिस गया है। तागे से जंज़ीर बाँध रक्खी है...!'

ससुर भी खुश थे। बहू के नाते ही सही, चार बड़े अफ़सर उनके घर तो आयेंगे। वह नई धोती पर नया चिकन का कुरता पहने नौकरों को आदेश दे रहे थे।

ये नौकर गरिमा के आफ़िस के दोनों चपरासी थे, जिन्हें गरिमा एक दिन की छुट्टी दिलाकर दो-दो रुपये और भोजन देने के वायदे पर ले आई थी

आमंत्रित सज्जन समय पर आये। बड़े भाई, देव और गरिमा ने सबका रीत्यानुसार स्वागत किया।

बड़े-बड़े लोग गरिमा को नमस्कार कर रहे थे। परिचित की भाँति बधाई दे रहे थे। कुशल-मंगल पूछ रहे थे। परस्पर मिलकर काम करती हुई गरिमा, ललिता, शीला इस समारोह में गंगा-यमुना, सरस्वती की त्रिवेणी सी प्रवाहित लगती थीं।

सास को उन्होंने एक बड़ी कुरसी पर सामने बैठा दिया था।

मक्खन लाल आज इस गर्व से गर्वित थे कि इतने बड़े बड़े साहबों ने उन्हें बधाई दी। पौत्र की वर्षगाँठ की बधाई। यह सब बहू की नौकरी करने का प्रताप था।

पर राज नीचे भी नहीं उतरकर आया। गरिमा का मन हुआ बुलाकर लायें। इतने साज-शृङ्गार को दिखाकर वह किसे मोहित करे? पर जाने, आयेंगे या नहीं? आज वह अपने इस सामाजिक आनन्द को अपनी व्यक्तिगत व्यथा से किरकिरा न करना चाहती थी। यद्यपि उसके मन में कहीं बड़ी पीर उठ रही थी। उसने अपनी आँखों देखा कि तीन बच्चों की माँ ललिता भी जब सज-सँवरकर अपने कमरे में गई, तो देव ने (जो शायद उसी की प्रतिक्षा में भीतर खड़ा था) उसे अंक में भर लिया। यही नहीं, उसने देखा था कि जो शीला मायके में पति से कतराती थी, तब भी ननदोई ने अकेला पाकर उसकी पीठ में

चुटकी काट ली। आज इन सब प्रेम-प्रदर्शनों के प्रति गरिमा की दृष्टि बहुत पैनी है।

गरिमा का रसाकुल मन इस समय क्षण-क्षण प्रणय के बन्द किवाड़ो पर सिर धुन रहा था। किन्तु द्वार ठेलकर राज के कमरे के भीतर जाने का साहस गरिमा मे नहीं हुआ। वह उसे बाहर से पुकारने भी नहीं गई।

विशेष मेहमानों को छोड़कर अन्य आमन्त्रित जन विदा हुए। भीतर घर में जिठानी की सखी-सहेलियाँ आँगन व दालान में बैठीं तरह-तरह की बोलियाँ बोल रही थीं।

बाहर की बैठक में देव के अभिभावक सीनियर वकील, एक डिप्टी कलेक्टर, शान्ता व उसके पति तथा गरिमा के दोनों साहब व बड़े साहब के पी० ए० रह गये थे। अब कुछ गाने का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। एक गीत ललिता ने गाया। शीला ने ढोलक बजाई। मामूली रसिया था। ललिता ढोलक का रद्दी गीत न गाना चाहती थी। परन्तु गरिमा ने उसे मना लिया था—'अरी, आजकल देहाती गाने-बाजे भी शहरी फ़ैशन में आ गये हैं। हमारे साहब उन्हें सुनना चाहते हैं।'

उसने स्वयं तानपूरे पर श्याम कल्याण की धुन गाई। दो एक अन्य गीत भी। बड़े साहब ने मिसेज़ श्रीवास्तव को इतने सुन्दर स्वर के लिये बधाई दी।

मक्खन लाल से बड़े साहब ने कहा—'आप बड़े भाग्यशाली हैं। आपकी बहुये बड़ी गुणवती हैं। और मिसेज़ श्रीवास्तव तो बस देवी हैं देवी। मिस्टर श्रीवास्तव नहीं दिखाई दिये,' उन्होंने माथे पर बल डालकर याद-सा किया—'हाँ, वह तो आर्टिस्ट है। उनका एक ड्रामा हुआ था। क्या नाम था उसका? ऊँह, याद नहीं आ रहा—बड़ा गज़ब का एक्टिंग किया था साहब उन्होंने।'

गरिमा जानती थी कि बड़े साहब झूठ बोल रहे हैं। नाटक देखने उनकी पत्नी गई थीं, वह नहीं।

गरिमा ने धीमे से कहा—'वे अपने दूसरे नाटक की तैयारी में लगे हैं। आज ग्रान्ड रिहर्सल है उसकी। इसीलिये नहीं आ पाये।'

'यस, यस!' साहब ने समर्थन किया—'आर्टिस्ट तो अपने आर्ट में खोया रहता है। हम लोगों की तरह नौकरी में अपने को नहीं घिसता।'

बात रह गई।

सब लोग विदा हुए। ऊपर की उठा-धराई करवाने के बाद गरिमा भी अपने कमरे में पहुँची।

कामकाज में साड़ी तो उसने बदल ली थी, पर गहने और फूलों का जूड़ा अब भी गमक रहा था। राज को यह सब रूपशृङ्गार दिखाने और उसका एक स्नेह-स्पर्श पाने की अदम्य इच्छा गरिमा के इतने क्षोभभरे किरकिरे मन के किसी दूर कोने में छिपी अभी भी कुलबुला रही थी।

राज के नीचे न उतरने का क्रोध उस पर भरपूर सवार था। वह अनायास बुदबुदाई—'उफ़! यह मुझे सबके सामने नीचा दिखाना चाहते हैं।'

सूट-टाई पहने देव की बगल में बैठी सुसज्जिता ललिता का गर्वित रूप, सुरेन्द्र के आये उपहारों को बटोरती उसकी आल्हादभरी मूर्ति, उसे और भी विषाद से भर गई। देवरानी के सौभाग्य से उसे ईर्ष्या नहीं थी। पर अपने दुर्भाग्य के प्रति अवश्य ही रोष था। राज का रूप गरिमा से सुन्दर है, विशेषकर उसके घुंघराले, रेशमी बाल। सिल्क के कुरते और धोती में वह एकदम पूर्ण कलाकार जँचता है।

वह यदि आज उसके समीप बैठा होता, तो क्यों बार-बार सास उसके कान में खुसपुस करती रहती—'देख, राज नहीं आया . . . देखा अभी तक नहीं उतरा . . . जा, तू ही बुला ला न।'

पर वह ऊपर न गई थी। उन्हीं के भतीजे की वर्षगाँठ थी। उन्हें स्वयं आना चाहिये था।

थकन और मन के विषाद के कारण गरिमा ने आज रात का भोजन भी नहीं किया। पार्टी में भी उसने बस एक समोसा खाकर चाय पी ली थी।

पति के लिये थाल में भोजन और वर्षगाँठ की मिठाई-नमकीन रखकर वह ऊपर पहुँची।

कमरा खाली था। राज न जाने कब चुपचाप बाहर खिसक गया था।

गरिमा ने थाल तिपाई पर पटक दिया और अपने चारपाई पर सिरहाने हाथों का तकिया बनाकर लेट गई। बिस्तर भी नहीं बिछाया।

निष्फल क्रोधाभिमान से गरिमा की देह जली जा रही थी। एम० ए० तक पढ़ा सारा मनोविज्ञान इस समय उसके काम न आया।

सहज सदाचार के कारागार में बन्द उसका शील, उसका मन, उसका प्रणय, उसकी आत्मा आत्महत्या का प्रयत्न करनेवाले दण्डित अपराधी की भांति चीख़-चीख़कर पश्चाताप कर रहे थे—'मैंने भूल की,...भयंकर भूल की...राज से विवाह करके भूल की। राज ने मुझे छल लिया!'

आधी रात गये राज लौटा।

पत्नी से बिना कुछ कहे उसने लोटे से हाथ धोये और ढका थाल खोलकर खाने बैठ गया।

गरिमा ने कनखियों से देखा कि राज ने मिठाई-नमकीन की प्लेटें निकालकर बाहर रख दीं। रायता भी। केवल सब्जी के साथ पूड़ियाँ खाने लगा।

अब गरिमा के सर की गर्मी उसके जूड़े के बाहर निकलने लगी। वह उठकर बैठ गई।

राज चुपचाप खाता रहा। भोजन समाप्त कर उसने लोटे से थाली में ही हाथ धो लिये। मिठाई, नमकीन, रायता वैसे ही अनछुये रक्खे रहे। राज ने थाल उठाया और बाहर रखने चला।

अब गरिमा फट पड़ी—'क्या मिठाई खाने से हुज़ूर का मुँह कड़ुआ हो जाता है! इस घर में अब आपका नन्हा भतीजा भी आपका दुश्मन हो गया है!'

राज उलट कर चमका—'वाह गरिमा जी, माँ से अधिक मौसी को दर्द! भतीजा मेरा शत्रु है, या कोई और, इसे मैं खूब जानता हूँ।'

'तो मैं हूँ तुम्हारी दुश्मन?' गरिमा ने द्वार पर खड़े होकर रास्ता रोक लिया।

'रास्ता मत रोको। तुमने तो भतीजे के उत्सव में खूब मोद मनाये! मेरे नीचे न जाने से तुम्हारे आमोद में क्या कमी रही? खाना, पीना, हँसना, गाना, सभी तो किया। एक नाचना शेष रह गया, तो उसे भी क्यों बाकी छोड़ा? नरेन्द्र की वर्षगाँठ पर अपने साहबों के सामने उसका भी प्रदर्शन कर देती.....!'

गरिमा इस मिथ्यारोप पर गरजी—'यानी कि मै वेश्या हूँ?'

राज सहम गया। साहस बटोरकर ऊँचे किन्तु हतप्रभ स्वर में बोला—'सो तो मैंने नहीं कहा। तुम अपने आप बात का बतंगड़ बना रही हो। हटो, मुझे जाने दो। आधी रात के बाद भी मुझे सोने दोगी या नहीं? क्या दो सौ कमानेवाले को ही नींद लेने का अधिकार है? मजदूरों को भी नींद आती है।'

सिंह ने जूठा थाल फिर से सम्हाला और चाहा कि बाहर रख आये। परन्तु गरिमा ने द्वार नहीं छोड़े। उस पर मानो भूत सवार था।

उसने अपने माथे पर हाथ मारकर जलते स्वर में उत्तर दिया—'मज़दूर को मज़दूरनी से ही विवाह करना था। मेरे भाग्य क्यों फोड़ दिये? तुम्हारे लिये, तुम्हारे सारे घर के लिये, मैं नौकरी करती हूँ। फिर भी तुम्हारा पारा चढ़ा रहता है। तुम इतने क्षुद्र, इतने नीच हो, कि बाबूजी को भी जहाँ अनौचित्य न दिखा, वहाँ तुम्हें जलन हो रही है। तुम इतने ओछे हो, इतने, इतने...!' और उसका स्वर रुँध गया। वह रो पड़ी।

राज ने थाल ज़मीन पर पटक दिया। आग्नेय नेत्रों से उसने भी सवाक् अग्निवाण छोड़ा—'मैं क्षुद्र हूँ? मैं नीच हूँ? और तुम, जो सिर में गुलाब सजाकर, मुँह पर रंग पोतकर, बाहरी व्यक्तियों से अठखेलियाँ करती हो, बड़ी महान् हो! पति जब सिर-दर्द से तड़पता, छत पर पड़ा था, तब नीचे हँस-हँसकर गैरों के साथ चाय उड़ाती हो। तुम बड़ी पतिव्रता हो! तुमसे तो शान्ता अच्छी है, जो आज खूँटे से बँधी तो बैठी है।'

गरिमा धू धूकर जलने लगी!

उसकी तुलना शान्ता से! वह लाख उसकी सखी हो, पर उससे चरित्र मे बहुत नीची है।

ज्ञानशून्य सी गरिमा जलते हुए प्राणी की भाति चीखी—'तब उसी से विवाह क्यों न कर लिया! बीबी के साथ एक लड़का भी ब्याह में ही मिलता! और वह खूँटा तो सोने का है, राजा जी! और वह औरत ग़रीब है! पैसों के इशारों पर तो आप और आपका सारा स्टेज भी नाचता है, देवता जी!'

'जी!' राज ने तुरुप का इक्का लगाया—'तभी आप मुझे अपनी नौकरी के पैसों पर नचाना चाहती हैं। इन्टरव्यू में अपनी डिगरी और सूरत से भले ही मात दे लो, पर मुझे अपने पैसों से ख़रीद कर गुलाम नहीं बना सकतीं! हटो।'

गरिमा का हाथ बलपूर्वक द्वार से झटककर राज थाल लिये हुए बाहर चला गया।

गरिमा वहीं गिर पड़ी।

राज ने छत से आँगन में झाँका। उन दोनों के झगड़े के शोर से सोई हुई ललिता कमरे से बाहर आ गई थी। बड़ी भाभी के कमरे की बिजली भी जली हुई थी। अब उससे थाल लेकर नीचे जाते न बना। छत पर ही थाल छोड़कर उसने कमरे में आकर द्वार बन्द कर लिये, बिजली बुझाई और पलंग पर लेटकर वहीं से चिल्लाया—'आधी रात

को रो-धोकर सारा घर सर पर मत उठाओ। तुम आज़ाद हो। जो चाहो, करो। पर मेरा सर मत खाओ।'

गरिमा वहीं धरती पर पड़ी रही। उसने बलपूर्वक सिसकियाँ रोकीं और आँखें मींच लीं।

उसका सयत्न सज्जित जूड़ा खुल पड़ा था। जूड़े की भांति बँधा-सजा उसका तन-मन भी बिखर गया था। उसके गुलाब धूल में लोट रहे थे। नक़ली सोने का हार गले में चुभ रहा था। उसे लग रहा था जैसे यह हार नहीं, राज है, उसका प्यार रेत की तरह गरिमा की आँखों में करक रहा था। गरिमा को लगा उसके प्यार का मानसरोवर एकदम सूख गया है और सारी रात वह अपनी चारपाई पर मछली सी तड़पती रही।

★

और राज?

उसके सिर में भी तूफान उठ रहा था। घर के एक-एक व्यक्ति से उसे घृणा हो रही थी—'यह बाबू जी हैं—बड़े पर्देवाले, कुल-मर्यादा पर प्राण देनेवाले बनते थे—आज बहू की कमाई पर तर माल उड़ा रहे हैं। यह अम्मा हैं—आज किस मज़े से बाहर पुरुषों में चौधराइन बनी बैठी थीं। यह देव हैं—जिसे पढ़ाई के दिनों में मैंने अपनी ट्यूशनों से बराबर सहायता की—आज सौ रुपयों पर मुकर गया—नेटे की चायपार्टी के लिये रुपया कहाँ से निकल आया? और यह गरिमा है, मेरी पत्नी—मेरी प्रेमिका—जहाँ मेरी ज़रा सी बाईं आँख फड़कती थी, तो हथेलियों से ढाँप लेती थीं। मै रूठता था, तो बिना हँसाये चैन न लेती थी—आज सज-सँवरकर बाहर के व्यक्तियों के साथ चाय पीती रही—गीत गाती रही—एक बार ऊपर आकर झाँका तक नहीं। किस बात का घमंड है इसे? यह सब नौकरी करने का

अभिमान है। मैं इस गर्व को तोड़ दूँगा। मै दिखा दूँगा, मुझे इसके पैसे का मोह नहीं है। मैं अपने हाथों से सैकड़ों कमा सकता हूँ, लुटा सकता हूँ। मै ..मै...मैं...!'

न जाने कब तन्द्रा ने आकर उसके विचारो पर अचेतना की चादर उड़ा दी।

★

गरिमा की आँख खुली, तो घड़ी आठ बजा रही थी। प्रातःकाल की ठंढक में उसकी आँख लग गई थी।

वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसका सिर भारी था। आँखें कड़ुवा रही थीं। उसने सुराही के पानी से अपने नेत्रों पर छुपके दिये। फिर मुड़कर देखा : राज का पलंग खाली है। वह न जाने कब उठकर चला गया था।

नीचे आई, तो ललिता ने उससे धीरे से कहा—'जीजी, आज तो मझले जेठ जी बिना चाय पिये ही बाहर चले गये।'

गरिमा 'हूँ' करके रह गई।

जिठानी ने बात सुन पाई, तब उसने ललिता को सुनाया—'राज लल्ला भी कैसे हैं? अरे आप चाय नहीं पी, तो न सही। बहूरानी को तो ऊपर एक प्याली उन्हे दे ही आना चाहिये था!'

ललिता ने दाँतों से उँगली काटकर कहा—'हाय भाभी, यह क्या कहती हो? वह भला यह काम क्यों करेंगे? और जीजी ही क्यों करने देगी?'

'क्यों न करने देंगी?' जिठानी हँसी, 'इसमें दोष भी क्या है? अब तो इसी बात का फ़ैशन है। बहू दफ़्तर करती है, तो मरद को बच्चे खिलाने चाहिये। लुगाई के लिए चाय, नाश्ता, खाना बनाना चाहिये।'

ललिता जिठानी से पार नहीं पायेगी। वह उठकर रसोई में चली गई। गरिमा को इशारे से बुलाकर पूछा—'जीजी, रात किस बात पर झगड़ा हुआ था?'

'झगड़ा?' गरिमा ने झूठ बोला 'नहीं तो। रात तो कोई झगड़ा नहीं हुआ।'

वह झपटकर रसोई से बाहर आगई। गुसलखाने में घुसकर उसने हाथों से मुँह ढँक लिया। गरम गरम आँसुओं से उसकी हथेलियाँ भीग गईं—'उफ़, यह मुझे सारे घर के सम्मुख अपमानित करना चाहते हैं! यह चाहते हैं मैं इनके दिये टुकड़ो पर जिऊँ अन्यथा भूखी रहूँ, नंगी रहूँ! यह...यह...!'

उसका मस्तिष्क कुछ भी ठीक से सोच नहीं पा रहा था। आज उसे राज में दोष ही दोष दिखाई दे रहे थे। जलते तवे पर जैसे पानी की बूँदें पड़ते ही छन्न से छू हो जाती हैं, वैसे ही उसके मनस्ताप मे राज से उसके प्रणय स्नेह-मोह का जीवन-बन्धन छिन्न होकर लोप होने लगा।

किसी प्रकार नहा धोकर गरिमा तैयार हुई। आफ़िस जाने की तैयारी में उसने दर्पण के सम्मुख देखा, तो देखा कि उसके नेत्र सूजे हुए हैं। चेहरा एकदम उतरा हुआ है। कँझाये अंगारे से दमकहीन मुख को ढकने के लिये आज उसने प्रति दिन से अधिक पाउडर लगाया। आफ़िस जाते समय वह अब तक लिपस्टिक नहीं लगाती थी। परन्तु आज उसने जी भरकर मेकअप किया। आँखों की सूजन के लाल डोरे छिपाने को खूब मोटा काजल लगाया, जिसकी कोरें बाहर तक फैली थीं। साड़ी भी रंगीन बाँधी। सारे हथियारों से लैस होकर वह मन में राज के प्रति दर्प भरकर मुस्कराई, मानो राज को चुनौती दी—'तुम मेरा क्या कर लोगे?'

गरिमा नीचे उतरी, तो जिठानी ने कहा—'हाय रे, मेरी अनोखी को कहीं नज़र न लग जाय!'

ललिता ने पुकारा—'जीजी, थाली लगाऊँ ?'

गरिमा को भूख नहीं थी, 'नहीं !' उत्तर दिया—'कुछ पेट ख़राब है आज। नहीं खाऊँगी।'

रिक्शा करके वह आफ़िस पहुँची।

एक बजे तक वह वहाँ अपनी टेबिल पर काम करती रही। कल रात से भूखे पेट ने अब पुकार मचानी आरम्भ कर दी थी। लंच टाइम हो गया उसने सोचा, 'आफ़िस के कैन्टीन से चाय के साथ कुछ मँगाकर खालूँ।'

'मेम साहब !' बड़े साहब के चपरासी ने आकर कहा—'आपका साहब बुलावत हैं।'

गरिमा उनके कमरे में पहुँची।

'आइये, मिसेज़ श्रीवास्तव। आपका अपने मित्र से परिचय कराऊँ ?' साहब ने हँसकर उसका स्वागत किया—'ये हैं मिस्टर...!'

गरिमा ने देखा गिरीश बैठा है। गिरीश पहले से बहुत मोटा हो गया था। भाग्यवानी का चिन्ह गंजापन भी बहार दिखाने लगा था। गिरीश ने उसे देखते ही साहब का वाक्य काटकर हँसते हुए कहा—'गिरीशचन्द्र, आपका पुराना अपराधी !'

वह भी गरिमा के ठाट देखकर चौंक गया था।

गरिमा ने बिजली की भांति चमककर उत्तर दिया—'बहुत दिनों के बाद आये हैं। आज पूरी सज़ा मिलेगी।' फिर पूछा, 'कब आये ? प्रतिमा कैसी है ? बच्चे कैसे हैं ?'

'सब कुशल है,' गिरीश ने उसके अफ़सर की ओर उन्मुख होकर मज़ाक किया, 'वाह, आपने तो चोला ही बदल दिया इनका। तबीयत होती है मैं भी आपके आफिस मे ही नौकरी कर लूँ। आपके तो मज़े हैं !'

साहब हँसे। गरिमा भी हँसी। मन में अवसाद हो, तो मनुष्य जहाँ भी थोड़ा रस पाये, उसे ही ग्रहण करना चाहता है। गरिमा भी अपने

मन की पीड़ा भुलाना चाहती है। गिरीश को यह दिखाने की इच्छा भी थी कि अब वह दब्बू गरिमा नहीं है, जिसे गिरीश बाबू ने आधी रात को छेड़ने का साहस किया था ! आज वह बिजली है। उसे कोई हाथ लगाकर तो देखे !

उसने विजयभरी मुस्कान से गिरीश को सुनाया—'ज़रा सिर में बाल उगाकर आइयेगा !'

साहब के ठहाके से कमरा गूँज उठा—'वाह भई गिरीश। अब मिला सेर को सवा सेर। मिसेज़ श्रीवास्तव आपके यह बहनोई बड़े हज़रत हैं। आपके यहाँ होने का समाचार सुनते ही इनके मुख पर रौनक़ आ गई थी। इनसे बचकर रहियेगा।'

गरिमा भी हँसी। साहब से इतनी घनिष्टतापूर्वक मिलकर बैठने के इस अवसर से जहाँ उसे प्रसन्नता हो रही थी, वहीं एक अज्ञात भय भी छा रहा था। न जाने क्यों ?

चाय आई। गरिमा चाय बनाने लगी। चपरासी ने बाहर से झाँककर साहब को सलाम झुकाया।

'क्या है ?' साहब ने पूछा।

'जी, एक साहब, मेम साहब का बुलावत हैं।'

'कौन ?'

'साहब, उई एक आवत हैं न...बड़े-बड़े बालनवाले...उई डिरामा करत हैं...पिछले महीने भी आवा रहेन।'

गरिमा समझ गई कि राज आया है। वह परेशान हो उठी। साहब भी इसके लिये अभी तैयार न थे।

'यहीं भेज दो उन साहब को,' उन्होंने चपरासी को आवाज़ दी।

गरिमा मन ही मन काँप गई। दो मिनिट बाद ही राज वहाँ खड़ा था।

'हलो।' गिरीश ने उछलकर कहा—'आर्टिस्ट महोदय। कहिये, अच्छे तो हैं ?'

राज का यह नाम उसने पिछली बार जब एक दिन को ससुराल आया था, तभी रख लिया था।

राज के जुड़े हाथ वैसे ही रह गये। यह गरिमा? यह गिरीश? यह उसके बड़े साहब? क्या ठाट हैं! उसने अपनी पैन्ट देखी—मैली, सुकड़नें पड़ी।

पहले भी वह एक-दो बार गरिमा के पास दफ़्तर में आया था। पर तब वह ढंग से बन सँवरकर आया था। आज व्यस्तता की झोंक में ऐसे ही चला आया। उसकी गानेवाली लड़की को फ़्लू हो गया था और मजबूरी मे उसे उस समय गरिमा ही याद आई। रात का सब झगड़ा भुलाकर वह उसे कहने आया था कि दो गाने तैयार करने होंगे। पर यह नज़ारा देखकर उसकी जुबान पर ताला लग गया।

'तुम छुट्टी लेकर घर आओ।' उसने कड़े स्वर में गरिमा से कहा, 'मुझे आवश्यक काम है।'

और बिना किसी को अभिवादन किये वह बाहर लौट गया।

साहब ने आश्चर्य से गरिमा को ताका।

गिरीश ने स्पष्ट किया--'मिस्टर, ये आर्टिस्ट इनके मिस्टर हैं!'

गरिमा ने सिर झुका लिया।

साहब ने उसकी स्थिति स्वयं सम्हाली—'आर्टिस्ट हैं पूरे! मूड ही तो है। खाइये, मिसेज़ श्रीवास्तव। आप तो कुछ खा ही नहीं रहीं हैं। परेशान न हों, जब तक आप घर पहुँचेंगी, उनका मूड अवश्य बदला हुआ होगा।'

गरिमा ने नेत्र नहीं उठाये। दस मिनट किसी प्रकार और बिताकर वह अपने कमरे में लौट आई। राज के इस प्रकार मज़दूर की भांति आफ़िस आने और फिर ढंग से व्यवहार न करने से उसका मन एकदम चिढ़ गया। इच्छा हो रही थी कि घर न जाय। किन्तु प्रतिदिन की कलह से भी प्राण सन्तप्त रहते थे। छोटे साहब से कहकर वह घर चली।

राज तभी सीधा घर लौट आया था। आज का गरिमा का वेश-

विन्यास उसके मस्तिष्क में आग लगाये था।

बहनोई और साहब के साथ चाय पी जा रही थी। नहीं, वह यह सब बन्द कर देगा। गरिमा या तो एकदम उसकी होकर रहेगी, या वह उससे कोई वास्ता न रक्खेगा।

घर लौटती गरिमा भी मन ही मन भयभीत थी। कोई चुपके-चुपके उसके कानों में कह रहा था—शायद उसका अचेतन ही—'नहीं, यह ठीक नहीं है। मुझे इतना बन-सँवरकर आफिस नहीं जाना चाहिये। उन्हें चिढ़ाने से फ़ायदा?'

परन्तु चैतन्य साँप के फन की भांति लहरा रहा था—'मुझे आफ़िस में हँसी का पात्र बनाने के लिये, अफ़सरों की दृष्टि में गिराने के लिये ही, श्रीमान् जी इस मलिन वेश में गये थे। फिर ढंग से किसी से व्यवहार भी नहीं किया। कितने रूखेपन से बोले।'

घर आने पर फिर दोनों में डटकर झगड़ा हुआ।

★

'अम्मा।' गरिमा ने सास से कहा, 'यह लखनऊ जाने को कहते हैं।'

'जाने दे फिर', सास ने उत्तर दिया, 'बड़का तो है वहाँ। उसे किसी बात की तकलीफ़ न होगी। शायद वहीं कोई काम लग जाय।'

गरिमा क्षण भर चुप रही। कैसे सास से स्पष्ट करे? रुककर बोली, 'पीछे आप लोग मुझे दोष न दें, इससे कहती हूँ कि आप लोग कहें तो मैं नौकरी छोड़ दूँ। जब से की है, मुझसे नाराज़ रहते हैं।'

बहू नौकरी छोड़ देगी, तो दो सौ रुपये की कमी हो जायगी। इतनी बड़ी रक़म का हर महीने घाटा! वह दौड़ी हुई पति के पास गई।

मक्खन लाल ने सुनकर कहा—'मेरी बहू लाखों में एक है। उस

ससुरे का तो दिमाग़ ख़राब है। न आप कमायेगा, न बहू को कमाने देगा। तो खायेंगे क्या? बहू से कह दे, उसे जाने दे। आप धक्के खाकर लौट आयेगा।'

मक्खन लाल अब फिर से तंगी न उठाना चाहते थे।

गरिमा ने सास ससुर की शह पाई। वह चुपचाप राज की तैयारी देखती रही।

राज आजकल शान्त है। वह अपने कई साथियों सहित जा रहा है। वह गरिमा की परीक्षा लेना चाहता है। क्या गरिमा अब भी उसके साथ कष्ट उठा सकती है?

पर गरिमा ने तो कुछ नहीं कहा। केवल इतना कह कर रह गई—'जो वहाँ मेरे लिये किसी नौकरी की सम्भावना हो, तो लिखना। मैं चली आऊँगी। भाभी जी के राज में मुझसे वैसे न रहा जायगा।'

बात ठीक थी। राज भी भाभी को पहचानता है। पर आजकल उसे उनसे प्रेम हो गया है। भाभी उससे सहानुभूति जो रखती हैं। वह लखनऊ चला आया।

गरिमा अब अपने कमरे में अकेले सोती है। यूँ इधर अनेक दिनों से पति-पत्नी की परस्पर की मधुरता नहीं बची थी। फिर भी ग्यारह बजे तक राज के न आने की प्रतीक्षा, फिर झगड़ा; सबेरे मुँह फुलाकर उठना, इत्यादि ही से उसके मन-मस्तिष्क भरे तो थे। राज के जाने से जो सूनापन फैला था, उसकी पूर्ति नहीं हो पा रही थी। वह बार-बार मन को परितोष देती—'मेरा तो कोई दोष नहीं। जब सारा घर प्रसन्न है, वह मुझसे क्यों रूठते हैं?' परन्तु सूनापन है कि भरने नहीं आता।

आफ़िस में भी उसकी उदासी छोटे, बड़े साहबों से भी छिपी नहीं। बड़े साहब से तो कभी-कभी काम पड़ता था, परन्तु छोटे साहब से तो हर समय का मिलना था। उनका पी० ए० छुट्टी गया था। गरिमा टाइप जानती है। आजकल वही पी० ए० का भी काम करती है।

छोटे साहब कहते—'मिसेज़ श्रीवास्तव, इतनी उदास क्यों हैं ? पुरुष कभी बँधता नहीं, फिर आर्टिस्ट ! आप भी हँस-खेलकर मन बहलाइये ।'

गरिमा प्रतिवाद करना चाहकर भी कुछ न कह पाती ।

रविवार को दोपहर में शान्ता आई । उसने उलाहना दिया, 'गरिमा दी, अब तो दर्शन ही दुर्लभ हैं तुम्हारे । मालूम है, दो महीने हो गये मिले !'

गरिमा सूखी हँसी हँसी, 'मुझे तो आफिस का काम रहता है । तू क्या पहाड़ तोड़ती रहती है ?'

'मैं ? ओह', शान्ता जो अब काफी मोटी हो चली थी, कमर-कूल्हे नचाकर हँसी—'वकील साहब की चाकरी में हूँ, गरिमा दी । रात-दिन लगी रहती हूँ । फिर भी तो गंजे सिर पर बाल नही उग रहे !'

'तू बड़ी दुष्ट है !'

'हाँ । अब तुम मुझे गाली मत दो । मेरे वकील साहब से पूछो कितनी पियारी हूँ !' 'पियारी' पर ज़ोर देकर उसने नाक फुलाई । उसके गोरे गालों में हँसी से गड्ढे उभर आये ।

'गरिमा दी, तुम्हारी सास से सुना सिंह साहब लखनऊ चले गये । तुमने अकेले कैसे जाने दिया ? मैं तो अपने बूढ़े को भी अकेला नहीं छोड़ती ।'

गरिमा के मुख पर मान भरी पीड़ा उभर आई—'न छोड़ती होगी । मुझे नहीं है इतनी परवाह । उनका मन था, चले गये ।'

'तुमसे पूछकर नहीं गये क्या ?' शान्ता चौंकी, 'दीदी, सच बताओ, बात क्या है ? उन्हें लखनऊ क्यों जाना पड़ा ? अब तो यहाँ ही उनका काम जम चला था । 'वीर कुणाल' काफी सफल रहा था ।'

'रहा होगा । मैने तो देखा नही था ।'

'अरे !' शान्ता ने इस बार गरिमा का हाथ झटक दिया—'दीदी, तुमने ऐसा क्यों किया ? इससे सिंह को कितनी चोट लगी होगी ?

दुखती आँख में तो हवा से भी पीड़ा होती है। इन दिनों में जब वे ऐसे संकट से गुज़र रहे थे, तुमने इतनी बेरुख़ी क्यों दिखाई ?'

गरिमा फूट पड़ी—'संकट क्या अकेले उन्हीं पर आया है ? शान्ता, सच मुझसे भूल हुई। बहुत भारी भूल हुई। मुझे विवाह...।'

शान्ता ने बात काटी—'भूल तो हुई ही, गरिमा दी। तुम नहीं जानतीं कि अपने देश में प्रेमविवाह करनेवाले लड़के लड़कियों को तलवार की धार पर चलना होता है। वे न तो अपने घरवालों से सहायता पा सकते हैं, न बाहरवालों से। उन्हें तो सब कुछ स्वयं चलाना पड़ता है।'

'तो मैंने उसमें क्या कमी की ? सारे घर का विरोध सहकर नौकरी की। कमाई का आधिकाश ससुर जी को दे देती हूँ। दो सौ कमाने पर भी एक समय का भोजन स्वयं बनाती हूँ। पर राज तो हृदय के अत्यन्त क्षुद्र हैं।'

शान्ता सकते में आ गई। वैसे उसने लक्ष्य किया था कि गरिमा और राज में कहीं दुराव आया है। परन्तु वह इतना गहरा है कि उनकी गरिमा दी आज इस स्तर पर उतर आई हैं, इसका उसे गुमान भी नहीं था।

उसने एक क्षण सोचकर कहा—'दीदी, इस दुनिया में हम सभी कहीं न कहीं क्षुद्र हैं। मैं समझती हूँ कि सिंह दब्बू भले ही हों, परन्तु हृदय के बुरे नहीं हैं। हाँ, इस समय अवश्य कुछ क्षुब्ध से रहते थे। लेकिन वह तो उनकी जैसी परेशानी मे सभी होते। आठ वर्ष से जिस कला, जिस शौक़ के पीछे उन्होंने अपना कैरियर, शिक्षा, पहिनना, ओढ़ना सब छोड़ा, वह कला आज भी उन्हे रोटी नहीं दे पा रही है। ऐसे में किसी का माथा कैसे ठीक रह सकता है ? मुझे तो यही आश्चर्य है कि तुमने उन्हें लखनऊ कैसे जाने दिया !'

गरिमा शान्ता के इस स्वर से दब गई। सिंह से शान्ता को इतनी सहानुभूति है, जब कि सिंह ने उसे सदा ही ओछी दृष्टि से देखा।

वह धीरे से बोली—'मेरे कहने से क्या वह रुकते ? सुरेन्द्र की वर्षगाँठ के अवसर पर जो चिढ़े, तो उनका क्रोध उतरा ही नहीं। असल बात तो यह है कि उस समय तो उन्होंने झोंक में आकर विवाह कर लिया, पर बाद में मै उनके मन लायक़ नहीं निकली। उन्हें तो पत्नी नहीं, चरणसेविका चाहिये थी।'

'और दीदी, शायद तुम्हें भी पति नहीं, सिर्फ़ हुक्म का गुलाम चाहिये था, जो तुम्हारी सब बातो के आगे बहुत खूब, हुज़ूर! कहता रहे!'

शान्ता अब बात की तह तक पहुँच गई थी। उसकी समझ में आ गया था कि सिंह गरिमा से रूठ कर ही गया है।

उसने अपनी ताड़ना जारी रखी, 'दीदी, बुरा न मानना। यह सब तुमने अच्छा नहीं किया। तुमने सिंह को सम्हालने की बजाय, अपने को सम्हाला। तुम्हें उसे अकेले न जाने देना था!'

'नौकरी छोड़कर चली जाती?'

'नौकरी क्या चीज़ है? जब उसके लिये घरबार, माता-पिता और पहली नौकरी छोड़ सकी थीं, तो अब क्या था? और नौकरी छोड़ने का तो प्रश्न ही न उठता। तुमने यहीं उनके मन को क्यों न दुलराया? जिस नाटक कम्पनी की स्थापना में वह जुटे रहते थे, उसमे तुम्हें भी अपने को यथासम्भव खपाना था—बस बात बनी रहती।'

गरिमा चुप रही।

शान्ता ने देखा गरिमा के मुख पर उदासी के बादल घने हो आये हैं। उसे अपने पर पश्चाताप हुआ—'क्यो मैंने यह सब कहा? मैं क्या जानती हूँ? सिंह का क्या और कितना दोष है, इसे बिना जाने मैंने क्यों दीदी को बुरा-भला कहा? वह बेचारी नौकरी करती है। घर का काम भी करती है। फिर भी मैंने उन्हें ही दोषी ठहराया!

गरिमा की ठोढ़ी ऊपर उठाकर उसने मनुहार की—'दीदी, गुस्सा हो गयीं? मुझसे तुम्हारी पीड़ा नहीं सही गई। इसी से इतना कह

गई। दोषी तो सिंह भी हैं। अपनी सारी असफलताओं को वह तुम्हारे ऊपर छोड़ देना चाहते हैं। परन्तु दीदी, नारी जब प्रेम करती है, तो उसे मिट जाना पड़ता है। अभी तक तुम उसके परिवार के लिये मिटी हो। पर जब सिंह तुम्हे मात्र अपने लिये चाहता है, तो उसके लिये मिट जाओ। देखो...मैं तो इतनी बुरी हूँ। फिर भी आश्रय के मूल्य में ही वकील साहब के लिये मिटी जा रही हूँ। तुम्हें तो प्रेम का मूल्य अदा करना है!'

गरिमा अब भी चुप रही। वह सोच रही थी कि भूल कहाँ हुई है?

शान्ता कुछ देर और ठहर कर घर चली गई। गरिमा का मन बहुत ही उदास था।

सिंह को लखनऊ आये चार महीने हो गये हैं। आने के साथ तो उसे ऐसा मालूम हुआ था कि मानो वह मैदान की गरम तपती लू के स्थान पर पहाड़ की ठंढक में आ गया है।

जहाँ अपने शहर में उसे नाटक में भाग लेनेवाली एक आध लड़की कठिनाई से जुटती थी, यहाँ दसियो लड़कियाँ नाटक में भाग लेने को तैयार थीं। वह वहाँ का आकाशवाणी भवन देखने गया। वहाँ एक ही ड्रामें में दस-बारह लड़कियाँ काम कर रही थीं। एक से एक अपटूडेट, रंगीचुंगी, टिपटॉप। और वे सभी बड़े परिवारों की बहू-बेटियाँ थीं। पहिले ही दिन वे सब उससे घुल मिल गईं, मानो पुराना परिचय हो! चायपान, हँसी-मज़ाक, सब चलता रहा...वे मानो हास्य की निर्भरिणी थी, जिसमें मन की दुविधा, सन्देह, अटक सभी बह गये थे।

रेस्तराओं में, बाज़ार में, बसों में, महिलाओं की भीड़ रहती थी। घर लौटते समय तो उसी के पड़ोस में रहनेवाली एक कलाकार लड़की ने उसे बलात् अपने ही रिक्शा में बैठाकर घर तक छोड़ दिया। फिर

'टा, टा'......करती हुई आगे चली गई।

सिंह घर लौटकर मन में सोचता रहा कि 'रात दस बजे तक ये लड़कियाँ घूम रही हैं। इनके पति या घरवाले क्या इन्हें कुछ नहीं कहते ?' फिर सोचा, 'गरिमा पर मैं नाहक़ अप्रसन्न हो जाता था। बाहर काम करनेवाली स्त्री भी तो एक प्रकार से पुरुष ही बन जाती हैं। यह लड़कियाँ ठाट से सबके साथ चाय पीती हैं। उसने भी यदि अपने साहब के साथ चाय पी ही ली, या अपने सहयोगियों के घर चली ही गई, तो मुझे क्यों बुरा मानना था ?'

कमरे की अकेली रात का यह पहला दिन था। कोई उससे यह पूछनेवाला न था कि तुम इतनी देर से क्यों आये ? क्योंकि, भाभी-भइया अपने कमरे में सो रहे थे। महाराज ने आँखें मलते-मलते द्वार खोले थे और अपनी खाट पर लुढ़क गया था। दूध न पीने पर सुबह किसी से यह झगड़ा होने की सम्भावना न थी कि इतनी कठिनाई से दूध आता है और तुम बरबाद करते हो। भोजन करके हाथ धोते हुए उसने अपने मन को सांत्वना दी--'कोई बात नहीं, अब मैं जमकर काम करूँगा। कोई मुझे टोकनेवाला तो नहीं है। परन्तु यहाँ कपड़े थोड़े अच्छे पहनने होंगे। बिना वेश तो भीख भी नहीं मिलती।'

उसके हाथ में इस समय नक़द रुपया नहीं है। अतएव दो-चार दिनों बाद उसने भाई से कहा--'भइया जी, मुझे एक कर्डराय की पैन्ट और दो तीन अच्छी बुशर्ट बनवानी पड़ेगी। यहाँ इस कुरते-पैजामे को कोई नहीं पूछता।'

भाई ने उदासीनता से उत्तर दिया, 'बनवा लेना।'

भाभी ने, जो भइया के लिये ताज़ी मठरियाँ सिकवा रही थी, वहीं से आवाज़ लगाई, 'लल्ला, कुछ कामकाज लग जाय, तो बनवा लेना। हमें तो इधर बजाज़ और डाक्टर का वैसे ही अधिक देना बाकी है। पैसा बचे कहाँ से ? घर पर तो अब छोटे लल्ला जी वकालत से ढेरों कमाते हैं। मँझली भी कमाती है। फिर भी हर महीने रुपये भेजने का

स्टेज न जमा पाये, तो रुपया कैसे अदा करोगे ?'

राज पर भूत सवार था। उसने कहा, 'आप एक बार दिलवा दे। भगवान चाहेगा तो दो साल में मै उतार दूँगा।'

भाई चुप रहे।

फिर कई दिन निकल गये। भाई को राज ने दो बार टोका। उन्होंने कहा, 'चेष्टा कर रहा हूँ।'

राज फिर चुप हो गया।

इधर वह देख रहा है कि भाभी मानो एकदम बदल गई हैं। सदा परदे मे रहनेवाली भाभी भी लखनऊ आकर खुलकर खेलती हैं। घर पर पति की कमाई में वह केवल गहना ही गढ़वाती थीं। अब तो नित्य नये फ़ैशन का कपड़ा और प्रसाधन भी नित्य ही मँगाती हैं। नौकर और महाराज बिना काम नहीं चलता। कोई नई फ़िल्म देखे बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता। राज के साथ भी उनका व्यवहार बदल गया है। उसके दोनों साथियों का कहना है कि राज के साथ भोजन करने घर तो उन्हे तरकारी मिल जाती है, पर यदि वे अकेले खायें, तो महाराज दो कलछी दाल से अधिक कुछ देता ही नहीं। किसी दिन तो रोटियाँ तक कम पड़ जाती हैं। सबेरे उठने में ज़रा सी देर हो जाय, तो चाय निबट जाती है। उन्होंने निश्चय किया कि वे अपने घर चले जायेंगे। वहाँ भी प्रायः शम्भू और मनमोहन दोनों राज के घर ही भोजन करते थे। गरिमा ने कभी उन पर नाक भौं न चढ़ाई थी। उल्टे ससुर जी कभी कुछ टोकें न, इस भय से वह उन्हे पिछवाड़े के द्वार से ऊपर बुलाकर ही खिलवा देती थी। राज से झगड़ा इसी बात पर होता था कि बिना बताये जिस दिन तीनों ही गायब हो जाते, तो भोजन बरबाद होता था। इतनी बासी रोटियाँ कौन खायेगा ? चार दिन शम्भू या मनमोहन न आएँ, तो माँ भी पूछती थीं—'अरे, शम्भू नहीं दिखाई पड़ता ?'

वे दोनों जाने के लिये कह रहे थे। यद्यपि रेडियो पर ड्रामों में पार्ट

करके राज ने भी अपनी और उनकी पान-सिगरेट का व्यय निकाल लिया था। धुलाई हजामत के पैसे भी भाभी से न लिये थे। पर उन्हें रोटियाँ भी खल रही थीं।

आज वह रात को तनिक जल्दी लौट आया था। खाना उसके कमरे में ही रक्खा होता था। खाकर हाथ धोने गया, तो भइया के कमरे मे प्रकाश देख उसकी इच्छा हुई कि भाई से पूछे रुपयो का प्रबन्ध हुआ या नही। कमरे के पास गया, तो भाभी का स्वर सुनाई पड़ा।

वह दबे हुए तीखे स्वर में पति पर बिगड़ रही थी—'तुम मुझे और बच्चो को फाँसी दे दो। तब रुपया उधार दिलाना। कमाई धेले की नहीं, दस हज़ार उधार चाहिये। अपनी लुगाई को क्यों नही लिखते कि दफ़्तर से उधार दिला दे ?'

कही आफिस से नाटको के लिये रुपया उधार मिलता है ? भइया का दबा स्वर फूटा, 'क्या बताऊँ, बड़े धर्म संकट मे पड़ा हूँ। बुलाकर भी तो तुम्हीं लाई थीं।'

'लो,' भाभी अपने पर अपने आक्षेप सुनकर बिफर पड़ी, 'गधे को नमक दो, गधा कहे मेरी आँखे फूटीं।' सोचा था, वहाँ नौकरी-चाकरी नही है। यहाँ आकर रहेंगे। महीने, दो महीने मे कहीं कुछ काम लग ही जायगा। सो तो कुछ नहीं, उल्टे दो निठल्ले साथ लाकर महीने भर से रोटियाँ तोड़ रहे हैं।'

भाई ने भी धीमे से कहा—'नहीं ! जो हिसाब उसने बनाया है, उससे लगता है कि उसकी नाटक कम्पनी जम जायगी। चार पाँच महीने में वह चार नाटक तैयार कर लेगा। शम्भू और मनमोहन तो इस बीच केवल रोटियाँ खायेंगे। औरों को कुछ कुछ देना पड़ेगा। हज़ार, दो हज़ार में कपड़े और और सेट बनेगा। दस हज़ार में चार-पाँच नाटक तैयार करके लगातार खेलेंगे, तो टिकटों से रुपया मिलने पर धीरे-धीरे थोड़ा थोड़ा कर्ज़ उतारता जायेगा।'

'जी हाँ, मै सब जानती हूँ। जो टिकिट न बिके, तो सब रुपये

गये। गाँठ में नहीं दाने, अम्मा चलीं भुनाने। कभी इतनी ज़िन्दगी में दस रुपये कमाकर तो हमारे हाथ पर न रक्खे। दस हज़ार माँगने को हो गये। नहीं, तुम इतना उधार मत दिलवाओ। न पटा सके, तो मुक़दमा कचहरी होती फिरेगी। बाबू जी कहेंगे कि लड़के को मुसीबत में डाल दिया। बाप से जाकर न माँगे।'

पत्नी के इतने कड़े विरोध पर भइया आगे कुछ नहीं बोल पाये।

राज ने किसी के पाँवों की आहट सुनी, तो दबे पाँव अपने कमरे की ओर लपका। भाभी शायद किसी काम से उठकर बाहर आई थीं।

दूसरे दिन भाई ने राज को बुलाकर कहा, 'भई, इतनी बड़ी रक़म कोई देना ही नहीं चाहता। हज़ार, दो हज़ार तक का प्रबन्ध हो सकता है। आजकल कौन बिना ज़मीन-जायदाद गिरवी रखाये इतनी बड़ी रक़म देगा?'

राज चुप रह गया।

शम्भू और मनमोहन अपने घर चले गये।

राज ने सब प्रयत्न कर देखे। कहीं से रुपयों का प्रबन्ध नहीं हुआ। और यदि घर में वह शीघ्र ही भाभी को कुछ मासिक ख़र्च नहीं देने लगता, तो कदाचित उसे यहाँ रहना भी कठिन हो जायगा।

घर पर खीज और चिढ़ के कारण कभी कभी दूध नहीं पीता था। अन्तेतन में गरिमा द्वारा मनाये जाने की भावना भी काम करती थी। परन्तु इधर वह मनाने के बजाय झगड़ा करती थी। और परिणाम स्वरूप वह कई कई दिन दूध न पीता था। परन्तु दूध का गिलास कभी सिरहाने रक्खा न मिलता हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। यहाँ भी वह एक दो बार दूध पीना भूल गया। परन्तु भाभी ने तो उससे दूध न पीने का कारण पूछा भी नहीं। बल्कि तीसरे दिन से ही दूध बन्द कर दिया।

अभाव में वस्तु का मोह और आवश्यकता भी बढ़ जाती है। सारे

दिन के हारे थके होने के पश्चात् राज दूध ढूँढ़ता। उसने महाराज से पूछा,

'मिसिर, आजकल क्या दूध कम ले रहे हो?'

मिसिर ने उत्तर दिया—'बहू जी ने तुम्हारे लिये दूध बन्द कर दिया। कहती थीं, इतना दूध आयेगा, तो कैसे गुज़र होगी?'

राज को अब भाभी को टोकने का साहस ही न रहा। भोजन में भी वही दशा थी। दोपहर में देर से लौटता, तो चावल उसे कभी न मिलते। मिसिर कह देता—'ठंढा होकर कड़ा पड़ जाता है। इसी से नहीं रक्खा।'

राज को भात बहुत रुचता है। उसने डाँटा—'मैं ठंढा ही खा लूँगा। तुम्हे इससे क्या?'

मिसिर ने इधर-उधर ताक कर धीरे से उत्तर दिया—'छोटे बाबू, बहू जी कहती हैं, चावल महँगा आता है। बरबाद करने के लिये नहीं है।'

दो एक दिन उसने रात को नहीं खाया, तो तीसरे दिन महाराज ने उसके लिये भोजन उठाकर रक्खा ही नहीं।

राज को क्रोध आगया। सबेरे उठते ही भाभी के पास पहुँचा। कहा, 'भाभी, इस पाजी महाराज ने रात मेरे लिये रोटी ही नहीं रक्खी। कुल एक फुलका था!'

वह मिसिर के बहाने भाभी पर बिगड़ रहा था।

भाभी ने उसको झूठा कर दिया—'लल्ला जिस दिन न खाना हो, उस दिन पहले ही बता जाया करो। महाराज कहाँ तक बासी रोटियाँ खायेगा। परसों, नरसों, आठ आठ रोटियाँ, कटोरा भर भर तरकारी महरी को देनी पड़ी थी।'

राज चुप!

यह ठीक है कि दिन भर दौड़धूप करने के कारण वह भोजन

कुछ अधिक नहीं करता परन्तु उसके पेट का बखान आठ-आठ रोटियाँ और कटोरा भर तरकारी के रूप में होगा, यह तो उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। उसकी माँ और गरिमा का सदैव यही झींकना रहता था कि बिना खाये पिये वह काम में जुटा रहता है। इस काम के पीछे तो खूराक आधी भी नहीं रही। और सच बात तो यह थी कि रोटियो की गिनती स्वयं उसने ही कभी न की थी। जितनी भूख हुई, खा ली।

उस दिन वह सच में ही तीन फुलकों से अधिक न खा सका।

उसे रह रहकर भाभी के वाक्य चुभ रहे थे। सोचा—'दो महीने के भीतर ही इनको मेरा रहना भारी हो गया! तब गरिमा जो कमाती थी, बनाती थी, और परोसती थी, यदि उससे कभी कभी झगड़ा कर लेती थी, तो कौन बुरी बात थी ?'

निराशा और असफलता के दिनो में किसी से लड़-झगड़ लेने पर भी बहुत सी व्यथा धुल जाती है। राज के पास आज वह साधन भी नही है।

नई नई मुसीबतो और कष्टों के सम्मुख बीती मुसीबते और कष्ट अधिक मधुर भी प्रतीत होने लगते हैं। राज को भी आज गरिमा के साथ की हुई कलह भी प्रिय लगी। मन हुआ उसे पत्र लिखे। परन्तु दो महीने हो गये उसे आये, उसने गरिमा को एक भी पत्र नही डाला। अब किस मुँह से लिखे ? फिर ध्यान आया कि गरिमा ने भी तो उसे पत्र नहीं लिखा। भाभी के पास डाक लगी रहती है। मुझे सीधे पत्र नहीं डाल सकती। उन्हीं से कुशल पूछती रहती है।

'मानो मैं मर गया हूँ।' राज का मन कठोर हो गया—'नहीं, उसे यदि इतना मान अभिमान है, तो मैं भी क्यो पत्र लिखूँ ? वह भला क्यों पत्र डालेगी ? सबकी दुलारी है। उसके पास सब कुछ है।' नरेन्द्र, सुरेन्द्र, ललिता सब हैं। आफ़िस है, जहाँ छोटे बड़े साहबों के साथ चाय पी सकती है। मैं क्यों उसकी याद में मरूँ ? क्या मुझे पूछने वाला कोई नहीं ?'

राज ने पत्र नहीं डाला। हाँ, दो चार जगह प्रार्थनापत्र अवश्य भेजे। उस दिन के समाचारपत्र में आवश्यकता के कालम में जहाँ भी अपने को जगह मिलने की सम्भावना देखी, उसी में अपने बी० ए० की थर्ड क्लास डिगरी के एक प्रमाणपत्र की नक़ल भी टाइप करके, अर्ज़ी के साथ नत्थी करके भेज दी।

राज का मन बहुत उदास था। आज वह तरुण नाट्य संघ भी नही गया। क्या मुँह लेकर जाय? वहाँ के पुराने नाट्य निर्देशक से कई कलाकारों के सम्मुख वह कह चुका था—'मैं आपको दिखा दूँगा कि लखनऊ में भी स्टेज स्थापित हो सकता है।' पर वह अपना वचन निभा नहीं पाया था।

'पैसा! पैसा! भाई साहब, पैसा कहाँ से लायेंगे?' अधेड़ छैल-बिहारी ने चुटकी बजाकर कहा—'नाटक खेलना हम भी जानते हैं। पर पेट को रोटी भी तो चाहिये! आप तो अकेले आदमी हैं। भाई के सिर रहते, खाते हैं।

'पर हम लोग क्या करे? हम दिन रात नाटक की तैयारी में लगें तो घरवाले फाका करेंगे।'

'पैसा भी जुट जायगा। बस, दो-चार दिन में दस हज़ार का प्रबन्ध करके एकदम काम चालू कर दूँगा।' राज ने आत्मविश्वास से उत्तर दिया।

'दस हज़ार?' छैल बिहारी की आँखें फैल गईं—'भाई साहब मुझे तो लखनऊ में रहते पन्द्रह साल हो गये। किसी ने कभी दस सौ तो उधार नहीं दिये। आपको मिल जाय तो मै आपके नाटकों में मुफ़्त पार्ट करने को तैयार हूँ। आपको कोई दस रुपये भी नहीं देगा।'

उस समय बात हल्के से विवाद के पश्चात् समाप्त हो गई थी। आज भाई के इन्कार से राज बहुत क्षुब्ध था। दिन भर घर में ही पड़ा रहा। शाम हुई तो सोचा चलो काफ़ी-हाउस ही हो आयें।

प्रोफेसरों, पत्रकारों और बेकार बुद्धिजीवियों के विश्राम के लिये वही एक सस्ता स्थान था।

मैली तहमत उतारकर, तकिये के नीचे तहाकर रखी पैन्ट और इस्तरी की हुई बुशशर्ट पहनकर वह चल पड़ा।

लखनऊ में जैसे तैसे वेश में निकलते उसे लज्जा आती थी। घर में उसके मैले सुकड़े कपड़ों पर गिरी के अलावा कोई और उसे टोकने वाला नहीं था। परन्तु उत्तम प्रसाधनों व वस्त्रों से सुसज्जित लखनऊ की भद्र युवतियो के बीच अपना मलिन वेश उसे हीन भावना से भर देता था।

'हेलो मिस्टर राज!' किसी ने उसके काफ़ी हाउस में घुसते हुए पीछे से पुकारा—'आज तो आप दिखाई ही नहीं पड़े।'

यह स्वर मुक्ता का था।

राज ने मुड़कर देखा—हरी साड़ी पर अधपेटा स्लीवलेस (बिना बाहों का) ब्लाउज पहने मुक्ता अपना बड़ा सा टोकरीनुमा पर्स हिलाती उसकी ओर आ रही थी। उसके आकन्ध घुंघराले केश उसकी ऊँची सैन्डिलों की ठनक पर ठुमक ठुमक उठते थे। मुक्ता दूर से बहुत कमनीय लगती है। लम्बा कद, तीखी नाक और लिपस्टिक से बनाये खजुराहो शैली के कमल की मोटी पंखुरी जैसे फैले हुए घुमावदार होंठ दर्शक को बरबस आकर्षित करते थे। किन्तु अत्यधिक पाउडर के प्रयोग से रूखी उसकी त्वचा और पेन्सिल से बना भवें उसके सौन्दर्य को निकट दर्शन में बहुत कुछ कम कर देती थीं। विलायती इत्र और बढ़िया सिगरेट दोनों की गन्ध उसके समीप वाले को एक ही साथ मिलती थी।

राज ठिठक गया।

मुक्ता समीप आ गई—'आप आज रिहर्सल में नहीं आये? देखिये आगे से ऐसा करेंगे तो मैं आपसे रूठ जाऊँगी। क्या आप समझते हैं मैं उस बुड्ढे छैलबिहारी के साथ ऐक्टिंग करने के लिये

वहाँ जाती हूँ ? आज आपके न आने से उन्हों ने आपका पार्ट पढ़ा ।'

घरवालों की उपेक्षा के मरुस्थल में मुक्ता के इस सौन्दर्य-निमंत्रण ने राज के मन में एक हराभरा ओसिस लहरा दिया । अपने घुंघराले रूखे केशों को, जिसकी दो-चार हठीली लटें माथे पर हर समय बिखरी रहती थीं, हाथ से पीछे करते हुये उसने उत्तर दिया—'हाँ, मिस मुक्ता, आज नहीं आ सका, तबीयत अच्छी नहीं थी ।'

'अरे ! मुक्ता ने एकदम राज का हाथ थामकर नब्ज़ देखी । फिर हँसते हुये कहा—'मिस्टर राज, आप भी किसी लड़की से कम नहीं है । नब्ज़ तो एकदम सुस्त चल रही है ।'

'तबियत भी तो इसीलिये सुस्त है', राज़ ने हँस कर कहा ।

मुक्ता ने ओठों से मुक्ता बिखेरते हुए कहा—'तबीयत की सुस्ती का इलाज [illegible] में नहीं होता । इसके लिये तो कपूर में जाइये । पर आप तो इस मामले में बिरमचारी हैं एकदम । अच्छा लीजिये यह सिगरेट ।' उसने अपना चाँदी का सिगरेट केस निकालकर बढ़ाया—'लीजिये, लीजिये जलाइये नहीं ।'

लाज और गर्व के मिलेजुले भाव से राज ने सिगरेट ले ली । उसने लक्ष्य किया था कि रिटायर्ड जज साहब की यह लड़की पहले ही दिन से उसकी ओर उन्मुख हो गई थी ।

एल० एल० बी० में पढ़ती मुक्ता, बातें बनाने में किसी वकील से कम न थी । उसे पैसे की कमी भी न थी । नाटकों और खेलों में भाग लेना दोनों ही उसके शौक़ थे ।

छैलबिहारी ने राज को बताया था—'भइया, इस नागिन से बचकर रहना । इसके काटे का मंत्र नहीं है । यह दूध पीती नहीं, पिलाती है और तब डसती है ! नागिन की तरह ही सुरीले स्वर पर लहराती है और छल्लेदार गेसुओं पर आशिक़ की तरह ही जान देती है । तुमने ऐसे मर्द तो बहुत देखे होंगे जो गरीब खूबसूरत लड़कियों से खेलते हैं, उन पर पैसे खर्च करते है, उनका आनन्द लेते हैं ।

लेकिन उनसे विवाह नहीं करते। यह मुक्ता ठीक वैसी ही मर्द टाइप औरत है। लगता है तुम उसकी आँखों में अटक गये हो।'

राज ने उत्तर में कहा था, 'भाई साहब, इन तिलों में तेल कहाँ? मैं तो विवाहित हूँ। केवल अभिनय के उनके शौक़ तक ही मेरी उसमें दिलचस्पी है।'

छैलबिहारी अविश्वास की हँसी हँसकर चुप हो गये थे।

राज ने मुक्ता के उन्मुक्त अभिनय के कारण उसे अपने देवदास नाटक में चद्रंमुखी के पार्ट के लिये लिया था। वह शरद् का देवदास अभिनीत करना चाहता था। उसकी रिहर्सल तक ही वह मुक्ता से वास्ता रखता था। क्योंकि मुक्ता उसे अपने में उलझाने के लिये अपना यौवन-जाल हर समय फैलाये रहती थी—बेबाक और बेहिचक। किन्तु राज पैंतरे बदल बदलकर उससे यथासम्भव बचता था। उसे यह तो भय नहीं था कि मुक्ता ऐसी आक्रान्ता नागिन है, जो उसे डस ही लेगी पर उसे वास्तव में अब अपने से ही भय लगता था। जिसने कभी मिश्री खाई न हो केवल उसका नाम व प्रशंसा ही सुनी हो, उससे अधिक मिश्री खाने का लोभ उस व्यक्ति को होता है, जो उसके रस का आस्वादन कर चुका हो। राज अपने को उसी लोभी दशा मे पाता था। अपने विवाह से पहले तक उसके तन-मन की पुकार चाहे कितनी ही रही हो, पर अपने संस्कारो के कारण उसने कभी किसी नारी को स्पर्श तक नहीं किया था। तब वह नारी-संसर्ग की मासल सुखानुभूति से भी एकदम अपरिचित था। किन्तु विवाहित राज अब प्रणय के विविध कोमल-कठोर रस-रंग-भरे संस्पर्शों की उत्तप्त, उत्तेजित, तन्मय शान्त परम रसानुभूति की परायथार्थ स्वच्छ शुभ मिश्री का सात्म पान कर चुका है। पर प्रणय की पावन वृत्तियों के बिना उसकी देह केवल वासना-सुख के लिये भी डूब सकता है, इसका भय उसे बना रहता है। फिर मुक्ता जैसी मदाक्रन्त नारी के साथ तो वह भय और भी अधिक था। गरिमा के सम्मुख अपने को हीन समझने की अचेतन वृत्ति की

प्रतिक्रिया में वह चाहे जितना भी उससे लड़ा झगड़ा है, नाराज़ होकर ही लखनऊ चला आया है, पर उसके प्रति प्रेम की अन्तरधारा कभी सूखी नहीं। गिरी से बदला लेने के लिये वह अन्य नारी से प्रेम कर ले, यह वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। आज केवल इसीलिये उसने मुक्ता की सिगरेट बिना न-नुकुर किये ले ली कि दिन भर मन पर अवसाद के परत चढ़ रहे थे। भाई-भाभी, गरिमा, माँ बाबू जी सभी के प्रति विरक्ति के भावों ने उसे बींध रक्खा था।

मुक्ता ने दियासलाई जलाकर पहले उसकी सिगरेट जलाई, फिर उसी से अपनी सिगरेट सुलगाकर एक कश छोड़ते हुए कहा—'ज़हे क़िस्मत! आज आपने सिगरेट तो ली। आइये इसी खुशी में सिनेमा देखा जाय।'

'सिनेमा?' राज चौंका। उसकी जेब में कुल सवा रुपया था। घबराकर बोला—'नहीं नहीं, मिस मुक्ता, आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है। आज नहीं चल सकूँगा। माफ़ कीजिये।'

'वाह!' मुक्ता ने उसकी उँगली पकड़कर खींची, 'तबीयत ठीक करने के लिये सिनेमा तो बेस्ट दवा है। चलिये भी! नख़रे मत कीजिये। आप इस समय देवदास थोड़े ही हैं, जो चन्द्रमुखी के पास केवल बेहोशी में ही ठहर सकते हैं। आज मैं नहीं मानूँगी। आज तो मेरे देवदास ने होश में सिगरेट पी है।' फिर धीरे से बोली, 'यूँ फुटपाथ पर खड़े होकर कितनी देर बातें कीजियेगा? कोई देख लेगा तो नाहक आप बदनाम होंगे। चलिये, क़दम बढ़ाइये. . .।'

राज विवश बलि का बकरा सा आगे बढ़ा। अखाद्य समझते हुए भी मनुष्य भूख में जो सम्मुख हो, वही खा लेना चाहता है। राज की दशा वैसी ही थी। मुक्ता सी नारी को मन से पसन्द न करते हुए भी उसके रूप के आग्रह भरे आमंत्रण को ठुकराना ब्रह्मर्षि के लिये भी सहज नहीं होता।

दोनों चले।

मेफेयर पहुँचकर मुक्ता ने जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर बाल्कनी के दो टिकट खरीदे और राज को पीछे आने का संकेत करती भीतर चली गई।

'ओह!' पास बैठे राज का हाथ अपनी अपनी दोनों हथेलियों में दबाकर उसने एक उत्तप्त सांस छोड़ी—'अब चैन पड़ा। क्यों राज यह उजला-उजला अंधेरा क्या तुम्हें प्यारा-प्यारा सा नहीं लगता......?'

मुक्ता के षड़ज-मधुर स्वर में रसीली सीत्कार सी सरसराई।

हाल में अंधेरा हो गया था।

राज ने धीरे से हाथ छुड़ाना चाहा।

मुक्ता उसका हाथ और ज़ोर से पकड़ और अपनी दाहिनी हथेली उसके कन्धे पर रख कर मुँह पास लाकर गुनगुनाई, 'डरते क्यों हो? तुम्हारा पत्नीव्रत धर्म भंग नहीं करूँगी। भगवान जाने, तुम्हें आदमी किसने बना दिया...!'

राज चमका। इच्छा हुई कि मुक्ता को गोद में खींचकर इतना भींचे, इतना भींचे कि वह हाँफ उठे। तब उसे मालूम हो कि वह मर्द है या नहीं। किन्तु उसने यह सब कुछ नहीं किया। केवल उसके गाल पर हल्के से ठुनका देकर कहा—'आप बड़ी नटखट हैं!'

अब मुक्ता ने उसके कन्धों पर अपना पूरा भार डाल दिया और अलस भीगे लास्य स्वर में बोली—'तुम्हारी यही अदायें तो मुझे मारे डालती हैं। तुम तो मेरे सचमुच के देवदास हो...!'

राज ने उत्तर नहीं दिया। पर्दे पर तस्वीरें आती रहीं, जाती रहीं। राज खिलौना बना रहा। मुक्ता उससे खेलती रही, खेलती रही।

१९

गरिमा राज के पत्र की प्रतिदिन प्रतीक्षा करती थी। राज ने लखनऊ जाकर उसे एक भी पत्र नहीं भेजा था।

सप्ताह बाद जिठानी का पत्र आया। घर के समाचारों के अन्त में लिखा था—

बड़े लल्ला के यहाँ भी वही हाल हैं। सारे दिन अपने दोस्तों के गले मे बाहें डाले बाहर घूमते रहते हैं। इन्होंने एक ठेकेदार के यहाँ कुछ काम बताया था। पर वहाँ मिलने तक नहीं गये। वही अपने ठेठर के चक्कर मे लगे रहते हैं। शम्भू और मदन मोहन जैसे उनके निठल्ले दोस्त लखनऊ तलक साथ आये हैं। हाथी जैसी तो खुराक है दोनों की। खाते हैं और मूँछों पर ताव देते हैं।'

गरिमा पढ़कर नीचे से ऊपर तक सुलग उठी। शम्भू और मदन मोहन दोनों ही पिछले वर्ष तक इन्टर के छात्र थे। मूँछें कोई भी नहीं रखता और दोनों की खुराक भी हल्की ही है। परन्तु उससे बिना बताये वे उन्हें साथ कैसे ले गये? अब उसे वह अपने किसी भी काम में साझीदार नहीं बनाना चाहते। भाभी के स्वभाव को जानते हुए भी वहाँ चले गये, इसीलिये कि इस बार वे बात बात पर उनका पक्ष लेती थीं। साथ में दो मित्र भी बाँध लिये? ये सब कुछ उसे जलाने के लिये ही किया है। दुनिया के सब लांछन सह सकते हैं, पर नहीं सह सकते तो बस एक उसकी सहज स्वतन्त्रता। जब तक विवाह नहीं हुआ था, वह उनके समकक्ष मनुष्य थी। उनके ही जैसे जीने की इच्छा रखने वाले व्यक्तित्व की अधिकारिणी। और पत्नी बनते ही मैं दस डिगरी नीचे उतर आई।

उसने क्रोध से होंठ चबाये। पत्र वैसे का वैसा सास के हाथ में रख दिया और यह कहती हुई चली गई, 'तारा से पढ़वा लीजिये।'

सास अश्चर्य में रह गई। मन ही मन बोलीं—'जब से राज लखनऊ गया है, बहू के दिमाग़ ही नहीं मिलते। किसी दिन तो ढंग से भोजन नहीं बनाया। कभी दाल में नमक ही डालना भूल गई। कभी सब्ज़ी में दुगना नमक झोंक दिया। परसों चाय के पानी में पत्ती की जगह, धनिये का डिब्बा उलट दिया। वाह, एक इसी का ख़सम निराला परदेस गया है! ऐसा ही पिरेम था, तो आँचल से बाँध रखती। क्यों जाने दिया था? तब तो दोनो कुत्ते-बिल्ली की तरह लड़ते थे। अब हमारे ऊपर मिजाज़ दिखाती हैं।'

प्रकट भी वह उसी समय बहू को दो-चार सुनातीं। परन्तु कमाने वाली बहू को कुछ कहते उन्हें स्वयं झिझक लगती थी। बहू भी लड़कर लखनऊ चली जाय, सो वह बिलकुल न चाहती थीं।

उन्होंने तारा से पत्र पढ़वा लिया। फिर अपनी ओर से वहुत बुद्धिमानी दिखाते हुए एक पत्र राज को लिखवाया—

'बेटा, तुम अब वहाँ रात दिन अपनी नौकरी की कोसिस करो। वैसे बहू की कमाई मे से दस, बीस, पचास, जितने कहो, भेज दूँ। बहू मुँह से कुछ न कहेगी। परन्तु मन में तो सोचेगी। मरद को अपनी इज्ज़त रखनी हो, तो उसे सात काम छोड़कर कमाना चाहिये। ये ठेठर-फेठर का चक्कर छोड़ दो। सम्भू मन मोहन से कह दो अपने घर जायें। बहू ने तो मारे किरोध के जिठानी की चिट्ठी पढ़कर सुनाई तक नहीं।'

परन्तु माँ के इस पत्र का कोई भी उत्तर नहीं आया।

गरिमा भी कोई पत्र नहीं लिखेगी। क्यों लिखे? राज उसे छोड़कर जा सकता है, तो वह भी उसे भूल सकती है।

वह ठीक समय पर आफिस पहुँचती। जाते ही मेज़ पर झुककर फ़ाइलों में खोजाना चाहती। परन्तु फ़ाइलें भी तो आजकल उसकी मेज़ से गायब हैं। वह छोटे साहब की पी० ए० का काम जो कर रही है। पी० ए० ने अपनी छुट्टी और भी दो महीने बढ़ा ली है।

छोटे साहब वही गन्जे ठिगने से अफ़सर हैं, जिन्होंने बड़े साहब के छुट्टी पर होने के कारण गरिमा का इन्टरव्यू लिया था। बातचीत में बहुत ही सभ्य। पहनावे में एकदम टिपटाप। उम्र उतरने पर भी उनके चेहरे की चिकनाई मौजूद है। दाँत पूरे हैं और गंजे होते सिर के बालों में वह खिज़ाब लगाते हैं।

जीवन को उन्होंने पूरे रस के साथ ग्रहण किया है। खानेपीने और प्रेम-व्यापार की मौज-बहार सभी में उन्होंने अपने को उन्मुख रक्खा है। वैसे वह होशियार आदमी हैं। सरकारी अफसर में जो नुमायशी चुस्ती और फ़ायल चालू रखने की फुर्ती तथा चतुराई चाहिये, वह उनमें पूरी मात्रा में है। अपने बड़े अफसरों को प्रसन्न रखने की कला भी वह जानते हैं और नीचे वालों को संतुष्ट रखने का ढब भी। इसी कौशल के कारण इस सत्रह वर्षों की सर्विस में उन्हें कभी किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा।

शेर के मुँह लगे इन्सानी खून की भाति आफ़िस की एक महिला कर्मचारी गरिमा पर छोटे साहब को लोभ न आया हो, ऐसा नहीं है। परन्तु आते ही गरिमा ने जो संयत व्यवहार सबके साथ बरता था, उससे उस ओर पाँव बढ़ाकर अपने को जोखिम में डालने की प्रवृत्ति उनकी नहीं हुई। ढलती हुई आयु में वह खून देनेवाले मजनूँ नहीं बनना चाहते थे। वह भी दूध पीने वाले मजनूँ हैं, उन सभी बड़े बड़े नये पुराने रईसों, नेताओं, व्यापारियों और 'मौके की जगह' नियुक्त अफ़सरों की भांति जो भेड़ की खाल में अपनी वासना के पन्जे छिपाये रहते हैं और अपनी सुरक्षित स्थिति के मचान से पेट से मजबूर अपने जंगल मे ऐसे शिकार पर अवसर पाकर या अवसर का जाल बनाकर हमला करते हैं, जो प्रेम करने और प्रेम के लिये रत्ती भर भी त्याग करने को मूर्खता ही नहीं, पाप समझते हैं।

वह छोटे साहब पत्नी और सयाने बच्चोंवाले हैं। रोमास वह बाजबी बाजबी मात्रा में ही कर सकते हैं। अर्थात् नुमायशी दुलार तथा आदर

और सौ-दो-सौ रुपयों की मदद या उपहारों तक ही उसे सीमित होना चाहिये।

पिछले वर्ष से तो वह बहुत ही सजग हैं। आफ़िस की टायपिस्ट मिस जसवंत कौर ने तो उन्हे मुसीवत में ही डाल दिया था। लड़की की सगाई भी हो चुकी थी, परन्तु तीन चार सौ के उपहार ग्रहण करने के बाद जब उसने सूचना दी कि वह गर्भवती है, तो साहब के हाथपाँव फूल गये थे। परन्तु साहब कच्चे खिलाड़ी नहीं हैं। पहले एक आध बार इस आपत्ति का सामना कर चुके हैं। बाहर की एक लेडी डाक्टर को उन्होंने जसवंत को अपनी पत्नी बता दिया और उसके गिरते स्वास्थ्य की चिन्ता प्रदर्शित करके उन्होंने मामले को सम्हाल लिया।

डाक्टरनी को ऐसी पत्नीवेशी कन्याओं के केस प्रायः मिलते रहते हैं। उनकी असलियत वह सूँघने से ही जान लेती है। उनमें पैसा भी अच्छा मिलता है। डेढ़ सौ रुपयों में ही उसने उनकी 'पत्नी' के स्वास्थ्य को ठीक कर दिया।

किन्तु मिस कौर की विधवा माँ ने उन्हें धमकी देकर उस बीच लगभग एक-डेढ़ हज़ार रुपया ऐंठ लिया था। इतनी बड़ी रक़म की चोट छोटे साहब ने खुशी खुशी सह ली थी। इज्ज़त और नौकरी दोनों पर ही जो बन आती! जसवंत की माँ ने उन्हीं रुपयो से चार महीने बाद बेटी का विवाह कर दिया।

छोटे साहब ने स्वस्ति की साँस ली। जान बची तो लाखों पाये। तब से उन्होंने समझा कि वैसे भी वह बहुत सस्ते छूट गये। कानों कान कहीं सुनगुन भी नहीं हुई।

गरिमा विवाहित है। एम० ए० पास है। आँखों के दर्शन लाभ से अधिक का सुख उससे भी प्राप्त किया जा सकता है। अर्थात् लायसेंस प्राप्त मॉडर्न गर्ल है। उसके केस में लेडी डाक्टर की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। बद अच्छा, बदनाम बुरा—उनका भी वसूल था। पर इस बार छोटे साहब अधिक सतर्क रहते हैं। उन्होंने मर्यादा कभी नहीं लाँघी।

यहाँ तक की पी० ए० के रूप में उसकी टेबिल बिलकुल समीप लगी होने पर भी उन्होने हाथपाँव नह िलाये। यद्यपि उनका मन साबुन की गीली बट्टी की भाति बार बार गरिमा की गोद में गिरने को फिसलता था।

इधर कुछ दिनों से अवश्य ही देख रहे थे कि मिसेज़ श्रीवास्तव कुछ अधिक गम्भीर हो गई हैं। कुछ भूली भूली सी रहती हैं। काम में भी अधिक गलतियाँ करती हैं। किसी दिन काफ़ी टिपटाप होकर आती है, तो किसी दिन बिलकुल ऐसी मानो अभी सोकर सीधी उठी चली आ रही हों। सुस्त और उदास भी रहती हैं।

एक दिन बड़े साहब के पी० ए० के छुट्टी पर जाने की चरचा चली, तो मिसेज़ श्रीवास्तव का भी प्रसंग आ गया। तब बड़े साहब ने अंगरेज़ी में कहा था कि 'गरिमा जी परिश्रमी और बुद्धिमती महिला हैं। पहले स्कूल में टीचर थीं। इनका बहनोई मेरा मित्र है। वह कहता था कि इन्होंने स्कूल के ही आर्ट मास्टर से रोमांस कर लिया। बाद को विवाह भी। उस आर्टिस्ट को मैंने देखा भी है। अरे वही, जिसने 'वीर कुणाल' खेला था दिवाली पर। मेरी पत्नी नाटक की बहुत तारीफ़ करती थीं। परन्तु कुछ भी हो, ऐसे आर्टिस्ट भूखों मरते हैं। आजकल लखनऊ चला गया है। बेचारी लड़की उसी के ग़म में घुली जा रही है।'

छोटे साहब ने भी अन्यमनस्क सहानुभूति के दो शब्द कह दिये, जैसे गरिमा के व्यक्तिगत दुखदर्द से उन्हें कोई मतलब ही न हो। अपने बास के सम्मुख इससे अधिक दिलचस्पी दिखाना अफ़सरी टैक्ट के प्रतिकूल होता न।

बिल्ली के भाग्य से छीका टूटा। अपना शिकार अपनी मजबूरी से ही उनके जाल में फँस सकता है। उसके लिये उन्हें अब कोई सरकारी मजबूरी, संकट अथवा अवसर का जाल नहीं बनाना पड़ेगा।

उस दिन से उस प्रोषितपतिका, आर्टिस्ट पत्नी, मिसेज़ श्रीवास्तव

पर छोटे साहब का लोभ कुछ अधिक हो आया। उन्होंने इतनी दुनिया देखी और जानी है। अभाव और व्यथा के दिनों में सहानुभूति दिखा कर युवती नारी को पिघलाया जा सकता है—इसके उन्हें कई पहले अनुभव हैं। उन्होंने मन ही मन शिकार मारने की एक रूपरेखा तय कर ली। पेशेवर शिकारी की भांति धीरे धीरे बहुत सावधानी से उन्होंने एक एक पग बढ़ाना आरम्भ किया।

'मिसेज़ श्रीवास्तव, आप लंच में कुछ नहीं लेतीं। यह तो बहुत ख़राब बात है। तभी आप कमज़ोर होती जा रही हैं।'

'सर, मैं सबेरे भोजन करके आती हूँ। इस समय कुछ खाने की इच्छा ही नहीं होती।'

'नो, नो।' साहब बड़े सगे की भांति कहते, 'जवानी में ऐसा ही प्रतीत होता है। मगर आगे चलकर इससे सेहत पर बहुत बुरा असर पड़ता है। मैं तो देखिये बूढ़ा आदमी हूँ। तब भी इतना खाता हूँ! न खाऊँ, तो बुढ़ापे में चलूँ कैसे?'

बूढ़े शब्द को साहब ने ऐसे नाटकीय ढंग से कहा कि गरिमा को साहब के तरबूज़ जैसे गालों की सुरखी देखने को नेत्र उठाने ही पड़े। उसने उत्तर दिया, 'आप कोई बूढ़े हैं?'

साहब 'हो हो' कर हँस पड़े—'थैंक्यूँ, मिसेज़ श्रीवास्तव! सचमुच क्या मैं बूढ़ा नहीं? मैं तो चालीसवाँ पार कर चुका हूँ।'

साहब का इस समय उनचासवाँ चल रहा है।

'लेकिन हाँ आज के नौजवानों का हाथ पकड़ लूँ, तो पानी माँग जायेंगे,' कहकर वह फिर 'हो हो' कर हंसे।

गरिमा चुप रही।

दूसरे दिन।

'आपको आज यह सलाद खानी ही पड़ेगी। यह हमारा आर्डर है,' साहब ने सलाद के नाम पर आई फलों की प्लेट उसकी ओर बढ़ा

दी । फिर कुर्सी समीपकर रहस्य भरे आत्मीय स्वर में कहा—'खाओ, लड़की !'

गरिमा आजकल दुखी है। अपने में सीमित है। घर में ललिता को छोड़ और किसे फ़ुरसत है, जो उसके खानेपीने का ध्यान रक्खे ! पर ललिता के भोजन की ज़िद या अनुरोध में उसे दया की गन्ध आती है। जिस लड़की को उसने अपनी दया से उबार लिया था, वही आज पति के कमाऊ बन जाने से सुहागिन बन उसके अभाग्य पर तरस खाकर उससे सहानुभूति दिखाने लगी है। गरिमा की पीड़ा दूनी हो जाती। वह खा ही नहीं पाती।

परन्तु साहब तो उसके दुर्भाग्य को नहीं जानते। वह तो मनुष्यता के नाते उसके स्वास्थ्य की चिन्ता कर रहे हैं। फिर इतने बड़े अफ़सर ! वह संकोचपूर्वक प्लेट में से केले का एक टुकड़ा मुँह में रख लेती।

'नहीं, नहीं, एक टुकड़े से नहीं चलेगा—यह सब आपको ही खाना होगा।'

गरिमा को पूरी प्लेट के फल खाने ही पड़ते।

फिर नित्य साहब अपने लंच में से गरिमा को खिलाते अवश्य।

कभी अपने सामने, कभी लंच पर स्वयं घर चले जाते, तो आफ़िस के कैन्टीन में कहला देते—'ऊपर मेम साहब के लिये मक्खन टोस्ट और चाय भेज दो !'

गरिमा ऐहसान से दब चली। एक दिन घर पर उसने गोले बादाम की बरफ़ियाँ बनाईं। एक डिब्बे में बन्द करके साहब के लिये ले गई। साहब ने बड़े उत्साह से ग्रहण की। बड़े धन्यवाद दिये और एक डली मुख में रखकर जो उसकी प्रशंसा के पुल बांधे, तो गरिमा ऊपर से नीचे तक झुक गई।

'वाह, मिसेज़ श्रीवास्तव, इतना बढ़िया खोया, इतना कम मीठा, इतनी भीनी खुशबू ! और आपने तो राम-भण्डार की बर्फ़ी को भी

मात कर दिया। मैं तो समझता था आप केवल आफ़िस वर्क में ही चतुर हैं। पर आप तो बड़ी कुशल गृहलक्ष्मी भी हैं। बड़े भाग्यवान हैं मिस्टर श्रीवास्तव, जिन्हें आप जैसी गुणवती, रूपवती पत्नी मिली!' कहकर छोटे साहब ने एक मीठी सी दर्दभरी आह भरी।

और फिर धीरे धीरे गरिमा ने उन्हें बता दिया कि उसके पति आजकल बेकार हैं। काम की खोज में लखनऊ चले गये हैं।

साहब ने पूरी सहानुभूति दिखाई। और कहा कि अगर मिसेज़ श्रीवास्तव कहें तो वह मिस्टर सिंह को लोअर ग्रेड में कोई फ़रज़ी नौकरी भी कहीं दिलवा सकते हैं।

राज ने कोई पत्र नहीं भेजा। बीच में जिठानी के पत्र से उसे ज्ञात हुआ कि राज को दो तीन दिन ज्वर चढ़ा रहा। जिठानी ने शिकायत भी लिखी थी कि राज ने महाराज को तो बताया, पर उन्हें नहीं। वह तो उनकी पराई है न!

गरिमा को लगा कि जिठानी जी चाहे पराई न हों, पर राज के लिये वह तो एकदम पराई हैं। उसे तो पत्र तक नहीं लिखा।

उस दिन आफ़िस में साहब की मँगाई मिठाई भी उससे न छुई गई।

साहब लंच करके घर से लौटे, तो मेज़ के नीचे झुकने पर देखा कि प्लेट वैसी ही पड़ी है। साहब अब उससे काफ़ी घनिष्ट हो चले हैं।

'क्या हुआ, लड़की?' कहकर उन्होंने एकदम गरिमा के माथे पर हाथ रख दिया—'माथा कुछ गरम हो रहा है। क्या बुख़ार आ गया है?'

'नहीं,' गरिमा उस गरम गुदगुदे हाथ के स्पर्श से सुखी हुई।

बोली, 'ऐसे ही आज पेट भरा था। आप रोज़ ही यह सब न भिजवाया करें। खाने को बिल्कुल तबीयत नहीं होती।'

'क्यों? कैन्टीन के बिल से डरती हो? मैं ऐसा पागल नहीं। बिल पर दस्तख़त तुम्हारे होंगे। पेमेन्ट मै करूँगा। मैं क्या जानता नहीं कि तुम्हारी फैमिली बड़ी है। उसका बोझ तुम्हारे कन्धों पर है। वेतन का हिसाब भी सास-ससुर को देना होता होगा।' उनके ही स्वर में शक्कर घुली थी। उस स्वर में दया ह नहीं, याचना की भी ध्वनि थी—'मेरी फैमिली लाइफ़ में तो बस घर के बाहर यही दोस्तों को खिलाना भर रह गया है। इससे ही मैं अपनी ज़िन्दगी में खुश रहता हूँ। तुम नहीं जानतीं कि मेरा घरेलू जीवन कितना दुखी है,' कहकर साहब ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया, जैसे छान लगाकर हाथ से बटेर पकड़ रहे हो। पर उनकी उँगलियाँ काँप रही थी।

गरिमा का सिर झुक गया।

सोचा—'बेचारे साहब भी दुखी हैं। इनकी पत्नी को तो मैंने देखा है। अच्छी, गोरी, गुदगुदी सी महिला हैं। पर भीतर की बात कोई क्या जाने? राज भी तो सुन्दर है। रसीले होंठ, नशीली आँखें, रेशम से घुंघराले बाल। परन्तु...!'

उसने भरे गले से कहा—'साहब, आज मुझे क्षमा करें, कुछ भी खाने की इच्छा नहीं है।'

साहब एक क्षण चुप रहे। मानों अगला पैतरा सोच रहे हों। उन्होंने प्लेट उठाकर सामने रखते हुये कहा, 'अच्छा, एक टुकड़ा ही सही। खा लो, मुझे ज़िन्दगी में इतनी खुशी भी न दोगी...?'

गरिमा ने लाचार एक फाँक सन्तरे की उठा ली। मुँह में रखकर चूसने लगी। साहब उसी प्लेट में से खाने लगे। गरिमा आश्चर्य में रह गई। साहब उसकी झूठी प्लेट उठाकर खा गये!

अब साहब नित्य ही पूछ लेते—'मिस्टर श्रीवास्तव का कोई पत्र आया?'

गरिमा सिर झुकाकर 'नहीं' कर देती।

साहब अफ़सोस से कहते—'तुम्हारी जैसी लड़की किसी गज़टेड आफिसर की वाइफ़ बनती, तो उसके भाग्य खुल जाते। कितनी स्मार्ट लगती हो! कितनी कुशल, कितनी सुन्दर, स्वरूपवती!' साहब ने ठंढी साँस लेकर कहा, 'एक हमारी मिसेज़ हैं। न बात करने का शऊर, न काम करने का। मोटी भैंस! मिजाज़ में काटे लगे हुए!'

गरिमा अपना दुख भूल कर साहब के दुख से दयार्द्र हो जाती। कहती, 'सर, इस संसार में आकर सभी कुछ सहना पड़ता है।'

सर का भी मूड बदल जाता। कहते 'लड़की, तभी तो कहता हूँ, इस तरह अपने को मत घुलाओ? हँसो, खेलो, मौज करो। जो अपनी परवाह नहीं करे, उसकी तुम भी पूजा मत करो। तुम तो एम० ए० हो। खुद कमाती हो। लो, हँसो तो! तुम्हारी यह रोनी सूरत देखकर मेरा मन भी उदास हो जाता है।' और गरिमा को गुदगुदाने के लिये वह अपनी उँगली बढ़ाते।

गरिमा तनिक पीछे खिसककर मुस्करा पड़ती। उसे भय लगता कि कहीं साहब सचमुच ही न गुदगुदा दें!

कभी-कभी वह अवश्य सोचती कि साहब से इतनी घनिष्टता अच्छी नहीं। वे पत्नी से असंतुष्ट हैं। अधेड़ होने पर भी तो पुरुष इतनी जल्दी वैराग्य नहीं ले लेता। पत्नी से न बनने पर इनका मन क्या प्रणय सुख के लिए भटकता न होगा?

हठात् उसका ध्यान अपने पर चला आता—'मेरा मन भी क्या नहीं भटक रहा है? जाड़े की इन सरदीली रातों में भी हाथ पाँव जलते हैं। नींद नहीं आती। कभी कभी मन होता है कि उड़कर राज के पास चली जाय। उसके उन बिखरे, लम्बे केशों में उँगलियाँ उलझाकर कन्धे पर झूल जाये। यह सब क्या है? चार ही महीनों में मेरी यह दशा हो गई है?' उसे अपने पर लज्जा आती, 'क्या मैं इतनी वासना-मयी हूँ। सत्ताईस वर्ष तक कुमारी रहना क्या एक भ्रम ही था?

गरमियो में तीन महीने मायके रही। तब भी कभी मुझे इतनी बेचैनी नहीं हुई थी। बीच में केवल दो बार राज आया था। अकेले में राज से मिलकर दो बातें करने का भी अवसर नहीं मिला था। किन्तु तब तो उसकी याद भले ही आती हो, पर यह तड़पन, यह खिंचावभरी पीड़ा नही थी। अब क्यों? जब राज मुझसे इतना लड़कर गया है, तब भी मेरा मन क्यों उसके लिये दौड़ता है? उसका पिछला व्यवहार स्मरण आता है, तो इच्छा होती है कि आये, तब भी बात न करूँ। पर बीच बीच में मेरा संकल्प टूटने क्यों लगता है? एकदम उसके पास पहुँचकर उसमें समा जाने की तीव्र इच्छा क्यों जग जाती है? सच में ही उसकी महरी जो यह कहती थी—क्या बताऊँ बहू जी, वह नासपीटा जितना मुझे मारता है, उतना ही मेरा मन उसकी ओर दौड़ता है—ठीक ही था। मैं भी यदि इतना पढ़ लिखकर अपने को अंकुश में न रखती, तो मेरी भी यही दशा होती। सास-ससुर का दुलार, देवरानी का आदर, सुरेन्द्र, नरेन्द्र की स्नेह-भरी सरल वाणी, सब कुछ प्राप्त होने पर भी वह कौन सा अभाव है जो मात्र राज को पुकारता है? क्यों नहीं, मै उसके साथ चली गई?'

यह जूड़ा, यह प्रसाधन, जो राज के न देखने पर गरिमा को ललचाते थे, अब फूटी आँखों न सुहाते। बाहर निकलने की मजबूरी से बाल सँवारने पड़ते, साड़ी बदलनी पड़ती। हँसना-बोलना भी पड़ता। यदि राज झूठमूठ भी एक पत्र डाल कर उसे बुलाये, तो वह आज ही भागकर लखनऊ जाने को तैयार है।

राज लखनऊ से पत्र लिखता रहता, तो गरिमा भी उत्तर में रीझ-खीज, मनुहार से भरकर पाती भेजती रहती। तब कदाचित् उसके मन की दशा ऐसी न होती। अब तो वह दिन भर पत्र की झूठी प्रतीक्षा में क्रोध और निराशा से जलती और रात को आधी सी नींद में करवटें बदलती। जलते पाँवों को लिहाफ़ से बहार निकालती और फिर ठंढक लगने पर भीतर सिकोड़ लेती। और वह स्वयं ही मान छोड़कर राज

को पत्र लिखने का संकल्प करती। पर दफ़्तर में दूसरे दिन फिर छो
साहब की सहानुभूति और सत्कार गरिमा के मन को राज के प्रति
कठोर कर देते। उसका पत्र लिखने का संकल्प भंग हो जाता।

★

राज को नौकरी करनी ही पड़ेगी।

लखनऊ के पाँच मास के प्रवास ने उसे एकदम हताश कर दिया। छैल बिहारी से उसका झगड़ा हो गया था। वह पारसी स्टेज की पुरानी नाटकीय शैली को पसन्द करने वाला कलाकार और निर्देशक था। उसके राजा रानियों की पोशाक में सलमा जड़ा होता; साटन की झालरें होतीं। देवदास जैसा रद्दी नाटक उसे बिलकुल पसन्द न आया।

उसने राज का विरोध किया था, 'फिल्म की बात दूसरी है, भाई साहब! स्टेज पर यह एकदम फ्लैट जायगा। न परदे, न सीन-सीनरियाँ। एक ले देकर चन्द्रमुखी है, सो मुक्ता को नाचना नहीं आता। न अच्छा गाती ही है। तीन दिन भी नहीं खेला जायगा। मुझसे लिखा लो!'

राज ने किंचित कठोर मुस्कराहट भरकर जवाब दिया—'जब रुपया मैं लगा रहा हूँ, निर्देशन मेरा है, तब आप क्यों बिगड़ते हैं? नुकसान तो मेरा ही होगा न!'

रुपये के तर्क के सामने सारी दुनिया दबती है। छैल बिहारी को भी दबना पड़ा।

परन्तु राज को तो भाई साहब ने वह हजार रुपये भी बाद में न दिलवाये। कठिनता से राज पाँच सौ इकट्ठे कर सका और जितना श्रम वह अपने कलाकारों से लेना चाहता था, उतना बिना पारिश्रमिक

लिये कोई न करना चाहता था। पार्वती का पार्ट करने वाली लड़की तो आकाशवाणी के नाटक कलाकारों में अग्रगण्य थी। उसे वहाँ से तीन दिन श्रम करने पर पच्चीस रुपये मिल जाते थे। तब क्यों वह एक सौ रुपये के लिये महीना भर रात को एक बजे तक अपनी नींद हराम करे ?

राज के वे पाँच सौ रुपये चुटपुट में ही उड़ गये। हाल का किराया, बिजली फिटिंग और आर्केस्ट्रा के लिये चार पाँच सौ की और आवश्यकता थी। उसने भाई से कहा—'भाई साहब, पाँच सौ और दिलवाइये। नाटक उससे कम में स्टेज न होगा।'

'न हो !' भाई से पहले ही भाभी ने कहा—'हमें तो बिना नाटक देखे भी नींद आ जाती है। हम बाल-बच्चों वाले हैं। इतना बोझ नहीं उठा सकते। मझली को लिख दो कि रुपया भेज दे !'

भाई ने सिर खुजाकर कहा—'देखो, प्रयत्न करता हूँ। वायदा नहीं करता।'

राज खून का सा घूँट पीकर रह गया। उसने जो प्रार्थना-पत्र दिये थे, उनमें से दो एक जगह वह इन्टरव्यू में गया भी था। पर कुछ हुआ नहीं। उसकी कोई सिफारिश जो नहीं थी।

वास्तव में अपने नाटक की धुन में उसने उसकी बहुत चिन्ता भी न की थी। अब वह नौकरी की दौड़-धूप में लगा। नौकरी मिलते ही वह कहीं होटल में कमरा लेकर रहेगा। खाने पीने से जो बचेगा, सब उसमें लगायेगा।

परन्तु रात दिन की नौकरी की दौड़-धूप और सम्बन्धित व्यक्तियों से मिलने-जुलने व सिफ़ारिशें जुटाने में उसकी रिहर्सलें छूटने लगीं। छैलबिहारी न तो उसके पार्ट को रिहर्सल में निबाहते, न दूसरों का निर्देशन करते, वह नाराज थे। आते भी, तो आधे घन्टे में चले जाते। तरुण संघ के तरुण भी नायक के न होने पर धीरे-धीरे खिसक जाते।

दो तीन दिन की अनुपस्थिति के बाद राज एक रात आठ बजे

वहाँ पहुँचा, तो देखा केवल मुक्ता और चरन बैठे हैं। चरन धर्मदास बनता था।

राज को देखते ही मुक्ता ने चरन से कहा—'लो यह दस रुपये। तुम अभी दवा लेकर घर जाओ। लड़के की न जाने कैसी तबीयत हो।'

चरन का लड़का बीमार है। वह नोट पाते ही वहाँ से उठ गया। राज के नमस्ते का जवाब देने तक की उसे सुध न थी।

'हलो, ईद के चाँद! तीन दिन कहाँ रहे?' मुक्ता ने उसका स्वागत किया।

दरी पर बैठकर धूल भरे बूटों के फीते खोलते हुए राज ने कहा—'रहता कहाँ, नौकरी के चक्कर में घूम रहा था। कहीं साली मिलती ही नही!'

आज खीझ के मारे उसके मुख से गाली निकल पड़ी।

'नौकरी तो बहुत है। तुम करना भी चाहो!' मुक्ता शरारत से मुस्कराई।

'कहाँ है? किस गली में? मैं तो ढूँढ़ ढूँढ़कर थक गया। इन्टरव्यू में सब बुलाते हैं। रखता कोई नहीं।'

'रक्खे कैसे? तुम रजिस्टर्ड नहीं हो न!' मुक्ता अब भी हँस रही थी।

'वाह', राज ने सफाई दी, 'मैंने अपना नाम एम्पलायमेन्ट एक्सचेंज में रजिस्टर करवा लिया है। उसी की मार्फत जाना था। पर कुछ नहीं बना।'

'हम एक नौकरी बतायें?' मुक्ता ने उसके पास घुटनो के बल बैठकर कहा—'काम भी कोई खास नहीं। वेतन भी अच्छा होगा। अलबत्ता सरकारी नौकरी नहीं है। पेन्शन की आशा न रखना। जब तक काम, तब तक दाम!'

राज सेठों की प्राइवेट नौकरी से घबराता है। मजबूरी के स्वर में बोला—'बताइये तो कर लूँगा। बड़ी मुश्किल में फँस गया हूँ।'

'तो कल से आप हमारे हुजूर में आ जाइये!'

'क्या?' राज ने आश्चर्य से पूछा।

मुक्ता ने तिरछी नजर मार कर कहा—'समझे नहीं? हमारी नौकरी करोगे?'

वह उसके और समीप खिसक आई थी। इत्र और सिगरेट दोनों की गन्ध राज की नाक में घुस गई। वह पसीने पसीने हो गया। अकेले कमरे में अकेले वह और मुक्ता!

चौकीदार दूर दालान में कम्बल ओढ़े ऊँघ रहा था।

'बोलो है मन्जूर?' मुक्ता ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया और उसके कान के पास अपने ओंठ ले जाकर बोली, 'काम है सिर्फ मुझसे प्रेम करना।'

फिर कानों से ओंठ हटाकर वह राज के ओठों के सामने आ गई। अपनी उत्तेजित दृष्टि से उसकी आँखों को भेदते हुए मुक्ता ने एक गहरी उत्तप्त साँस का अग्निशर छोड़ा—'दो सौ रुपये माहवार का यह सौदा बुरा तो नहीं!'

और मुक्ता की मदिरा की गन्ध सी उड़ती हुई आँखें एकदम भक से जल सी उठीं। राज को अपने धड़कते दिल में एक वैसी ही आवाज सुनाई दी जैसी कि शराब की बोतल के तल में चिपटी हुई अन्तिम बूँदों को उसके मुख में जलती दियासलाई डालने पर होती है। तत्क्षण समर्पण को उद्यत रूप भरे यौवन से अपराजित किन्तु दूर भागने वाले इस कायर युवक से वह चिढ़ी हुई थी।

मुक्ता अब उसके गाल सहला रही थी।

राज मदहोश होने लगा। उसका मन हुआ कि मुक्ता को अपनी दोनों भुजाओं में कसकर जकड़ ले। हथेली पर अपनी जवानी लेकर

सौदा करने के लिये घूमने वाली इस छोकरी का उबाल एकदम ठण्डा कर दे।

पलक मारते ही राज की दाहिनी भुजा ने मुक्ता की नाजुक कमर को भींच लिया। मुक्ता उस पर साभार ढलक गई। उसके सिहरते उठान के साथ साथ उसके ललकते ओंठ भी राज से सट गये।

राज को जैसे बिच्छू का डंक छू गया। मुक्ता के मुख से मदिरा की तीव्र गन्ध आ रही थी।

राज के हाथों का खिंचाव ढीला पड़ गया। बूटों में पाँव डालकर बिना फीता कसे वह तेजी से बाहर आ गया।

मुक्ता ने दाँत पीस लिये। चुटैल नागिन की भांति वह पीछे से फुफकार उठी।

★

देवदास की रिहर्सल रुक गई।

मुक्ता ने पार्ट करने से इन्कार कर दिया था। पार्वती बनने वाली कान्ता को भी उसने मना कर दिया था। वह भी बिना चार सौ लिये पार्ट नहीं करेगी। तरुण संघ में कौवे बोलने लगे। पाँच सौ का ऋण माथे पर लादे राज अकेला खड़ा था।

दस दिन हुए बड़ी कठिनाई से रेलवे आफिस में उसे १२५ रुपये पर क्लर्क की पोस्ट मिली। दो तीन साथियों ने कहा—'भाई, इस खुशी में दावत हो जाय, यानी चाय पार्टी और सिनेमा!'

राज ने हामी भरी।

निर्देशक के स्थान पर आज वह क्लर्क बन गया था। परन्तु काम तो मिला। अब वह व्यर्थ में नाटकों के पीछे अपनी जान नहीं खपायेगा। नौकरी करेगा, एम० ए० करेगा! अच्छी नौकरी ढूँढ़ेगा।

व्यर्थ का अभिमान लेकर वह अपने को क्यों नष्ट करे ? गरिमा को बुला लेगा। यहीं कहीं उसे काम मिल जायगा। नहीं मिलेगा, तो इतने में ही दोनों गुजर करेंगे, अलग रहेंगे। उससे अब झगड़ा नहीं करेगा, तो वह १२५ रुपये में भी प्रसन्न रहेगी। प्रिया से तन-मन की यह दूरी उससे अब सही नहीं जाती।

मित्रों के साथ चाय पी गई ! सिनेमा पहुँचे। भीतर गये, देर हो गई थी। अंधेरे में कुछ दिखा नहीं। परन्तु सिगरेट और इत्र की गन्ध ने बताया कि मुक्ता कहीं आस पास ही है। वह उसके ही पीछे सीट पर थी।

'हलो !' वह स्वर से पहिचान गई—'देवदास, बहुत दिनों में दिखाई दिये ?'

राज को अब मुक्ता से झगड़ा करने की अपेक्षा नहीं है। जब वह क्लर्क बन ही गया, तब पिछला मान-अभिमान किस लिये ? मुक्ता को क्या दोष दे वह ? वह जिस बड़े समाज की अंग है, वहाँ सदा से यह सब चलता आया है। पहले पर्दों की ओट में शिकार होते थे, अब पर्दा हटने पर खुले आम होते हैं। नित बदलते फैशन की भाति यह भी उनके जीवन का सामान्य व्यवहार है।

प्रसन्न मुख उसने धीरे से उत्तर दिया—'हाँ, चन्द्रमुखी, मैं लौट आया हूँ।'

चन्द्रमुखी ने भी मुख उसकी कुर्सी पर टिका दिया—'देव, मैंने भी सब छोड़ दिया है। देखो, अब बिलकुल नहीं पीती। तुम कहो तो सिगरेट भी छोड़ दूँ।'

राज का मन डोल उठा। नागिन आज अपना विषदंत तोड़कर उसके सम्मुख थी, बेचारी ! उसने धीरे से उसका कन्धा थपथपाया। मुक्ता ने उसके केशों में उँगलियाँ डाल दीं। राज की देह में सिहरन और माथे में उलझन सी उठी। परदे पर क्या है, कुछ उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

मुक्ता ने धीमे से कहा—'अब तो नाराज नहीं हो ? मैं तुमसे कुछ छीन न लूँगी। बोलो, एक बार ही सही, कहीं मिलोगे ?'

'कहाँ, कब ?'

'कल शाम रेजीडेन्सी में।'

'अच्छा !'

राज के अंग-अंग में सिहरन बढ़ती जा रही थी, बढ़ती जा रही थी। हठात् इन्टरवल का कठोर उजाला हो गया।

राज ने मुक्ता को देखा। वह सम्भल कर बैठ गई थी। पास में बैठा कोई युवक राज को घूरकर देख रहा था। राज ने आँखें फेर लीं। मन हुआ कि वह वहाँ से उठ कर भाग जाय।

इन्टरवल समाप्त हुआ। हाल में फिर उजला अंधेरा हो गया। मुक्ता ने हाथ पीछे डाल कर राज की ठोढ़ी अपने माथे पर टिका ली। और उसके गाल सहलाने लगी। राज को मुक्ता की कोमल हथेलियों में काँटे से उगते मालूम हुए, जो उसके रोम रोम को कंटकित करने लगे।

अनायास झटका देकर राज उठा। कोट का कालर चढ़ाकर उसने मफलर में अपना मुँह लपेटा और तेजी से बाहर निकल गया।

राज फिर न लौटा। खिसियाई सी मुक्ता अपने नाखूनों से शेष समय तक अपनी सीट खरोंचती रही।

राज ने उसी रात गरिमा को पत्र लिख दिया।

★

छोटे साहब आज लंच पर गये, तो लगभग चार बजे लौटे। मेज पर दस्तखतों के लिये फाइलों का ढेर लग गया था।

'ओफ।' उन्होंने उस पहाड़ को देखकर कहा—'लगता है आज तो काम खत्म करते करते रात के आठ बज जायेंगे !'

गरिमा कुछ टाइप कर रही थी। साहब के स्वर से लगा मानों वह बहुत चिढ़े हुए हैं। उसने सांत्वना भरे स्वर मे कहा—'आज आपको लंच में भी कुछ देर लग गई। आठ नहीं तो अवश्य ही सात बज जायेंगे उठते उठते।'

'रोज ही बजते हैं!' साहब बोले, 'पर घर में बैठी निठल्ली औरतों को आफ़िस के काम का क्या पता! बातें भर बनाना जानती हैं। जीवन में मुझे कभी जो सुख मिला हो.....!'

गरिमा ने समझ लिया कि आज लंच में साहब का घर पर पत्नी से झगड़ा हुआ है। सहानुभूति से बोली—'इमीजियेट पर दस्तख़त करिये। बाकी कल के लिये छोड़ दें। आप पाँच बजे ही घर चले जायें।'

साहब ने उसे रसपूर्ण नेत्रों से देखकर स्वर में विषाद भरा—'किस सुख की आशा से घर चला जाऊँ? मैं तो कभी नौ से पहले घर नहीं जाता। आफ़िस के बाद 'विजय' में जा बैठता हूँ। दिल की बेचैनी चाय की घूँटों से दबाता रहता हूँ।'

गरिमा का मन हुआ कि दुखीं साहब का माथा सहला दे। वह भी दुखी, साहब भी दुखी। साहब फाइलों मे डूब गये, बिल्कुल निश्चिन्त होकर जैसे उन्हें कोई दुख दर्द ही न हो।

पाँच बजे आफ़िस खाली हो चला। केवल चपरासी रह गये। साहब से पहले कैसे जायें वे गरीब? द्वार पर बेंच के सहारे बैठे बीड़ी फूँककर वे ठंढ को झुठलाते रहते हैं।

गरिमा उठने लगी, 'सर, पाँच बज गया। अब जाइये।'

'ओह, तुम जा रही हो?' साहब ने, जो बीच बीच में उसे बराबर ताकते रहे थे, ऐसा भाव दिखाया मानो वह अब तक फाइलों में नहीं, अपने दुख में डूबे हुए थे—'पाँच मिनिट और बैठो प्लीज़? तुम्हारे होने से दिल को बड़ी तस्कीन मिलती है।'

'तस्कीन!' साहब को उसकी समीपता मात्र से तस्कीन मिलती है

और उसके राज को पाँच छः महीनों में उसकी याद भी नहीं आई। एक पत्र तक नहीं भेजा !

गरिमा सोचती सोचती बैठ गई—'कहते हैं दिल को दिल से राहत मिलती है। मुझे कई बार हिचकियाँ आईं। राज का नाम लेने से बन्द हो गई। पर कुछ नहीं। एक पत्र तक नहीं आया। अब यह भी उन्हें ध्यान नहीं कि पुरुषों के साथ काम करती हूँ। मुझे भी कोई चाहने वाला मिल सकता है।'

सहसा उसे भान हुआ कि साहब उसे ही ताक रहे हैं। पेन मुँह में दबाये हैं। उनकी दृष्टि में जाने कैसा भाव था। गरिमा को ऊपर देखते पाकर उन्होंने हाथ की उँगलियाँ चटकाईं।

फिर उठे और गरिमा के समीप आकर उसकी ओर हाथ बढ़ाकर कहा—'देखना, शायद बुखार हो गया है।'

झिझकती हुई गिरी ने नब्ज पर उँगलियाँ रखी ही थीं कि अकस्मात् साहब ने हाथ उसकी कमर में डाल दिया।

गरिमा की ज़ुबान तालू से सट गई। वह उछल कर कुर्सी से उठ खड़ी हुई। अब तो साहब ने उसे खींचकर अपने आलिंगन में कस लिया। अस्फुट स्वर में बोले—'आई लव यू, आई लव यू, गरिमा !'

गिरी के कानों में जैसे गरम तेल पड़ गया। उसका माथा घूम गया।

वहाँ कोई न था। आफ़िस खाली था। चपरासी भी साहब की सिगरेट लेने गया हुआ था। वह आर्त्त स्वर में बोली—'मुझे छोड़ दीजिये ! छोड़ दीजिये !'

साहब ने अपनी समझ से इधर तीन महीनों में ज़मीन तैयार कर ली थी। गरिमा, जो उनके कहने मात्र से आफ़िस के बाद रुक गई थी, उसका यही अर्थ उन्होंने लगाया था। परन्तु फिर भी गरिमा का यह स्वर ! उन्होंने तत्काल सोचा, मन से राजी नारी भी तन छूने पर

ऐसी ही अदायें दिखाती है। इसलिये मर्द को कुछ जोर जबर्दस्ती तो करनी ही पड़ती है।

सोच कर साहब ने अगला कदम उठाया—'डार्लिंग! अब ज्यादा न तड़पाओ!' और साहब का मुख गरिमा के समीप आ गया।

तड़ाक्!

साहब के फूले बायें गाल पर गिरी की लम्बी पतली उँगलियाँ नील बनकर एकदम उभर आयीं।

साहब मजनूं नहीं हैं। वह आफ़िस में ही मजा लेने भी कायल नहीं हैं। फिर कभी सही।

मुक्त प्रेम की चाट खाने से कभी पहले, कभी बाद को चाँटा भी खाना ही पड़ता है। कोई बात नहीं। थोड़ा चारा और डालेंगे वह कल से। अब चपरासी भी आता होगा। उनकी पकड़ ढीली हो गई।

गरिमा छिटक कर पहले ही दूर खड़ी हो गई थी। दुर्बल क्रोध और विवशता के कारण उसकी आँखों से आँसू बह चले।

बाहर जूतों की हल्की सी खटखट सुनाई पड़ी।

साहब ने जल्दी से अपना हैट सिर पर रक्खा और जोर से कहा—'लड़की, आज तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है। अब घर जाओ!'

चपरासी सिगरेट लेकर घुसा।

'मेम साहब के लिये रिक्शा लाओ फौरन!' साहब ने अपना अभिनय अपना गाल छपाते हुए जारी रखा।

गरिमा ने कुछ नहीं देखा। वह तीर की तरह कमरे से बाहर निकल गई। मेज के कागज उसी तरह फैले थे। पर्स भी वहीं पड़ा रह गया था। वह खट-खट ज़ीना उतर गई। सड़क पर तेज़ चलने लगी।

'मेम साहब! आपका बटुआ!' चपरासी ने पीछे से पुकारा।

गरिमा ने चाल धीमी कर दी। पर नेत्र नहीं उठाये। आँसुओं से उसकी दृष्टि धुँधली हो रही थी। पर्स लेते हुए धीमे से कहा—'एक

रिक्शा...जितने में भी मिले...जल्दी!'

चपरासी उसके घर का पता जानता है। उसने एक दौड़ते रिक्शे को ठहरा कर पैसे तय किये ओर सलाम करके मुड़ गया।

गरिमा रिक्शा में बैठकर चल दी। हवा की कोमल थपकियों से उसकी तर्कशील चेतना मूर्छना से जगी—'आज की घटना क्या अकस्मात् घट गई? साहब के मन में यह शैतान क्या बहुत दिनों से जमा था? आज तो कोई विशेष बातें भी नहीं हुई थीं। वैसे इधर तीन-चार महीनों से साहब और उसमें काफी आत्मीयता से बातें हो जाती थीं। साहब की आत्मीयता और सज्जनता से प्रभावित हो और उन्हें भी मन से दुखी प्राणी मानकर गरिमा ने उनको अपने घरेलू दुख-सुख भी साधारण तौर पर बता दिये थे। साहब भी अपनी मेम साहब से अपने झगड़े और गृहस्थी के दुख दर्दों की गाथा उससे कहते रहते थे। परन्तु इसका क्या यही अर्थ था? लंच में वह उसके लिये नाश्ता मँगा देते थे। न खाने पर आग्रह करते थे। परन्तु इसे गरिमा ने केवल बड़े आयु के एक सज्जन व्यक्ति का स्नेह समझा था। पर अपना देना-पावना बराबर रखने के लिये वह भी अपने घर से मिठाई फल आये दिन लाती ही रहती थी। उनका कोई अहसान उसने अपने ऊपर रखा नहीं। तब क्या साहब हैं ही ऐसे? उनके साथ सर्विस करते उसे एक साल से अधिक हो रहा था, पर उन्होंने पहले कभी कोई बदतमीज़ी नहीं की थी।'

अन्त में उसके मस्तिष्क ने निष्कर्ष घोषित किया—'मुझे पति-परित्यक्ता समझ कर ही साहब को ऐसा साहस हुआ। वह कितने ही बदमाश हों, परन्तु मेरी व्यथा से परिचित न होते, तो कभी भी आज की घटना न घटती।' तब यकायक ही उसका पीड़ित मन राज के प्रति क्रोधित हो गया—'यह सब उन्हीं के कारण हुआ। पराये पुरुष से सहानुभूति पाकर अनजाने सांत्वना प्राप्त करने के मेरे भ्रामक व्यवहार के मूल में राज ही दोषी है।'

परन्तु राज तो सम्मुख न :' है। यहाँ से दूर, बहुत दूर है। उसका' सारा अक्रोश अपने पर ही उतर पड़ा—'पति की ओर से पीड़ा पाने का अर्थ दूसरे पुरुषों की कुचालों के प्रति असावधान हो जाना नहीं है। मैंने क्यों साहब से इतनी आत्मीयता बढ़ाई। इस प्रकार की सहानुभूति खोजने पर यही होगा—यही होगा!'

उफ़!

उसका मन हुआ अपने दोनों गालों पर तड़ातड़ तमाचे मारे। दीवार से सर फोड़ ले।

वह अब कल से आफ़िस कैसे जायेगी? बड़े साहब से शिकायत करे? वह बूढ़े आदमी हैं। अपने मन में क्या कहेंगे? फिर आफ़िस में काम तो छोटे साहब से ही पड़ेगा। नहीं, वह अब नौकरी छोड़ देगी।

घर आ गया। पैसे चुका कर लड़खड़ाते पाँवों से गरिमा रिक्शे से उतरी। उसकी देह की सारी शक्ति मानो इस घटना ने चूस ली थी। आज वह बच्चों के लिये कुछ भी न लाई थी।

'ताई ताई!' नरेन्द्र सुरेन्द्र ने उसे फ़ौरन घेर लिया।

उन्हें एक एक इकन्नी थमाकर वह चुपचाप भीतर जाने लगी। "नही, इतन्नी नहीं!' नन्हा सुरेन चिल्लाया—'ताई। अम्मा कहती हैं आद ताई से लुपिया लेना! ताऊ ने तिथ्थी भेजी है, है न।'

चिट्ठी! राज की चिट्ठी! गरिमा को विश्वास नहीं आया।

'तारा बीबी।' उसने रसोई के द्वार पर खड़े होकर ननद से पूछा। "कोई पत्र आया है?'

'हाँ, भाभी।' तारा दौड़ती हुई माँ के पास गई और दो मिनिट में ही एक लिफाफ़ा ले आई।

गिरी ने तारा के हाथ में ही लिफ़ाफ़े पर पते की लिखावट देखी। आश्वस्त हुई कि लिखाई राज ही की थी। पत्र पर ऐक्सप्रेस डिलीवरी का लाल लेबिल चिपका था। चील की तरह झपट्टा मार गरिमा ने तारा से लिफ़ाफ़ा ले लिया और ऊपर चल दी।

तारा भाभी के इस व्यवहार पर आवाक् रह गई। उसने तो सोचा था कि भाभी को खिझायेगी, हँसायेगी। पर यह क्या? वह भुनभुनाकर रह गई।

गरिमा नीचे नहीं उतरी। बहुत देर हो गई। अपने कमरे में बन्द वह पत्र पढ़कर हँस रही थी, रो रही थी। वह आज ही लखनऊ चली जायगी। राज ने अनेक क्षमा-प्रार्थनाओं और प्रिय संबोधनों के बाद यह भी लिखा था—'तुम आ जाओ! चाहे दस दिन की छुट्टी लेकर आओ। पर तुरन्त आ जाओ। अम्मा रोकेंगी। तुम मेरी बीमारी का बहाना कर देना। गिरी, इतने झूठ से हमारे घर में वहाँ किसी का नुकसान नहीं होगा। पर तुम आ जाओ। यह झूठ मुझे उबार लेगा। मैं डूबने ही वाला हूँ।'

गिरी ने पत्र चूमा। हृदय से लगाया। फिर उसे चोली में खोसकर नीचे उतरी।

पत्र लेकर ऊपर चले जाने और घन्टा भर न उतरने से सास का मुँह फूला हुआ था। वह बुड़बुड़ा रही थीं—'क्या इसी का अनोखा पति है! माँ का क्या कोई हक़ नहीं है? मुझे कुशल-समाचार तक नहीं सुनाया! खसम की प्रेम-पाती लेकर जाकर अटारी पर चढ़ गयीं रानी जी!'

'अम्मा!' गिरी ने पुकारा।

जवाब में अम्मा ने सिर्फ छोटी सी 'हूँ' भरी।

गिरी एकदम सास के पैरों के पास बैठ गई। बोली—'अम्मा, मैं लखनऊ जाऊँगी।'

सास की साँस जहाँ की तहाँ रुक गई।

'वह बीमार हैं। मैं आज ही रातवाली गाड़ी से लखनऊ जाऊँगी।'

सास को विश्वास नहीं आया। कल ही बड़े लड़के का खत आया

था। उसमें तो लिखा था कि राज भला-चंगा है। बस उसकी आवारागर्दी की शिकायत थी कि घर में किसी से कोई वास्ता नहीं रखते। गई रात तक घूमते रहते हैं।

'क्या तकलीफ फट पड़ी उसके ऊपर!' सास झनझनाई—'कल बड़े लल्लू के खत में तो सब राजी खुशी लिखी थी!'

'अचानक बीमार हो गये हैं!' गरिमा ने उत्तर दिया—'भाभी जो शायद ठीक से देखभाल न कर पायेंगी। मुझे आज ही गाड़ी चढ़ा दो।'

कमानेवाली बहू की आज्ञा टाली नहीं जा सकती। परन्तु सास ने पति के सामने बड़बड़ा कर मन का विरोध प्रकट किया—'छः महीने से तो एक सतर भी लिखकर नहीं भेजी राजा बेटा ने हमें किसी को। तब तो भाभी ही सुख देती थीं। आज जरा माथे में दरद हुआ होगा, तो जोरू को एकदम बुला भेजा है। और बहू रानी भी जैसे बिस्तर बाँधे तैयार बैठी थीं कि झूठमूठ एक चिट्ठी आते ही भागी जा रही हैं। पहले बिना छुट्टी लिये चली जायेंगी, तो साहब नाराज न होंगे? गवरमेन्टी नौकरी है कि कोई हँसी ठट्ठा है। हाँ, देखो भला!'

मक्खनलाल ने जीवन भर नौकरी ही की थी। बोले, 'नहीं, उसकी तो बहुत सी छुट्टी बाक़ी है। अर्जी लिखकर दे जायगी। न होगा, वहाँ से मेडिकल सर्टिफिकेट भेज देगी!' फिर मुस्कराकर कहा—'तुम तो अपनी सब कुछ भूल गई। मैके में दस दिन नहीं टिकती थीं। पचास बहाने बनाकर आ जाती थीं। बहू बिचारी छः महीने से सन्यास भोग रही है। जाने दो न!'

बुढ़ऊ की रसिकता पर सास खिसियाकर भीतर चली गई।

ऊपर गरिमा अपना इस्तीफा तैयार कर रही थी। एक महीने का नोटिस देना आवश्यक था।

राज रिक्शा से आफ़िस जा रहा था।

स्टेशन की ओर से आते एक रिक्शे की टनटनाहट के बीच उसने सुना—'राज ! राज ! रिक्शा रोको !'

ओह, यह स्वर तो गरिमा का था !

राज उछल पड़ा। उसने स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि परसों भेजे पत्र के उत्तर मे गरिमा इतनी जल्दी उसके पास आ जायेगी।

'गिरी !' उसने हाथ उठाकर अपना रिक्शा रोका—'एक चवन्नी अपने रिक्शे में फेंक वह दूसरे रिक्शे में कूदकर ट्रंक होल्डाल पर पाँव रखता गरिमा के पास धँसकर बैठ गया।

'तुम आ गईं !' उसके स्वर में बालकों जैसा उल्लास था, युवको जैसा उत्साह—'इतनी जल्दी !' और उसने अपनी गिरी की कमर में हाथ डालकर उसे अपने पास कर लिया।

'धत् !' गिरी ने लजाकर कोमलता से उसका हाथ पीछे से हटाकर सामने अपनी गोद में रख लिया। फिर धीमे से बोली—'क्यों, तुम बुलाते और मैं न आती !'

दोनों मूक हो गये। मानो शब्द खो गये हों। मानो एक दूसरे को देखकर, स्पर्श करके ही सब कहना सुनना चुक गया हो। एक दूसरे का हाथ कस कर थामे वे कबूतर के जोड़े से मुख से मुख सटाये बैठे रहे।

'लाल बाग में किधर की सड़क पर मोड़ूँ ?' रिक्शेवाला पूछ रहा था। इस प्रश्न स्वर से दोनों की तंद्रा टूटी।

'बताओ न बेचारे को रास्ता !' गिरी ने राज को हल्का सा ठुनका देकर कहा।

'रास्ता—?' राज हँसा। वह तो तुम्हीं दिखा सकती हो।' फिर रिक्शे वाले से कहा, 'बायें, बायें।'

रिक्शा मुड़ा।